हिन्दी वार्षिकी : 1970

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली-22

परामर्श मंडल:

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
डा० बाबूराम सक्सेना
श्री बालकृष्ण राव
डा० पी० गोपाल शर्मा (निदेशक)

संपादन :

श्री जीवन नायक
श्री रामप्रवेश जायसवाल
श्री काशीराम शर्मा
डा० रणवीर रांग्रा
श्री जगदीश चतुर्वेदी

कला :

श्री के० खोसा

पृष्ठ

अनुक्रम

पृष्ठ

(ii) उपन्यास

(iii) कहानी

(iv) नाटक

पृष्ठ

(v) विविध

भाषा-संगम

1. विशिष्ट सम्मेलन

2. प्रदेशों में हिन्दी

3. विदेशों में हिन्दी

पृष्ठ

पृष्ठ

सम्पादकीय

भारत के संविधान में हिन्दी को केन्द्र की राजभाषा स्वीकृत किया गया था तथा यह व्यवस्था रखी गई थी कि अन्य राज्य अपनी इच्छानुसार हिन्दी अथवा स्थानिक भाषा को राजभाषा स्वीकार कर सकेंगे। उस समय यह समझा गया था कि भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति को देखते हुए अभी कुछ समय तक अंग्रेजी भाषा में ही सरकारी कामकाज को चलाना उपयुक्त होगा और इसीलिए यह व्यवस्था कर दी गई थी कि 26 जनवरी, 1965 तक अंग्रेजी ही केन्द्रीय सरकार की मुख्य भाषा होगी। संविधान निर्माताओं को आशा थी कि इस अवधि में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएं इतनी विकसित हो जाएंगी कि उन्हें केन्द्र तथा राज्यों में सरकारी कामकाज में प्रयुक्त किया जा सकेगा। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय को हिन्दी के विकास-संवर्धन का काम सौंपा गया था, जिसे वह तब से करता रहा है।

संविधान में निर्दिष्ट अवधि समाप्त हो जाने पर भी अनेक क्षेत्रों में यह कहा जाता रहा कि हिन्दी अभी इतनी समर्थ और समृद्ध नहीं है कि उसे अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्थान दिया जा सके और इसलिए देश के कुछ भागों में यह मांग भी की गई कि अभी अंग्रेजी को बहुत समय तक सुरक्षित रखा जाए और हिन्दी को उसका स्थान न दिया जाए।

हिन्दी के समृद्ध और समर्थ न होने की धारणा कुछ सीमा तक सही हो सकती है, पर पूरी तरह से सही नहीं मानी जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के गत 25 वर्षों में न केवल हिन्दी का अपितु सभी भारतीय भाषाओं का प्रचुर मात्रा में विकास-संवर्द्धन हुआ है। उनमें उत्तम साहित्य की रचना हुई है। उन्हें राजकाज में स्थान देने के प्रयत्न हुए हैं और उनमें सफलता भी मिली है। अनेक सभाओं और संस्थाओं का जन्म हुआ है

जो हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को उपयुक्त स्थान दिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं और उन संस्थाओं को उपयुक्त लोक समर्थन भी प्राप्त हुआ है। विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को बनाने के प्रयत्न भी हुए हैं और इन प्रयत्नों में पूर्ण सफलता नहीं, तो भी, पर्याप्त अंशों में सफलता प्राप्त हुई है। विज्ञान के क्षेत्र में भी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वाङ्मय की रचना करने के प्रयत्न हुए हैं। ये प्रयत्न चाहे पूर्णतया संतोषजनक न कहे जा सकते हों पर फिर भी गत दो दशाब्दियों में भारतीय भाषाओं में भी विज्ञान वाङ्मय दृष्टिगोचर होने लगा हैं। यदि भारतीय भाषाओं को पूर्ण समर्थन और सहयोग प्राप्त हो और इनको अंग्रेजी का स्थानापन्न कर देने के मामले में झिझक न रहे तो सम्भव है अन्य अनेक क्षेत्रों में भी इनका सफलता से प्रयोग होने लगे और हमारा यह भय आकाशकुसुम सिद्ध हो जाए कि यदि भारत में अंग्रेजी की प्रभुता समाप्त हो जाएगी तो हम ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक पिछड़े रह जाएंगे।

यह सब होते हुए भी अब तक एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो यह मानता है कि अभी भारतीय भाषाएं यथेष्ट समृद्ध नहीं हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि अब तक भारतीय भाषाओं की जो समृद्धि और सामर्थ्य प्रकट हुई है, उसके आकलन का कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया। यदि अब तक इस प्रकार के कोई प्रयत्न हुए होते जो यह बता सकते कि भारतीय भाषाएं कितनी समृद्ध हैं और उनका प्रयोग भारतीय जीवन में किस प्रकार सफलतापूर्वक किया जा रहा है तो संभवतः भारतीय भाषाओं का विरोध और अंग्रेजी का व्यामोह इतना अधिक नहीं होता।

इस प्रसंग में बहुत अधिक विचार करने के बाद केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने यह निर्णय किया कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की वार्षिक प्रगति की वस्तु स्थिति का परिचय कराने के लिए प्रति वर्ष कोई पुस्तक तैयार की जाए और उसके माध्यम से हिन्दी की वर्तमान स्थिति तथा राज्यों में अन्य भारतीय भाषाओं की स्थिति का दिग्दर्शन कराया जाए। वर्ष भर में भारतीय भाषाओं का जो विकास-संवद्र्धन हुआ हो उसका परिचय प्राप्त होता रहे तो बहुत संभव है कि ऐसे लोगों की भ्रान्त धारणाएं दूर हो जाएं जो यहां तक कह देते हैं कि अभी भारतीय भाषाओं को मानक स्तर तक आने में सैकड़ों वर्षों की देर है। इसी विचार से वार्षिकी का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

वार्षिकी के कई खण्ड हैं जिनमें मुख्यतः हिन्दी की तथा गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं की वर्ष भर की स्थिति का लेखा-जोखा लिया गया

है। वार्षिकी 1970 में अन्य भारतीय भाषाओं का लेखा-जोखा विस्तारपूर्वक नहीं लिया जा सका है ; उनका बहुत ही संक्षिप्त निर्देश मात्र किया जा सका है। हां, हिन्दी की स्थिति पर व्यापक रूप से विचार किया गया है। इसमें 1970 में हुई साहित्य की समृद्धि का व्यापक विवेचन है जिसमें काव्य, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि विधाओं में हुए विकास का सामान्य परिचय देने वाले निबन्धों के अतिरिक्त इन सभी विधाओं की प्रमुख रचनाओं का मूल्यांकन भी है। यह मूल्यांकन तत्-तत विषय के अधिकारी विद्वानों से कराने का प्रयत्न किया गया है। समीक्षा खण्ड के कुछ लेख समीक्षा, संचेतना, राष्ट्रभारती, भारतीय साहित्य, धर्मयुग आदि पत्रिकाओं से भी साभार उद्धृत किए गए हैं, जिनके लिए निदेशालय उन पत्रिकाओं तथा लेखकों के प्रति आभारी है और आशा करता है कि भविष्य में भी उनका इस प्रकार का सहयोग प्राप्त रहेगा।

साहित्य की विधाओं के अतिरिक्त विज्ञान वाङ्मय के विकास का भी आकलन किया गया है और उस कार्य के लिए विज्ञान के एक विद्वान का सहयोग प्राप्त किया गया है। आगामी वर्षों में विज्ञान वाङ्मय पर और भी अधिक विस्तार से समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा। अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में जो आदान हुआ है, उसका आकलन भी वार्षिकी का एक महत्वपूर्ण अंग है। वस्तुत: पारस्परिक आदान-प्रदान देश के विविध भागों को परस्पर निकट लाने का कार्य करता है। अत: इस खण्ड का भी बहुत महत्व है। इसी प्रकार हिन्दी के साहित्य का भी अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में आदान हुआ है पर इस वर्ष उसका आकलन संभव नहीं हुआ। अन्यान्य भारतीय भाषाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान का भी लेखा-जोखा लेने का प्रयत्न आगामी वर्षों में किया जाएगा।

भाषाओं के विकास की स्थिति को जानने के लिए यह भी आवश्यक है कि भारत के विविध प्रदेशों में तथा विदेशों में इनकी जो स्थिति है उसका भी आकलन किया जाए। इस दृष्टि से हिन्दी प्रदेशों में और हिन्दी विदेशों में शीर्षक खंड रखे गये हैं।

इसी प्रकार शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं के प्रयोग की स्थिति का लेखा-जोखा भी आवश्यक था अतएव एक खण्ड इस कार्य के लिए भी रखा गया है और उसमें यह बताया गया है कि विविध प्रदेशों में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की क्या स्थिति है।

हिन्दी केवल हिन्दीभाषी क्षेत्रों की भाषा नहीं, अन्य प्रदेशों में भी उसके प्रति प्रेम और आदर है तथा वे उसे वस्तुतः राष्ट्रभाषा स्वीकार करते हैं। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि भारत के सभी प्रदेशों में हिन्दी प्रचारक संस्थाएं पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं। इस संस्थाओं का भी एकत्र परिचय वार्षिकी में दिया गया है। आगामी वर्षों में इन संस्थाओं की प्रति वर्ष हुई प्रगति का विवरण दिया जाया करेगा।

प्रति वर्ष देश के विविध प्रदेशों में ऐसे सभा-सम्मेलन होते रहते हैं जिन में भाषा तथा साहित्य की प्रगति पर विचार होता है। ऐसे सभा-सम्मेलनों के कार्य का परिचय भी वार्षिकी में दिया गया है।

समय-समय पर ऐसी छुट-पुट सभाएँ, बैठकें भी होती रही हैं जिन के महत्वपूर्ण समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इनसे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास, प्रसार और संवर्द्धन पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे समाचारों में से भी कुछ महत्वपूर्ण समाचारों का संकलन करके उन्हें वार्षिकी में स्थान दिया गया है।

इस प्रकार इन विविध खण्डों में प्रस्तुत वार्षिकी के द्वारा 1970 वर्ष में हुई भारतीय भाषाओं की प्रगति की स्थिति का कुछ परिचय मिल सकेगा। यह सही है कि वार्षिकी 1970 में हिन्दी की स्थिति पर ही अधिक विस्तार से प्रकाश डाला जा सका है। अन्य भाषाओं पर उतना अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सका है जितना अपेक्षित है। इसका कारण समयाभाव ही रहा है। वार्षिकी के प्रकाशन का निर्णय विलम्ब से होने के कारण यह कार्य बहुत ही सीमित समय में करना पड़ा, इसलिए जितना विस्तारपूर्वक परिचय सभी भारतीय भाषाओं का आवश्यक था उतना इस वर्ष नहीं दिया जा सका। परन्तु आगामी वर्षों में यह कार्य अधिक व्यापक रूप से किया जाएगा। यह आशा है कि भारतीय भाषाओं की सही स्थिति का आकलन सामने आने पर वे अनेक लोग अपने मत को बदलने के लिए तैयार हो जाएंगे जो आज यह समझते हैं कि भारतीय भाषाएं बहुत ही पिछड़ी हुई हैं और उनको शिक्षा का माध्यम बनाना अथवा राजकाज में स्थान देना अहितकर होगा। यदि इस दिशा में सफलता मिल सकी तो वार्षिकी का यह प्रयत्न सार्थक होगा।

गोपाल शर्मा
निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

साहित्य-संगम

हिन्दी साहित्य 1970

हिंदी कविता : 1970

—भारतभूषण अग्रवाल

एक दिन था जब नई कविता ने हिन्दी कविता की पहचान ही बदल दी थी। उसके उठान से कविता अचानक नए पथों की खोज पर निकल पड़ी थी और पुरानी चाल की रूढ़ियों को एक-एक कर चूर-चूर कर दिया था। अब 1970 तक आते-आते स्थिति यह है कि स्वयं नई कविता में ही कविता की पहचान मुश्किल हो गई है क्योंकि उसने भी अपनी अनेक प्रकार की रूढ़ियों को जन्म दे डाला है।

मेरे सामने इस समय 1970 में प्रकाशित नौ कविता-पुस्तकें हैं जिनमें ऐसे मंजे हुए कवि भी हैं जैसे दिनकर और अज्ञेय और ऐसे कवियशः प्रार्थी भी हैं जैसे श्याम विमल और बलदेव वंशी – पर उन्हें देख पढ़कर मेरा पहला भाव कुछ विमूढ़ता का ही है। हो सकता है, कविता की मेरी अपनी समझ ही ढीली पड़ गई हो (अल्प तो वह थी ही), पर अगर ऐसा नहीं है

तो मैं कहना चाहूंगा कि नई हिन्दी कविता में कोई जबर्दस्त भटकाव आ गया है और उसके प्रयत्नों और उसकी उपलब्धि में कोई मेल नहीं है। ऐसा नहीं है कि इन पुस्तकों में मुझे कहीं कोई आकर्षक रचना न मिली हो, पर वह एकदम अप्रत्याशित स्थान पर और अप्रत्याशित रूप में मिली है और मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि उससे क्या निष्कर्ष निकालूं।

इन नौ ग्रंथों में से दो अज्ञेय के हैं: (1) क्योंकि मैं उसे जानता हूं, और (2) सागर मुद्रा अज्ञेय एक ऐसा कवि नाम है जो सर्वथा निर्विवाद है, पर अज्ञेय के ये संग्रह मुझे अजीब तरह से निराश करते हैं। पांचवें और छठे दशक में अज्ञेय की कविता को मैं जिस आतुरता से पढ़ता रहा हूं और एक बार पढ़ लेने पर फिर बार-बार उसे दुहराता और याद करता रहा हूं वैसा मुझे इन दो संग्रहों की किसी भी कविता में नहीं मिला। इसका एक कारण तो यह भी हो सकता है कि हम पांचवें छठे दशक की मोहाविष्ट स्थिति से उबर चुके हैं और निर्लिप्त व्यक्ति की मुक्ति की बात खोखली और बेमानी लगती है पर शायद इससे भी बड़ा कारण यह है कि अब मुक्तिबोध का काव्य-जगत हमें अपरिचित नहीं रह गया है, और उनके परिचय के बाद अज्ञेय पर प्रश्न चिह्न लगाना नितान्त स्वाभाविक है। कोई भी संसार यदि एकान्त और बन्द हो तो घुटन का अहसास देने को बाधा है, पर उस एकान्त से छूटकर खुले जगत में आने की अज्ञेय की छटपटाहट जो पहले हर मध्यवित्त उत्तर भारतीय युवक के मन में प्रतिध्वनि उठाती थी, अब निरी 'रस्म-अदाई' या 'मुद्रा' ('सागर-मुद्रा'?) बन कर रह गई है और उनकी कविता व्यक्ति-परक से भी उतर कर व्यक्तिगत हो गई है। यही कारण है कि जहां पहले अज्ञेय आत्म-दान की बात कर हमें मुग्ध कर लेते थे, वहां वे अब ऐसे ऊटपटांग दानों की बात करने लग गए हैं जैसे बात-बात में हम किसी को ताजमहल दान कर दें। यही नहीं, इन संग्रहों में कहीं-कहीं अपने अनुवर्तियों की शैली अपनाने का जो प्रयत्न अज्ञेय ने किया है (कभी भवानी, कभी श्रीकान्त, कभी रघुवीर सहाय की शैली) वह बड़ी दयनीयता का भाव जगाता है। एक शब्द में, अज्ञेय बिना कुछ पाए ही अपनी खोज समाप्त कर चुके हैं और अब एक ही स्थान पर अचल खड़े कवायद कर रहे हैं।

अज्ञेय से दूसरे छोर पर हैं जगदीश चतुर्वेदी, श्याम विमल और बलदेव वंशी जो इस वर्ष अपने पहले कविता संग्रह लेकर काव्य-जगत में प्रविष्ट हुए हैं। इनकी कविता तथाकथित आक्रोश की या प्रतिवाद की कविता है जिस

में युवा-वर्ग का उत्तेजन, विक्षोभ और अधैर्य व्यक्त हुआ है। इनकी कविता का संसार एकान्त का संसार नहीं, वरन् विषम हलचलों और धमा-चौकड़ी का संसार है क्योंकि ये कवि इतिहास से लेकर समाज, नारी और सत्ता तक सबको तोड़-मरोड़ कर रख देना चाहते हैं। सातवें दशक में इस प्रकार की रचना के प्रति बहुतेरे युवक आकृष्ट हुए थे, और जगदीश चतुर्वेदी के नेतृत्व में अकविता का जो आन्दोलन चला था उसने नई कविता की जड़ता को भंग करने में यत्किंचित् योगदान भी किया था। पर इस कविता का जादू भी मुक्तिबोध के काव्य ने तोड़ दिया है, और उसमें निहित जो विद्रोह की मुद्रा है उसे उजागर कर दिया है। इन कवियों में शब्दों का ऐसा घटाटोप, ऐसी फिजूलखर्ची है, और बात को इतना बढ़ा-चढ़ा कर और बना कर कहने की प्रवृत्ति है कि कविता का स्तर कहीं दूर पीछे छूट जाता है। इस कविता में एक गरमाहट अवश्य है, पर वह गरमाहट ज्यादातर बुखार की गर्मी का रूप ले लेती है, और रचना कविता के पाठकों के मतलब की न रह कर मनोचिकित्सक के काम की हो जाती है। खण्डन का कुछ श्रेय इस कविता को जरूर दिया जा सकता है, पर उसकी उपलब्धि नगण्य है। अकविता के सबसे सन्तोषजनक कवि हैं सौमित्र मोहन, पर अभी तक उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है।

इसलिए जैसा कि मैं शुरू में ही कह चुका हूं, मुझे संतोषजनक कविता जहां मिली वह जगह कुछ अप्रत्याशित थी। मेरे सामने जो कविता-संग्रह हैं उनमें सबसे अच्छा संग्रह मुझे दिनकर की पुस्तक "हारे को हरिनाम" जान पड़ती है। यह संग्रह दिनकर की समस्त काव्य-चर्या से भिन्न ही नहीं वरन् विपरीत भी है, और इसमें एक ऐसी सहजता है जो मन को छू लेती है। कविता अपनी स्थिति को पहचानने का प्रयास ही तो है, और दिनकर इस रचना में अत्यन्त धैर्य और साहस से अपने को पहचानने में लिप्त मिलते हैं। लम्बे अनुभव की आग में तपकर निकले कवि के ये अनलंकृत वचन हमें गहरी समझ देते हैं और जिन्दगी को भरपेट जीने की प्रेरणा देते हैं। "कुरुक्षेत्र" की छटपटाहट और "उर्वशी" की भड़भड़ाहट के बाद यह संग्रह दिनकर को एक ऐसे समग्र और स्थिर रूप में पेश करता है जो सच्चे आत्मज्ञान से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में जिसे Growing old gracefully कहा जाता है वह दिनकर ने चरितार्थ कर दिखाया है। पंत से लेकर बच्चन तक एक पूरी पीढ़ी उससे अपने लिए उपयोगी निष्कर्ष पा सकती है।

अन्य दो कविता-संग्रह जो मुझे अच्छे लगे, वे हैं अजित कुमार का संग्रह "ये फूल नहीं" और सुरेन्द्र तिवारी का संग्रह "जूझते हुए"। अजित कुमार

का संसार तो प्रायः अज्ञेय का ही संसार है पर उसमें कवि कोई नाटकीय मुद्रा के घेरे में नहीं पड़ता, सहज रूप से अपना मन खोलता रहता है। अनुभव पर टिकी होने के कारण यह कविता महान तो नहीं हो सकती है, पर वह सच्ची जरूर है और उसकी सच्चाई हमें अपनापन देती है। उदाहरण के लिए "winter thoughts" नाम की उनकी छोटी-सी कविता हमें नितान्त अविस्मरणीय लगती है क्योंकि उसमें कवि द्रष्टा या संदेशवाहक होने के फेर में न पड़कर एक जाड़े के दिन के अपने भावों को बड़े सहज और मार्मिक रूप में प्रकट कर सका है। यही सहजता और मार्मिकता एक और छोर पर हमें सुरेन्द्र तिवारी में मिलती है जो नौकरशाही की जकड़ में बेचैन होकर भी अपना आपा नहीं खोते, वरन् व्यंग्य और विनोद के माध्यम से विषम स्थिति का सटीक चित्रण कर देते हैं। गीतों के आत्मलीन और चाशनीदार चक्कर से उबर कर सुरेंद्र तिवारी ने अत्यंत प्रीतिकर और प्रभावी रचना की है।

पर कुल मिलाकर हमें सन् 1970 के कविता-संग्रहों से सन्तोष नहीं हो पाता क्योंकि उनमें कविता की सच्ची पहचान के लिए मसाला बहुत कम है। मुक्तिबोध के काव्य-महत्व को पहचान लेने के बाद हम समझ पाए हैं कि सच्ची कविता निराला और नरेन्द्र शर्मा के बाद केदार, शमशेर, त्रिलोचन, भवानी, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त, धूमिल आदि कवियों में ही अधिक मिलती है और दुर्भाग्य से इस वर्ष इनके कोई संग्रह मुझे देखने को नहीं मिले।

हिंदी उपन्यास: 1970

- रामदरश मिश्र

आज के साहित्य में बार-बार जिए हुए जीवन सत्य पर बल दिया गया है और साहित्य की प्रत्येक विधा ने इसी को रेखांकित कर अपना वैशिष्ट्य और महत्व स्थापित करने का प्रयास किया है। किन्तु दरअसल व्यवहार में वास्तविक जीवन अनुभवों की अपेक्षा आन्दोलनों और दलबद्धे फतवों का शोर अधिक सुनाई पड़ने लगा है और साहित्य की महत्ता का आकलन गम्भीर जीवनानुभूतियों के स्थान पर 'आधुनिक' यथार्थ की भंगिमाओं और फार्मूलों के आधार पर होने लगा है। यही वजह है कि कविता और कहानी दोनों ही क्षेत्रों में अनुभवविहीन लोग ही आज की जिन्दगी के गहरे और जटिल यथार्थ के अहसास का दम भरते नजर आते हैं और नारों तथा गुटों के बल पर कुछ दूर तक वे अपने अनुभव का भ्रम पैदा करने में सफल भी हो जाते हैं। छोटी रचनाओं में यह भ्रम पैदा करना आसान होता है किन्तु बड़ी अर्थात् जीवन यथार्थ के विराट् फलक पर यात्रा करने वाली कृतियों में यह संभव नहीं, क्योंकि वहां अनेक जीवन-अनुभवों की परस्पर अनुस्यूत यात्रा एक ऐसा विराट और पारदर्शी चित्र बनाती है जिसमें झूठ की गुंजाइश नहीं होती और झूठ आता है तो तुरंत पकड़ लिया जाता है।

इसीलिए जहां कविता और कहानी के क्षेत्र में अनेक लोग हल्लागुल्ला करके चर्चित हो जाते हैं वहां लम्बी कविता और उपन्यास के क्षेत्र में वे ही सफल होते हैं जो आन्दोलनों से परे रहकर जिन्दगी की व्यापक और गहरी सच्चाइयों को पहचानते हैं। इसलिए हम देखते हैं कि बहुत से लोग आन्दोलनों से जुड़ कर

कविता और कहानी के क्षेत्र में तो चर्चित हो गए हैं, किन्तु वे ही उपन्यास के क्षेत्र में उतरे हैं तो कुछ भी हासिल नहीं कर सके हैं और उनकी छोटी-सी पूंजी रबड़ की तरह खिंच कर टूट-टूट गई है। इसके विपरीत वे लोग उपन्यास साहित्य को कोई विशिष्ट कृति दे गए हैं जो आन्दोलनों के दौर में अचर्चित और उपेक्षित रहे हैं किन्तु जिनका जीवनानुभव काफ़ी समृद्ध है और जो आन्दोलनों के प्रति नहीं सामाजिक जीवन की सच्चाइयों के प्रति समर्पित हैं।

यही वजह है कि सत्तर के उपन्यासों की तरह-तरह की भीड़ में वास्तविक जीवन-सम्पन्न उपन्यास ही सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं। गिरिश अस्थाना का 'धूपछांही रंग' दो खण्डों में विभक्त महाकाय उपन्यास है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अनुभूत गाथा पेश करता है। पहले खण्ड में युद्ध की विभीषिका का चित्र है, दूसरे में शांत सुविधापूर्ण जीवन की विसंगतियां चित्रित की गई हैं। हिन्दी में पहली बार युद्ध का इतना प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। लगता है जैसे स्वयं लेखक ही इस उपन्यास के नायक सुकांत के रूप में हों। सुकान्त द्वितीय महायुद्ध में एक सैनिक के रूप में सम्मिलित होता है। लेखक न केवल युद्ध की समूची विभीषिका, उसके जीवन्त कार्य व्यापार, उसके संत्रास आदि को मूर्तिमान करता है, बल्कि भारतीय सैनिकों के साथ किए जाने वाले ब्रिटिशों के दुर्व्यवहार को भी उभारता है। युद्ध में मारे जाते हैं भारतीय सैनिक और विजय का श्रेय मिलता है ब्रिटिश सैनिकों को, अर्थात् लेखक ने ब्रिटिश लोगों के दंभ, ऐंठ, अत्याचार आदि को भी सजीव किया है। दूसरे भाग में सुकान्त भारत लौट आया है। युद्ध समाप्त हो चुका है। देश आजाद हो गया है। सुकान्त एक छोटा-सा अफसर बन चुका है और उसने शादी करके गृहस्थी बसा ली है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात देश में सम्पत्ति और भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति की जो वीभत्स होड़ लगी हुई है और इस होड़ में सामाजिकता से कट कर जो क्रूर स्वन्यस्तता आती जा रही है उसका इस भाग में बहुत ही प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। सुकान्त एक चित्रकार है और वह चित्रकार भी इस होड़ की आकांक्षा से बच नहीं पाता। वह भी इस भौतिक सुख-सुविधा के प्रवाह में बह चलता है किन्तु चूंकि वह कलाकार है इसलिए उसका कलाकार व्यक्तित्व इस भौतिक समृद्धि की आकांक्षा और चेष्टा से एक टकराहट अनुभव करता है। और यही टकराहट सुकान्त को और उसके माध्यम से उपन्यास को एक सामाजिक मूल्य के प्रति सचेत करती है। किन्तु यह टकराहट बहुत गहरी नहीं है क्योंकि सुकान्त के व्यक्तित्व में आरम्भ से अंत तक एक कलाकार की गहराई, असा-

मान्य मुक्तिकांक्षा या उद्दाम स्वाभिमान नहीं है। इसलिए वह शुरू से ही एक स्वाभिमानी कलाकार के विपरीत अधिक सुविधापरस्त सामान्य प्राणी मालूम पड़ता है। सुकान्त के व्यक्तित्व की एक यह सामान्यता पूरे उपन्यास की सामान्यता बन जाती है। इसलिए उपन्यास इतने बड़े समय और स्थान के फलक पर यात्रा करता हुआ, उस यात्रा के अनेक दृश्यों, प्रसंगों, कार्य व्यापारों, पात्रों, संगतियों-विसंगतियों आदि का अत्यंत प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता हुआ भी उस आंतरिकता से काफ़ी दूर तक वंचित रह जाता है जिसकी उससे संभावना थी।

भगवतीचरण वर्मा का भाग्यवादी से लगने वाले शीर्षक का उपन्यास 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' एक यथार्थवादी कृति है जिसमें स्वाधीनतापूर्व के कुछ वर्षों से लेकर आज तक के भारत के जीवन यथार्थ की तस्वीर खींचने का प्रयत्न किया गया है। भारतीय जीवन धनपतियों, नेताओं और गुण्डों की मिली-जुली शक्तियों से आक्रान्त और बरबाद हो रहा है। उपन्यास में धन के विकास का बड़ा जीवंत इतिहास दिया गया है। छोटी पूंजी कैसे फूलती-फलती है, कैसे वह धर्म और समाज का शोषण करती हुई पनपती है, और इस विकास की प्रक्रिया में कैसे उसके परिमाणात्मक परिवर्तन के साथ गुणात्मक परिवर्तन होता चलता है, आदि का सजीव अंकन इस उपन्यास में हुआ है। धन की प्रभुता हमारी राजनीति में भी बहुत गहराई तक धंसी हुई है। वह प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष रूप से उसे शासित करती है। इसलिए राजनीति जन-जीवन के उत्कर्ष की चिन्ता करने के स्थान पर स्वार्थों की उठापटक में व्यस्त है। सत्ता और संपत्ति का पारस्परिक षड्यंत्र देश में चोरबाजारी, घूसखोरी तथा अराजकता उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है और इस प्रकार पूरा का पूरा देश भयानक विसंगति से ग्रस्त है। सभी जाने पहचाने सभ्य चेहरे अपने भीतर असभ्यता और नीचता की अनेक पर्तें छिपाए हैं। इस अन्धेर नगरी में जबरसिंह जैसे डाकू खानदान के लोगों का भाग्य उन्हें मंत्री बना देता है और वह विद्रोही बालक मंत्री बन कर राधेश्याम उद्योगपति से सांठ-गांठ कर लेता है। मुख्यमंत्री त्यागमूर्ती जी की बाहरी शालीनता उनके आन्तरिक अहंकार और निष्क्रियता को ढके रहती है और राम लोचन जैसा पुलिस का आदमी (जो अक्खड़ है और बहुत पढ़ा लिखा नहीं है) अपने भीतर सत्य की पहचान की सम्भावना लिए रहता है और समय पर अपने आश्रय-दाता जबरसिंह से भी टकरा जाता है।

भगवती बाबू मूलतः किस्सागो हैं। उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में भी किस्सा-गोई को ही रेखांकित किया है। इसमें कई तरह के पात्र हैं और सभी यथार्थ हैं,

लेकिन लगता है भगवती बाबू ने इन सारे पात्रों की संपूर्ण रचना उपन्यास लिखने से पहले ही कर ली थी, उसके साथ गुजरते और उन्हें रचते हुए नहीं चले हैं। इसलिए ये सारे पात्र पहले से ही गढ़े-गढ़ाए, कुछ यथार्थ पक्ष के प्रतीक से मालूम पड़ते हैं। इन गढ़े-गढ़ाए प्रतीक पात्रों को उनके अपने-अपने स्थान पर 'फिट' करके रोचक ढंग से कथा गढ़ ली गई है। इसलिए पात्रों की रचना में और फिर उनके माध्यम से पूरे उपन्यास की रचना में उपन्यासकार की वह गहन अन्तर्दृष्टि नहीं दिखाई पड़ती जो व्यक्ति और समाज के विशिष्ट अनुभवों और चेतना स्तरों की पहचान कराती है, जो पाठक को यथार्थ की बहुत जटिल और आंतरिक दुनिया में ले जाती है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' एक कटा-छँटा साफ-सुथरा रोचक उपन्यास है जो सामाजिक यथार्थ के कुछ जाने-पहचाने वर्गीकृत पहलुओं को लेकर एक साफ-सुथरी तस्वीर प्रस्तुत करता है।

'कड़ियां' (भीष्म साहनी) मनोवैज्ञानिक धरातल पर यात्रा करने वाली सामाजिक विसंगति की कथा है। प्रमिला अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण दाम्पत्य जीवन की यौन-उष्मा को नहीं पहचान पाती। वह पूजा पाठ करने वाली, पति की सेवा करने वाली और पति से अधिक पुत्र में दिलचस्पी रखने वाली एक धर्मपरायण नारी है। उसका पति महेन्द्र अपनी पत्नी से दाम्पत्य जीवन की ऊष्मा न पा सकने के कारण अतृप्त है। सुषमा नामक एक बंगाली लड़की के सम्पर्क में आ जाने के पश्चात् उसकी अतृप्ति धीरे-धीरे खुलने लगती है। महेन्द्र भी संस्कारवश पहले तो सुषमा के साथ अपने साहचर्य को पाप मानता है और एक अपराध-भाव से ग्रस्त रहता है लेकिन जब इस प्रकरण को लेकर प्रमिला अधिक उग्र हो उठती है और प्रत्येक अवसर पर महेन्द्र के आने-जाने को शंका की दृष्टि से देखने लगती है तब महेन्द्र की अपराध-भावना मिटने लगती है। वह सुषमा के साथ अपने सम्बन्ध को न्यायसंगत ठहराने लगता है और बड़ी तीव्रता के साथ प्रमिला के नारीत्व की अपर्याप्तता, शुष्कता, ठंडेपन और कुल मिला कर उसके व्यक्तित्व की कुरूपता को महसूस करने लगता है। पुरुष और नारी के मनोवैज्ञानिक स्तरों की यात्रा से गुजरती हुई कथा अपने भीतर से धीरे-धीरे सामाजिक विषमता के अनेक कोणों को खोलती चलती है। प्रमिला ठंडी औरत है, मगर क्यों? क्योंकि उसके पारिवारिक वातावरण ने उसे वही दिया है। वह पति और पुत्र की सेवा तथा धर्मपरायणता को ही गृहिणीत्व या नारीत्व की चरम सार्थकता मानती है। अपने पूरे सहज मन से इसे मानती है तथा सुषमा के साथ महेन्द्र के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर उसे उसी पूरी सहजता से पाप समझ लेती है। इतना ही नहीं, वह पूरे अधिकार से महेन्द्र को ऐसा करने

से रोकती है किन्तु शीघ्र ही उसे ज्ञान हो जाता है कि वह समाज में कहां खड़ी है। उसका आरंभिक सहज अधिकार बोध दीनता में बदलने लगता है और वह हमारे समाज की एक अधिकारहीन, उपेक्षित, असहाय नारी की प्रतीक बन जाती है। उसकी असह्ययता, पिता की असहायता और गरीबी से मिलकर और भी गाढ़ी हो जाती है और एक विचित्र सन्नाटा उसे पागल बना देता है। लेकिन दूसरे पुत्र की प्राप्ति से उसके स्नेह को एक आधार मिल जाता है और प्रकृतिस्थ हो जाती है। लेखक ने एक ओर प्रमिला को सामाजिक वातावरण द्वारा दिए गए संस्कारों, उसकी भयावह परिणतियों, आर्थिक असहायता के कारण उत्पन्न उसकी लाचारियों, पीड़ाओं, विडंबनाओं का चित्र खींचा है, दूसरी ओर उसके अन्तर से उगी हुई स्वावलंबिनी बनने के लिए संघर्ष करती हुई एक नई नारी को पहचाना है और यहीं पर उपन्यास एक नवीन अर्थवत्ता प्राप्त कर लेता है। 'जिन्दगी का फासला लम्बा था। सतवंत को लगा जैसे उसकी सहेली दम लेने के लिए किसी पड़ाव पर रुकी है, अभी उसे बहुत दूर जाना है पर सतवंत को विश्वास था कि वह चल पाएगी। अपने पैरों पर चलती हुई बहुत-सी मंजिलें काट डालेगी।' पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों की टूटती हुई कड़ियों के क्रम में उभरने वाले अनेक मनोवैज्ञानिक धरातलों, परिस्थितियों, पात्रों को लेखक ने यथार्थवादी दृष्टि से पहचाना है। वे सभी मिल कर जो समग्र चित्र निर्मित करते हैं, वह चित्र अन्ततोगत्वा अपने भीतर की यातना और पीड़ा के माध्यम से नए नारी व्यक्तित्व की जिजीविषा ध्वनित कर उपन्यास को प्रच्छन्न रूप में एक नवीन मूल्य से जोड़ता है।

पूरे उपन्यास में भीष्म साहनी की सर्जना की सादगी और पारदर्शिता लक्षित होती है। भीष्म कवि नहीं हैं, वे सौ फीसदी कथाकार हैं, इसलिए इनकी कथा-शैली काव्यात्मक आवर्तों में कहीं उलझती नहीं, बस बहती रहती है और उसकी शक्ति तथा सीमा दोनों की चुनौतियों से गुज़रती रहती है। 'कड़ियां' में भीष्म का अपना कथाकार व्यक्तित्व सभी तरह से प्रतिफलित है। 'कड़ियां' इस दौर की कोई विशिष्ट उपलब्धि भले ही न हो किन्तु रचनात्मक धरातल पर वह एक अत्यन्त सार्थक कृति अवश्य है।

गोपाल आचार्य के 'न्यायतीर्थ' में न केवल एक नए क्षेत्र को समग्रत: अपना विषय बनाया गया है, बल्कि उसके यथार्थ की अनेक पर्तों को गहराई से पहचाना भी गया है। लेखक की यथार्थवादी दृष्टि कचहरी के जीवन की अनेकानेक विसंगतियों को निर्ममता से चीरती चली जाती है। लेखक ने कचहरी जीवन

के अनेक ब्यौरों और रहस्यमय गतिविधियों का जो परिचय दिया है उससे लगता है कि वह निश्चय ही कचहरी जीवन का बहुत समीपस्थभोक्ता है। इस 'न्यायतीर्थ' के सबसे बड़े पंडे हैं वकील लोग। विश्वविद्यालयों से बड़े-बड़े सपने लेकर निकलने वाले स्नातक पैसे के नाबदान में बिलबिलाने वाले कीड़े बन जाते हैं और उन्हें अपनी कानूनी योग्यता छोड़कर व्यावहारिक योग्यता सीखनी पड़ती है— यानी यह योग्यता कि कैसे मजिस्ट्रेट को, उसके पेशकार को खुश किया जा सकता है। ऐसे ही सफल वकील पं० लक्ष्मीदास या लाला सुखदेव बन जाते हैं जिनके लिए इन्सानी जज़बात का कोई मतलब नहीं होता। मतलब होता है अपने पैसे से, जिसे वे अपने तिकड़मों के कोल्हू में जनता को पेर कर रस की तरह निकालते रहते हैं। उनके इस काम में सहायक होते हैं उनके शातिर मुंशी। और फिर यदि राजा मजिस्ट्रेट जैसे मजिस्ट्रेट मिल जाएं तो कोढ़ में खाज बन जाती है। सच पूछिए तो पूरी कचहरी कोढ़ है जिसमें अलग-अलग सभी खाज हैं। मजिस्ट्रेट साहब कुछ मामलों में (सामाजिक मामलों में) बहुत सहृदय हैं लेकिन न्याय के आसन पर बैठने लायक नहीं क्योंकि उनमें व्यक्तिगत झक बहुत है और न्याय तथा व्यक्तिगत झक को एक में सान देते हैं। 'न्यायतीर्थ' इस तीर्थ के सभी घाटों उनके पंडों, उनके आपसी रिश्तों तथा जनता के साथ उनके क्रूर अमानवीय व्यवहारों का कच्चा चिट्ठा खोलता है।

हां, कच्चा चिट्ठा खोलता है क्योंकि वह हमें कचहरी की सारी विसंगतियों का शोध कराता हुआ भी उनके द्वारा कोई ऐसी रचना नहीं रच पाता जो आज की मानव यातना से बहुत दूर तक जुड़ता हुआ दिखाई पड़ता हो। कचहरी अपने आप में कचहरी रह जाती है जहां वकीलों, मुंशियों, मजिस्ट्रेटों पेशकारों के आपसी और कुल मिला कर जनता के साथ दांवपेच चलते रहते हैं। लेकिन ये दांवपेच कचहरी में जाने वाली जनता के पैसों को तो प्रभावित करते हैं लेकिन पैसे से आगे बढ़कर हमारे मानवीय सम्बन्धों को नहीं छूते। यानी कचहरी की दुनियां कचहरी की दुनियां बनकर रह जाती है वह हमारी वृहत्तर दुनियां से नहीं जुड़ पाती। कचहरी की 'सफरिंग' को हमारी व्यापक सामाजिक 'सफरिंग' से जोड़ने के लिए कचहरी से बाहर भी देखने की आवश्यकता थी, ऐसा इस उपन्यास में नहीं हो सका है। हां, अन्त में लेखक ने एक पति-पत्नी के सम्बन्धों की विषमता को अवश्य कचहरी से जोड़ने का प्रयत्न किया है और वहां निश्चय ही सारी कथावस्तु को एक नई दीप्ति मिलती है लेकिन वह अंश पूरे उपन्यास की प्रकृति के साथ रचा हुआ न लग कर अंत में जोड़ा हुआ-सा लगता है इसलिए अप्रासंगिक-सा मालूम पड़ने लगता है। इसी प्रकार उपन्यास में मधु और सरोज-

वाला अंश भी प्रासंगिक नहीं लगता। पूरे उपन्यास की बनावट कुछ इस प्रकार है कि वह उपन्यास न लग कर रिपोर्ताज प्रतीत होने लगता है। कथासूत्र के अभाव में अनेक वकीलों, मुंशियों, दलालों, पेशकारों आदि की अनेक तिकड़मबाजियां घूम फिर कर आती रहती हैं और मिल-जुल कर मात्र एक माहौल खड़ा करती हैं। शायद यही वजह है कि कचहरी के यथार्थ के इतने प्रामाणिक अनुभवों से बना हुआ उपन्यास हमें उद्विग्न करने में बहुत दूर तक सफल नहीं हो पाता।

भिक्खु का 'मौत की सराय' भी इस वर्ष का एक विशिष्ट उपन्यास है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी पृष्ठभूमि विदेशी है। ऐतिहासिक उपन्यासों का आधार, गहरा अध्ययन और उर्वर कल्पना होती है। भिक्खु ने फ्रांस की 18 वीं शती की राज्यक्रांति को अपने इसी गंभीर अध्ययन और उर्वर कल्पना के बल पर इतने सजीव रूप से अंकित किया है कि सब कुछ अनुभूत सा लगता है। लेखक ने फ्रांस की राज्यक्रांति के समय घटित होने वाली अनेक भयावह घटनाओं, विद्रोह और अत्याचार की प्रक्रियाओं और परिणामों को तो बड़े ही रोचक और सजीव ढंग से प्रस्तुत किया ही है, उसने स्वातंत्र्य, समानता, बंधुत्व के नाम पर होने वाली इस राज्य क्रान्ति के अंतर्विरोधों और विसंगतियों को भी कलाकार की निस्संगता के साथ अंकित किया है।

उदयराज सिंह का 'अन्धेरे के विरुद्ध' एक आंचलिक उपन्यास है जो स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् गांव में आने वाले बदलाव को अंकित करता है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् गांव निरन्तर बदलते गए। दूषित राजनीति, शहरी प्रभाव, मशीनीकरण आदि ने गांव के समूचे सामाजिक सम्बन्धों और मूल्यों को तहस-नहस कर दिया। गांव का आदमी निरन्तर समृद्ध और चालाक तथा भीतर से खोखला होता चला गया। इधर गांव के बदलाव को लेकर अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए। 'अन्धेरे के विरुद्ध' भी इस क्षेत्र में एक सुन्दर प्रयत्न है। नरेन्द्र इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह उजड़ी हुई जमींदारी का अवशेष है और बी० डी० ओ० बनकर अपने ही गांव में आता है, जहां उसकी जमींदारी तो उजड़ ही चुकी है साथ ही साथ पूरा गांव भी बदल चुका है। सारे गांव पर राजनीति का दुष्प्रभाव पड़ चुका है। एक अन्धेरे में जैसे सारा गांव डूबा हुआ है। हर आदमी इस अन्धेरे में केवल अपने को देखता है और किसी भी अनुचित उपाय से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है। न्याय, सत्ता, राजनीति से सभी विषाक्त हो चुके हैं और अपने देश से गांव की सारी मूल्य-चेतना को जड़ बना बैठे हैं। इस यथार्थ का लेखक ने सुन्दर चित्र अंकित किया है। लेकिन उसने इस जड़ अन्धकार के भीतर पड़े हुए नरेन्द्र की मानवीय छट-

पटाहट को भी उभारा है। नरेन्द्र के साथ उसके मित्र डाक्टर की इस अन्धेरे के विरुद्ध पीड़ा को भी अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार लेखक 'अन्धेरे के विरुद्ध' हल्की सी रोशनी की ओर संकेत करता है। इस उपन्यास में दोहरी कथा चलती है। एक तो वर्तमान गांव की, दूसरी सामन्ती शासन के गांव की। लेखक ने सामन्ती शासन के गांव से आज के गांव की तुलना करते हुए आज के यथार्थ की क्रूरता को अत्यधिक उभारना चाहा है। किन्तु वास्तव में सामन्ती शासन की कथा अत्यधिक मोहक हो गई है, इसलिए उसने लेखक के एप्रोच को यथार्थवादी के स्थान पर अधिक रूमानी बना दिया है। वैसे भी इस उपन्यास-रचना के संदर्भ में यह कथा अपनी प्रासंगिकता सिद्ध नहीं कर पाती और उपन्यास को कमजोर और खण्डित करती है।

'कच्ची पक्की दीवारें' रामकुमार भ्रमर का एक मोटा उपन्यास है। इसमें शहर की कच्ची और पक्की दोनों ही प्रकार की दीवारों के बीच रहने वाले लोगों की कहानी कही गई है। इस उपन्यास में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् शहर के सभी वर्गों में दिखाई पड़ने वाले नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक बदलावों को पहचानने का प्रयास किया गया है। आज के बदलाव चाहे शहर के हों चाहे गांव के, इन्होंने मूल्यों को बुरी तरह आहत किया है। सुख सुविधा भोगी, स्वन्यस्त मनोवृत्ति ने सामाजिक स्तर पर तोड़ा तो बहुत कुछ है लेकिन जोड़ा कुछ नहीं। इस उपन्यास में इन्हीं सन्दर्भों में विकसित समाज के सभी वर्गों की दूषित प्रवृत्तियों और कुरूप पारस्परिक सम्बन्धों को उभारने की चेष्टा की गई है। किन्तु लगता है लेखक यथार्थ का रंग भरने के लिए यौन-विकृतियों के प्रति अधिक झुक गया है और इस सारे ऊहापोह में वह लेखकोचित समग्र दृष्टि खो गई है जो इन सारे यथार्थ चित्रों को एक बड़े चित्र में अन्वित कर उन्हें एक रचनात्मक सार्थकता प्रदान कर पाती।

'विषकन्या' शिवानी का एक लघु उपन्यास है। लेकिन सच पूछिए तो शिवानी की लम्बी कहानियों को लघु उपन्यास और लघु उपन्यासों को लम्बी कहानियां आसानी से कहा जा सकता है, क्योंकि उनके यहां इन दोनों की 'भेदक रेखाएं' स्पष्ट नहीं हैं। उन्हें किसी घटित घटना या घटनाओं को रोचकता के साथ कह चलना होता है। यह अवश्य है कि वे घटनाएं मात्र घटनाएं न होकर कोई न कोई दर्द जगाने वाली प्रभावशाली घटनाएं होती हैं, इसलिए वे मानवीय संवेदनों को स्पर्श भी करती हैं। लेकिन जैसा पहले कहा जा चुका है वे दर्द को आधुनिक प्रासंगिकता नहीं दे पातीं। 'विषकन्या' लघु उपन्यास (या लम्बी कहानी) में भी लेखिका घटनाओं के जाल में स्वयं इतना

उलझ जाती है कि उसका कामिनी के अभिशाप की मनोवैज्ञानिक आन्तरिकता दे पाने और आधुनिक नारी मन की संक्रांत चेतना को रेखांकित कर पाने की ओर बहुत कम ध्यान रह पाता है। कामिनी आज की उन लड़कियों में से है जो अपनी स्वच्छन्द चेतना-जन्य शरारतों तथा अपने प्रति परिवार तथा समाज की कुछ गलतफहमियों के कारण अकेलेपन की नियति में अभिशप्त हो जाती है, और फिर यह अभिशप्त अकेलापन उन्हें अनेक प्रकार की विरोधी मनःस्थितियों, ग्रंथियों और समाज के प्रति जटिल प्रतिक्रियाओं के बीच भटकाता है। लेकिन 'विषकन्या' तो ऐसी लड़की है, जिसके बारे में लोगों को विषकन्या होने की गलतफहमी नहीं है, बल्कि वह सचमुच ही लोगों को डस लेती है। जिसको उसने अच्छा कहा, वह देखते-देखते टें बोल गया। आधुनिक युग में इस प्रकार की घटनाओं को प्रामाणिकता प्रदान करना रचनात्मक दृष्टि से तो प्रासंगिक नहीं ही है, वैसे भी सच नहीं है। लेकिन लेखिका को अपने सामान्य पाठक-पाठिकाओं को इन घटनाओं द्वारा गुदगुदाना है तो कोई क्या कर सकता है। इस सारे माया-जाल का परिणाम यह हुआ है कामिनी जैसी लड़की न तो अपनी जैसी अभिशप्त, पीड़ित लड़कियों की मनोवैज्ञानिक ग्रंथियां ही खोल सकी है और न समाज के प्रति समकालीन विद्रोह भाव को ही सार्थकता दे सकी है।

सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में यात्रा करते हुए इन उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपन्यास आए जो मूलतः मनोवैज्ञानिक समस्याओं को पहचानने की कोशिश में हैं। इनमें लक्ष्मीकान्त वर्मा के उपन्यास 'कोयला और आकृतियां' और प्रमोद सिन्हा के उपन्यास 'उसका शहर' के नाम लिए जा सकते हैं। लक्ष्मीकान्त जी का दुर्भाग्य यह रहा है कि वे अपने समृद्ध जीवन अनुभवों के बावजूद अटपटे प्रयोगों के पीछे पड़े रहने में सुख मानते रहे हैं और जिस परिवेश से वे सम्बद्ध हैं, उसके अनुभवों की अपेक्षा उस परिवेश के जीवन को रूपायित करने का मोह व्यक्त करते रहे हैं जो अत्यधिक 'माडर्न' है, लेकिन यह अनुभव लक्ष्मीकान्त का अनुभव नहीं बन सका। 'कोयला और आकृतियां' में इन्होंने इसी प्रकार के 'आधुनिक' लोगों की कहानी कही है। ये आधुनिक लोग अपने यौन-सम्बन्धों में सर्वथा स्वच्छन्द रहने के पक्षपाती हैं। वे यौन-सम्बन्धों को किसी भी प्रकार की सामाजिक नैतिकता के सन्दर्भ में देखना पसन्द नहीं करते। इन 'आधुनिक' पात्रों में एक पात्र है मोना। वह यौन-सम्बन्धों की अराजकता के बीच भी एक मूल्य का स्वर उभारती है - और वह यह कि वह यौन सम्बन्धों में नारी और पुरुष की समानता तथा उनका समान

रूप से पारस्परिक समर्पण चाहती है। वह अनेक पुरुषों द्वारा भुक्त होने के बावजूद कहीं अपने को छोटा नहीं महसूस करती। इस प्रकार लक्ष्मीकान्त इस 'आधुनिक' दुनिया से अनुभव के स्तर पर बहुत जुड़े हुए न होकर भी मोना के माध्यम से आधुनिकता की एक प्रमुख पीड़ा और उसके एक सार्थक स्वर को चित्रित करने में सफल हो गये हैं।

इसी आधुनिकता की दूसरी कहानी है 'उसका शहर' और इस प्रकार के अनेक उपन्यासों की तरह इसकी भी ट्रैजेडी यही है कि लेखक के अनुभव और इस आधुनिक दुनिया के बीच एक बड़ा फासला है जिसे लेखक पढ़े पढ़ाए, और सुने सुनाए मनोवैज्ञानिक फार्मूलों से भरता है। इस उपन्यास के पात्र भी परम्परागत जीवन के सम्बन्धों और मूल्यों की अस्वीकृति और आधुनिक जीवन की ऊब, विघटन और स्वच्छन्द यौनाचरण के बीच जीते हैं और लगता है कि लेखक ने इस दुनिया को बहुत गहरे पैठ कर नहीं देखा है, बल्कि कुछ आधुनिक चालू मुहावरों से इसका निर्माण किया है।

इन उपन्यासों को एक साथ देखने से पुनः एक बात बड़ी स्पष्ट हो जाती है कि सृजन के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि चित्रण किसका किया जा रहा है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि जिसका चित्रण किया जा रहा है उससे लेखक की पहचान कितनी गहरी है। इसी लिये बहुत से पिछड़े इलाकों के जीवन पर लिखे गये उपन्यास इसी गहरी पहचान के कारण अत्यधिक महत्व-पूर्ण और आधुनिक बन सकते हैं और इसके विपरीत 'आधुनिक' से 'आधुनिक' कहे जाने वाले जीवन पर आधारित फार्मूलाबद्ध उपन्यास प्रभावहीन बनकर रह जाते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि गत बीस वर्षों में जो हिन्दी में अच्छे उपन्यास आए हैं वे आंचलिक उपन्यास हैं। 1970 के कुछ अन्य उल्लेख्य उपन्यास हैं - 'उत्तर पुरुष' (अनूपलाल मण्डल), 'बीच का समय' (रामदरश मिश्र), 'दण्डद्वीप' (रमेश उपाध्याय), 'किशोर' (प्रभाकर माचवे) तथा 'ओस की बून्द' (राही मासूम रजा)।

हिंदी कहानी: 1970

- नरेन्द्र मोहन

यह एक सर्वमान्य बात है कि कथा-यात्रा में एक कथा-वर्ष की अपनी स्वतंत्र सत्ता या इकाई नहीं बनती। किसी-एक वर्ष से नहीं, कई वर्षों की अवधि में फैले हुए कृतित्व से ही एक रचनात्मक 'मूड' या मिजाज बनता है। कोई एक वर्ष किसी प्रवृत्ति के प्रवर्त्तन के कारण विशिष्ट हो सकता है पर उसके पीछे कम से कम 4-5 वर्षों की सर्जनात्मक प्रवृत्तियों का दबाव प्रत्यक्ष रूप से रहता है, यों 15-20 वर्षों के माहौल की चेतना उस प्रवर्त्तन के पीछे अप्रत्यक्ष रूप से रहती है। पर, यह ज़रूरी नहीं है कि हर वर्ष का एक सुनिश्चित बोध ही हो। इतिहास इस बात का गवाह है कि सर्जनात्मक लेखन के धरातल पर, कई बार एक वर्ष ही क्यों, काफी लम्बी कालावधि तक साहित्य की जमीन बंजर पड़ी रहती है या आगामी सर्जन की भूमिका के लिए खाद बनती रहती है। दरअसल, सृजन एक रचनात्मक प्रक्रिया है, कोई मशीन नहीं जिस के वार्षिक उत्पादन का हिसाब-किताब लगाया जा सके या रिपोर्ट पेश की जा सके।

सत्तर में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित-कहानियां और कहानी-संग्रहों में प्रकाशित कहानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह एक विशिष्ट कथा-वर्ष है। इसके वैशिष्ट्य का कारण मात्र यह नहीं कि यह सातवें दशक का शिखर वर्ष है बल्कि यह विशिष्ट इसलिए भी है कि इस वर्ष में रचना संबंधी बुनियादी प्रश्नों को केन्द्र में रख कर, कथा-प्रवृत्तियों की सीधी सीधी टकराहट को, एक दूसरे के विरुद्ध जाती हुई विचारधाराओं और कथाभंगिमाओं को,

कहानी की परिकल्पना और उसके रचना-तंत्र में घटित हो रहे परिवर्तनों को, कलात्मक क्षमता और अक्षमता को, साफ-साफ पहचाना और लक्षित किया जा सकता है और आठवें दशक में प्रवेश कर रही कहानी की दिशा की बाबत भरपूर संकेत प्राप्त किए जा सकते हैं।

सत्तर की कहानी के समुचित विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियां ही मूल आधार बन सकती हैं। पूरे कथा-वर्ष का प्रामाणिक साक्ष्य ये कहानियां ही प्रस्तुत करती हैं। यों संग्रहों में संकलित कहानियों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहले हम इस वर्ष का साक्ष्य उपस्थित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों को लेते हैं।

'नयी कहानी' के प्रतिष्ठित लेखकों में से फणीश्वरनाथ 'रेणु' में, लगता है, अब भी सब से अधिक ताजगी, स्थितियों को पकड़ने की क्षमता, मूल प्रश्नों से गहरे में टकराने वाली रचनात्मक दृष्टि है। उनकी कहानी 'रेखाएं - वृत्तचक्र' (सारिका, दिसम्बर) इस बात का प्रमाण है कि उनमें अन्तर-यथार्थ को, उसकी पूरी जटिलता और उलझनों के साथ पकड़ने और बाह्य परिवेश से उसकी टकराहट को व्यंजित करने की अपूर्व शक्ति है। महत्व की बात यह है कि वे इस व्यंजना को कहानी की संरचना में ही गूंथते हैं और चेतना-प्रवाह की शैली और स्वप्न-शिल्प द्वारा अन्तर-बाह्य यथार्थ का रेशा-रेशा उधेड़ते चलते हैं। इस कहानी में अहं के विसर्जन का नहीं, अहं की सूक्ष्मतम परतों को उघाड़ कर, बाहरी-दुनिया से उसका रिश्ता कायम किया गया है। आपरेशन के बाद के 10 घंटों में अवचेतन मन के व्यापार कितने नंगे हो कर सामने आते हैं, इसे लेखक ने चेतना-प्रवाह और स्वप्न पद्धति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है और बाहरी वास्तविकता की वीभत्सता की ओर संकेत किया है। यह संकेत कहीं-कहीं बड़ा उग्र और आक्रोशपूर्ण है: 'नहीं, नहीं, मैं कोई कसूर कबूल नहीं कर रहा। मेरा मतलब है मैंने, मैंने कोई कसूर किया ही नहीं। इस दुनिया, अर्थात् इस विशाल वेश्यालय में मैं ही सब से बड़ा पुण्यात्मा हूं क्योंकि मैं ही इसे समाप्त करना चाहता हूं ...... ध्वंस........।' यह कहानी ऊपरी तौर पर देखने से आटो-राइटिंग लगती है पर यह आटो-राइटिंग नहीं है क्योंकि इसमें आत्म-लोप की नहीं, आत्म-विडम्बना की बात परत-दर-परत खुलती चलती है और फिर बाहरी दुनिया के साथ इसका रिश्ता जुड़ता चलता है।

रेणु के समकालीन नए कहानीकारों में, जिन की कहानियां इस वर्ष भी छपी हैं, उनकी सी व्यापक दृष्टि, समकालीनता का संश्लिष्ट बोध और अन्तर्मन में हलचल मचा देने वाला तल्ख यथार्थ नहीं मिलेगा। दो एक लेखकों

को छोड़कर ये लेखक अपनी पूंजी खत्म कर चुके हैं और युवा लेखकों के मुहावरे की नकल करते हुए अपनी स्थिति को हास्यास्पद बना रहे हैं। भीष्म साहनी और निर्मल वर्मा अवश्य अपवाद कहे जा सकते हैं जो उस 'कन्डीशनिंग' से उबरने की लगातार कोशिश करते आ रहे हैं (और उससे उबरे भी हैं), जिन के शिकार हो कर उनके समकालीन एक रूढ़ि या 'मैनरिज़्म' में फंस गए हैं। भीष्म साहनी की कहानी 'मौका परस्त' (सारिका, मार्च) में इस बात को साफ-साफ देखा जा सकता है। इस कहानी में राजनीतिक नेताओं के पाखंड और धूर्तता को बड़ी बेबाकी और क्रूरता से उजागर किया गया है। मौत को भी अपने हक में इस्तेमाल करने के कौशल में निपुण वे लोग उन लड़कों से भी ज्यादा मौकापरस्त, चालाक और धूर्त हैं जो बूचड़खाने में ले जाई जाती हुई निरीह बकरियों का दूध दुहते हैं। कहानी के शुरू और अन्त में बूचड़खाने के प्रसंग की व्यंजना कहानी की संवेदना को अनेक अर्थ-स्तरों पर खोलती चलती है।

सत्तर में प्रकाशित कहानियों को पढ़ने से एक बात यह सामने आती है कि संबंधों के आधार पर कहानियां गढ़ने के पुराने तरीके को लेखक अभी छोड़ नहीं पाया है। संबंधों की सन्दर्भ-भूमिका से हमें कोई इन्कार नहीं। संबंधों के धरातल पर बड़े-बड़े परिवर्तनों को आंका जा सकता है। पर, इसके लिए यह जरूरी है कि संबंधों की कहानियों के नुस्खे को छोड़ कर संबंधों में झांक रहे आधुनिक आदमी की पहचान की जाए। निर्मल वर्मा की कहानी 'छुट्टियों के बाद' (सारिका, मार्च) में यह पहचान तो है पर कहानी के रचाव में यह पहचान पूरी तरह रसी बसी नहीं है और इसका लहजा पुराना है। यही बात राजेन्द्र अवस्थी की कहानी 'मसहरी' (कहानी, नवम्बर) के लिए भी कही जा सकती है। इस में नैरेटर इरा के साथ अपने संबंध के अतीत संबंधों में खो जाता है। यह कहानी आधुनिक नारी की जटिल प्रकृति को उजागर कर सकती थी, अगर लेखक किस्सेनुमा विवरणों के बजाय अन्य कलात्मक उपकरणों द्वारा इस जटिलता को संप्रेष्य बना पाता। रामदरश मिश्र की कहानी 'अनिर्णयों के बीच एक निर्णय' (कल्पना, नवम्बर) में कथन स्फीति है और यह कहानी बाह्य परिवेश से टकराती हुई अन्ततः प्रकृति को बखूबी चित्रित करती है। सभी तरह के घटिया लोगों द्वारा घिरा हुआ एक संवेदनशील व्यक्ति अपने संतुलन को कैसे बनाए रखे - अपनी प्रकृति को खो दे या पागल हो जाए? आज के भ्रष्ट परिवेश में 'मैं' अपनी अन्तःप्रकृति को झुठलाता हुआ सहाय से जोर-जोर से बात करने लग जाता है। इस कहानी में सिर्फ संबंधों का नहीं, अन्तःप्रकृति के विघटन का बोध कराया गया है। संबंधों के आन्तरिक विघटन का ऐसा ही रूप चन्द्रा

औलक की कहानी 'इन्टरवल' (अंकन) में उभरता है। सुचिता धीरे-धीरे आकांक्षा रहित हो चुकी है और महिम के लिए भी कोई आत्मीय सूत्र नहीं बचा है। संबंधों के अन्तराल में झांक रही इस भाव शून्य स्थिति को उभारने में कहानी सफल रही है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'सांचे' (कहानी, दिसम्बर) में एक दूसरे के सन्दर्भ में असंगत पड़ चुकी लड़के-लड़की की स्थिति का चित्रण है। जिससे उनके सांचेनुमा व्यक्तित्वों की ओर संकेत तो मिल जाता है पर उस स्थिति का कोई गहरा एहसास नहीं हो पाता। निरुपमा सेवती की कहानी 'टुच्चा' (धर्मयुग) में संबंधों में प्रतिफलित हो रहे आज के आदमी को पकड़ने की कोशिश झलकती है। जीवनगत स्थितियां प्रेम संबंधों को एक सुविधा से अधिक अहमियत नहीं देती। पर प्रेम संबंधों में व्याप्त यह सुविधापरकता इस कहानी में किसी गहरी या बुनियादी छटपटाहट द्वारा सन्दर्भित नहीं है। बीना रामानन्द की कहानी 'निष्कृति' (संचेतना, सितम्बर) अ-रोमानी बोध द्वारा संबंधों का अतिक्रमण नहीं। सान्त्वना निगम की कहानी 'अन्धे दायरे' (सारिका, मई) में बंधी हुई रूटीन से बाहर आने की छटपटाहट भी मिलेगी और जिन्दगी में व्याप्त एब्सर्डिटी की ओर भरपूर संकेत भी। अशोक अग्रवाल की कहानी 'मुट्ठी भर फेन' (कहानी, अप्रैल) में विवाह के बाद की बदली-हुई संक्रान्त मनःस्थिति का चित्रण है। तोष और अनुराधा की बातचीत के बीच आने वाले 'गैप' (Gap) या तोष के प्रश्नों के उत्तर में अनुराधा का सर्वथा भिन्न या अटपटी बात करना या पूछना संवेदना या मनःस्थिति की जटिलता का प्रभावी ढंग से बोध कराता है।

सैक्स 'आब्शेसन' को झटक कर, सैक्सगत स्थितियों के प्रति अ-रोमानी दृष्टि को तरजीह देना और उन्हें मानवीय स्थितियों और जीवन के मूल प्रश्नों से सम्बद्ध करके देखना जरूरी है। महेन्द्र भल्ला का सैक्स एड्वेंचर का लटका आज बड़ा बचकाना और किशोरपरक प्रतीत होता है। उनकी कहानी 'आगे' (आधार, फरवरी-मई) में जिस फूहड़ ढंग से यौन चित्रण है, उससे आज की सेक्सगत स्थितियों की जटिलता का अहसास नहीं होता। यह अहसास महीप-सिंह की कहानी 'सीधी रेखाओं का वृत' (धर्मयुग) में उभरा है। इसमें सैक्स को आधुनिक आदमी की मानसिकता के संदर्भ में उठाया गया है। कहानी का 'वह' जो पांच साल पूर्व सवी को उपेक्षित और अपमानित कर सकता था, आज सवी द्वारा उपेक्षित और अपमानित हुआ है और इस सवी को पा लेने की ललक उस में बड़ी शिद्दत से जाग उठती है। इस तरह यह कहानी सैक्सगत जीवन की जटिलता और विडम्बना का बोध कराती है। जगदीश चतुर्वेदी की

कहानी 'विवर्त' (सारिका, मई) सैक्स संबंधी रोमानियत को नकारने वाली कहानी है। जरीना जब किशोरी थी तो उसे पाने के लिए वह (चुन्नू) बहुत कोशिश करता रहा। पर, तीस वर्ष की जरीना से जब उसकी मुलाकात होती है तो उसके मन में कोई भाव नहीं उठता। उसे लगता है कोई संबंध जड़ होकर इतना टूट गया है कि उसे फिर से दोहराया नहीं जा सकता-उसे लग रहा था कि वह जरीना से नहीं, किसी ऐसे व्यक्ति से मिल कर आया है जिसका कोई अस्तित्व कभी उसके लिए नहीं था, जो मात्र औपचारिक हो कर ही उससे मिलता रहा है।

पिछले वर्षों के समान इस वर्ष भी अकेलेपन, अजनबीपन, आत्मपरायेपन और मृत्यु-भय के गिर्द अनेक कहानियां रची गई हैं। ऐसी कहानियों में मानव नियति का सन्दर्भ या मानव स्थिति और स्वभाव की विडम्बना या उसके प्रति व्यंग्य का अंदाज मौजूद रहा है। पर, अक्सर होता यह है कि ऐसी कहानियां चालू मुहावरों में फंस जाती हैं और अकेलेपन, अजनबीपन और मृत्यु-भय का कोई रचनात्मक बोध नहीं करा पातीं। रवीन्द्र कालिया की कहानी 'मौत' (आधार) मौत के भय की नहीं, मौत के सामने घटित होने वाली आत्मविडम्बनात्मक स्थिति की कहानी है, जिसे कहानी के अन्त का मैलोड्रामैटिक अंश काफी कमजोर बना देता है। जितेन्द्र भाटिया की कहानी 'एक आदमी का शहर' (सारिका, अप्रैल) में शहरी जीवन के अकेलेपन की संवेदना व्यक्त है। लेखक ने इस संवेदना को शहर की अनेक स्थितियों और प्रसंगों में रखकर अभिव्यक्त किया है। उसे महसूस होता है कि शहर में चाहे कितनी ही बड़ी बात हो जाए, कोई चौंकता नहीं और किसी का किसी से कोई संवेदनात्मक सरोकार नहीं। उस आदमी को पागल समझा जाता है जो उम्मीद लगाए है कि लोग मेरी ओर देखेंगे, मेरी मांगें पूरी करेंगे। शंकर कहानी की मूल संवेदना को व्यक्त करता हुआ कहता है 'यही कि हर इंसान अन्ततः अकेला है, कि आखिरकार हर चीज का सन्दर्भ अपने आप पर समाप्त होता है'। कुलदीप बग्गा की कहानी 'दूसरा एक और' (तटस्थ) अपने नाम के प्रति आकर्षण और मोह के क्रमशः रीतने की कहानी है जो आत्म-परायेपन का बोध कराती है। राकेश वत्स की कहानी 'इतिहास के हाथ' (मंच) में फैंटेसी के आंशिक विधान द्वारा मानव नियति के भयावह और वीभत्स यथार्थ को उभारने की कोशिश झलकती है, गो इस यथार्थ का रंग कुछ ज्यादा काला, गाढ़ा और चटख है (शायद फैंटेसी को निबाहने के कारण)। पर इसमें सन्देह नहीं कि यह यथार्थ कहानी की पूरी संरचना में व्याप्त है।

इस वर्ष कुछ ऐसी कहानियां भी प्रकाशित हुई हैं जिनमें सूक्ष्म परतों में लिपटे हुए आदमी के उलझाव को मानसिक स्तर पर संक्रमित करने की कोशिश की गई है। ये कहानियां न उग्र हैं, न सपाट। रोमानी अरोमानी का भेद भी यहां आकर समाप्त हो जाता है। ये कहानियां सैद्धांतिक ऊहापोहों से मुक्त, कलात्मक आग्रहों के साथ, कहानी की मौलिक पहचान कराने की कोशिश करती हैं। यह कोशिश कहां तक सफल है या असफल इसे कुछ कहानियां लेकर देखा जा सकता है। काशीनाथ सिंह की कहानी "चोट' (आधार) में शहर के रेस्तरां में बैरे का काम करने वाले संचा (ठाकुर) की मनःस्थिति का चित्रण हुआ है। इस कहानी की संरचना और उसके कलेवर के भीतर से ऊपरी अर्थ के समानान्तर-चलने वाले एक भीतरी अर्थ को व्यक्त करने की कोशिश की गई है। यह ज़रूर है कि कहानी में ऊपरी अर्थ का पलड़ा भारी पड़ता है और उस हद तक भीतरी बोध के संप्रेषण में बाधक बनता है। महीप सिंह की कहानी 'नींद' (कहानी, जून) कथा के कलेवर में से ही दुविधाग्रस्त मनःस्थिति को सर्जित करती चलती है। इसमें कोई एंटी कथात्मक मुद्रा नहीं है बल्कि कथा की भीतरी संरचना कहानी को मानसिक स्तर पर खोलती चलती है। इसमें न स्थिति का कथन है न चित्रण, केवल संवेदनात्मक संस्पर्श द्वारा पात्र की मानसिकता को उभार दिया गया है। विजयमोहन सिंह की कहानी 'ऋषि' (राष्ट्रवाणी, अप्रैल-मई) गहरे मानसिक स्तरों पर चलने वाली कहानी है। कहानी की शुरू की पंक्तियां एक जटिल और अन्तर्विरोधपूर्ण मनःस्थिति को हमारे सामने रखती हैं -'मुझे सांस लेने में तकलीफ हो रही थी और मैं लगातार बुद्धिहीन होता चला जा रहा था। मैं वही हूं - मैंने सोचा, लेकिन इस वक्त सिकुड़ कर केंचुआ हो गया हूं। यह बरदाश्त के बाहर है। पर मैं हूं, वही - सांस लेने की तकलीफ और मूढ़ता में डूबा हुआ।'[1] यही मनःस्थिति पूरी कहानी में फैलती है और कहानी की मूल संवेदना को निर्मित करती चलती है। धर्मेन्द्र गुप्त की कहानी 'अपंग संज्ञा' (तटस्थ) एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपने परिवेश की भ्रष्टता के विरुद्ध लड़ता है और दूसरों को न्याय दिलाने की खातिर अपनी निजता या अस्मिता खो बैठता है। वह स्वेच्छा से कुछ भी करने में समर्थ नहीं रहा है और अपने बुने हुए जाल में स्वयं उलझ कर रह गया है। एक गहरा खाकी रंग उसकी समस्त चेतना को ग्रस लेता है और न वह कुछ सोच पाता है न पहचान पाता है। इस तरह यह कहानी आज के परिवेश में आन्तरिक स्तरों पर विघटित और रूपान्तरित हो रहे मनुष्य की कहानी बन गई है। श्रवण कुमार की कहानी 'असमर्थ'[2] (कहानी, दिसंबर) मानसिक असामर्थ्य के एक रूप को उभारने की कोशिश करती है। कहानी के "मैं" में बताशों को पाने के लिए जबरदस्त ललक के बावजूद वह उसे पत्नी की अनुपस्थिति में भी छूने का

साहस नहीं कर पाता । इसका कारण है उसका हारा हुआ भीतरी एहसास: 'दरअसल मेरे अन्दर एक ऐसा आदमी बैठा हुआ है जिसे मैं कभी यकीन नहीं दिला सकता कि वह हारा हुआ नहीं है । मैंने उस से काफी जिरह की है लेकिन उस हारे हुए आदमी को कभी आश्वस्त नहीं कर सका हूं' यह असमर्थता कहानी में मानसिक स्तरों पर खुलती चलती है ।

इधर जो कहानियां राजनीतिक या अन्य व्यवस्थाओं और धारणाओं के गिर्द लिखी गई हैं, उनके संबंध में सब से बड़ा खतरा यह है कि वे कहीं प्रतिक्रिया (प्रतिक्रियावादी नहीं) कहानियां या अखबार का इस्तेमाल करने वाली कहानियां बनकर न रह जाएं जब कि ज़रूरी यह है कि ऐसी कहानियों में संवेदनात्मकता के साथ-साथ बेचैन कर देने वाला विचारतंत्र हो । अशोक अग्रवाल की कहानी 'प्रजातंत्र' (नयीधारा, जनवरी) तात्कालिक उत्तेजना में रचित होने के कारण व्यवस्था या प्रजातंत्र के प्रति आक्रोश-उड़ेलने वाली कहानी बन गयी है । आक्रोश का स्वर सतीश जमाली की कहानी 'अर्थतंत्र' में भी है । कहानी का 'वह' देश को कई बार गंदा और सड़ा हुआ मुल्क कहता है । वह वर्षों से इस सारी व्यवस्था से घृणा करता आया है क्योंकि इस व्यवस्था के चलते एक- एक व्यक्ति की चमड़ी में कीड़े घुस गये हैं और वह अपाहिजों की तरह उनकी मार सहन करता हुआ दौड़ता जा रहा है । कहानी की मुद्रा यथा स्थिति को बदलने के तेवर में पूरे तन्त्र को चुनौती देने वाली है, पर संवेदनात्मक स्तर पर यह कहानी व्यवस्था के सामने ढहते हुए आदमी की कथा है । यह आदमी इब्राहीम शरीफ की कहानी 'दिग्भ्रमित' (धर्मयुग) में भी है । इस कहानी नें डरे हुए आदमी के एहसास को और विकल्पहीनता की उसकी स्थितियों को क्रूर राजनीतिक सन्दर्भ में उजागर किया है । राजनीति से सम्बद्ध लोग उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं और वह पाता है कि उसके लिए कोई रास्ता नहीं रह गया है । आम आदमी यह जानता है कि इनसे छुटकारा तभी मिल सकता है जब इन सभी की खाल उधेड़ी जाए पर तभी कहानी के 'वह' को एहसास होता है कि वह कहीं से इतना पोला हो गया है कि जलूस तो जलूस वह खुद को भी रगड़ने की हालत में नहीं है । इसी तरह रमेश उपाध्याय की कहानी 'मदद' (कल्पना, फरवरी) भ्रष्ट व्यवस्था में आदमी की निरीह स्थिति को व्यंजित करती है । स्वेच्छा से कुछ भी करना उसके वश में नहीं । सभी कुछ जान लेने के बाद, अन्याय और अत्याचार के कारणों का पता चल जाने पर भी आदमी क्या कर सकता है ? 'मैं खून देखता हूं और न मुझमें इन्सानियत भड़कती है, न मर्दानगी । मुझे सिर्फ सिगरेट की तलब लगती है और मैं पाता

हूं कि मेरी माचिस अभी तक गीली है ' बेवजह मरते हुए आम आदमी के लिए सार्थक हो पाने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं दिखती । विभु कुमार की कहानी 'सही आदमी की तलाश' (धर्मयुग) भी गलत व्यवस्था में पिस रहे आम आदमी की यातना को उभारती है । सही आदमी जेल में सड़ता है या पिटता है । उसके लिए कोई विकल्प नहीं । राजनीतिक चक्र उसे भीतर तक काटता चलता है । सुशील शुक्ल की कहानी 'कगार' (संचेतना, अफ्रेशियाई कथा-समीक्षा-विशेषांक) इन कहानियों से इस स्तर पर अलग और विशिष्ट है कि इसमें व्यवस्था में पड़े हुए आदमी की जटिल स्थिति का बोध कराया गया है । यह कहानी व्यवस्था के सन्दर्भ में आक्रोश की नहीं, विडम्बना की कहानी है । कहानी के शुरू में लड़का किसी कगार को कट कर गिरते देखना चाहता है और लड़की को इस से डर लगता है । पर, कहानी के अन्त में लड़की भी किसी कगार को कट कर गिरते देखना चाहती है । उसे लगता है कि व्यवस्था से विरोध करने की बात तो दूर, हम कुछ भी नहीं कर सकते । 'लड़का जानता है कि व्यवस्था नशीली नींद सो रही है । उसे जगाने के लिए एक विस्फोट की आवश्यकता है ।' पर, व्यवस्था के सामने वह स्वयं को निरीह और लाचार पाता है । इन कहानियों में निरीहता और लाचारी का एक सांझा संवेदनात्मक बोध है जिस की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, पर इस बोध के पीछे तिलमिला देने वाले विचार या विचार की पैनी धार का अभाव है ।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सत्तर की जिन कहानियों का विश्लेषण - मूल्यांकन ऊपर किया गया है, उनके अतिरिक्त, सत्तर में कुछ महत्वपूर्ण कहानी संग्रह भी प्रकाश में आए हैं । कृष्ण बलदेव वैद का कहानी संग्रह 'दूसरे किनारे से' इस वर्ष का एक विशिष्ट कहानी संग्रह है । इस संग्रह की अधिकांश कहानियां ऐसी हैं जो सैक्स सम्बन्धी बदली हुई मानसिकता के संदर्भ में सम्बन्धों की जटिलता को उभारती हैं । इस संग्रह की दो कहानियां 'त्रिकोण' और 'सब कुछ नहीं' उदाहरण के तौर पर ली जा सकती हैं । 'त्रिकोण' कहानी में पति, पत्नी और प्रेमी का बिल्कुल नया त्रिकोण है क्योंकि प्रत्येक की मन:स्थिति बदली हुई है । सम्बन्धों का यह बदला हुआ रुख अहं के खोल को बनाए रखने और उसी में सिमट जाने का है । सैक्स सम्बन्धी भावुक दृष्टि के लिए यहां कोई जगह नहीं । वैद की कहानियों में सैक्स सम्बन्धी दृष्टि नगरीय और आधुनिक है । उनकी कहानी 'सब कुछ नहीं' में यौन सम्बन्धों की इस आधुनिक दृष्टि को देखा जा सकता है ।

विवाहित मर्द और औरत के आपसी सम्बन्धों और मन:स्थितियों को यहां अत्यन्त सहज ढंग से चित्रित किया गया है। उन दोनों की मन:स्थिति को यहां शब्दों से कथित नहीं किया गया बल्कि बड़े मामूली शब्दों में ऐसे अर्थ संकेत और संदर्भ रख दिए गए हैं जो मन:स्थिति की जटिलता को व्यंजित करते हैं। 'नीला अन्धेरा', 'रात' और 'दूसरे किनारे से' इस संग्रह की अन्य विशिष्ट कहानियां हैं। 'भूत', 'अवसर', 'ऋण', 'अलाप', 'वह मैं हम', इस संग्रह की साधारण और औसत दर्जे की कहानियां हैं।

बदीउज़्ज़मां का कहानी-संग्रह 'अनित्य' 70 में प्रकाशित एक अन्य महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानियां अपने परिवेश की प्रामाणिक जानकारी देने का प्रयास करती हैं। इन कहानियों में आधुनिक दिखने की कोई बड़बोली मुद्रा नहीं है। इस संग्रह की कहानी 'चौथा ब्राह्मण' बदीउज़्ज़मां की ही नहीं, समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना है। आज के आदमी की हताश और भयाक्रान्त स्थिति का चित्रण इस कहानी में अत्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है।

वेद राही का कहानी संग्रह 'दरार' अपनी दो कहानियों 'दरार' और 'हर रोज' के लिए याद रखा जाएगा। 'दरार' कहानी युद्ध की नहीं, युद्ध की पृष्ठभूमि की कहानी है। इस कहानी में ध्यान सिंह और लज्या के संबंधों में व्याप्त हो जाने वाली दूरी आन्तरिक स्तरों पर व्यक्त हुई है। 'हर रोज' महानगरीय सन्दर्भ में मानव स्थितियों को उजागर करने वाली कहानी है। साठे रोज सुबह साढ़े आठ बजे बोरीवली से ट्रेन में बैठता है, चर्च-गेट पर उतरता है, शाम को चर्च-गेट से बोरीवली की ट्रेन पकड़ता है और घर पहुंचता है। हर रोज का यह यांत्रिक क्रम उसे भीतर से सोख रहा है। निरर्थक होते जाने का बोध मानवीय नियति का भयावह साक्षात्कार कराता है। साठे देखता है - ट्रेन के दरवाजे पर खड़े, आंखें बन्द किए एक व्यक्ति को जो गाड़ी की तेज गति के साथ झूल रहा है। साठे सोचता है इस तरह से झूलता हुआ यह आदमी किसी समय भी बाहर गिर सकता है। क्यों न बांह पकड़ कर वह उसे सीट पर बैठा दे। साठे ने आगे बढ़ना चाहा पर रुक गया। ख्याल आया यह तो आम बात है। उसके विचार का रुख ही बदल गया। और वह आदमी चलती ट्रेन के दरवाजे पर झूलता हुआ गिर गया और मर गया। महानगर में सहानुभूतिशून्य होते जाने का यह रोज का क्रम है और इसी का बोध यह कहानी कराती है। इन दो कहानियों के अतिरि

इस संग्रह में फिल्मी जीवन से सम्बद्ध कई कहानियां हैं जिनमें अनुभव की प्रामाणिकता तो है पर ये कहानियां सर्जित न होने के कारण हल्की रह गयी हैं ।

सत्तर में प्रकाशित कुछ अन्य कहानी-संग्रह हैं - राजेन्द्र अवस्थी का 'तलाश', विजय चौहान का 'मिजराब', विभु कुमार का 'सही आदमी की तलाश' रमाकान्त का 'जिन्दगी भर का झूठ', राकेश वत्स का 'अतिरिक्त तथा अन्य कहानियां', कृष्णा अग्निहोत्री का 'टीन के घेरे' और होतीलाल भारद्वाज का 'तीन कमरों का मकान' । इन संग्रहों की कहानियों में वैविध्य है । जिन्दगी के बहुविध अछूते पहलुओं और आज के जटिल रूपों से ये कहानियां साक्षात्कार कराती हैं । मानव स्थिति के यथार्थ को कहीं व्यक्ति के सन्दर्भ में, कहीं समाज के सन्दर्भ में रख कर चित्रित करने की कोशिश इनमें है । इस कोशिश में ये कहानीकार सर्वत्र सफल नहीं रहे हैं । कई बार ऐसा हुआ है कि कहानियों में सामान्य और औसत स्थितियां उभरी हैं, किन्तु मानव-स्थितियों से उनका कोई रिश्ता नहीं जुड़ सका है ।

सत्तर की कहानियों में से गुज़रते हुए कोई दावा करना या निष्कर्ष निकालना अप्रासंगिक होगा, पर इतना कहा जा सकता है कि आज की कहानी मानव स्थिति को उजागर करने की दिशा में तेजी से बढ़ रही है । सिद्धांतों और चालू मुहावरों के वाग्ज़ाल में लुप्त हो रही कहानी को कमोबेश पुनः अन्वेषित करने और उसकी मौलिक पहचान कराने की कोशिश सत्तर में की गई है ।

हिंदी नाटक और रंगमंच : 1970

– लक्ष्मीनारायण लाल

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी नाट्य लेखन और प्रदर्शन को अपूर्व गति प्राप्त हुई। रंगकर्मी इस क्षेत्र में काफी उत्साह से आए और हिन्दी का नया नाट्य लेखन शुरू हुआ। कई नये नाटककार प्रकाश में आए, साथ ही भारत की अन्य भाषाओं से भी अच्छे नाटक अनूदित होकर हिन्दी में आने लगे। सही अर्थों में इस तरह हिन्दी का रंगमंच राष्ट्रीय रंगमंच की भूमिका अदा करने लगा। ऐतिहासिक और पौराणिक नाट्य धारा हमारे यहां की बड़ी अबाध-धारा थी और 'कोणार्क' के लेखन से इस क्षेत्र में एक नई शुरुआत हुई। इसी तरह सामाजिक नाट्य धारा में 'मादा कैक्टस' जैसे प्रतीकवादी रंग-धर्मी नाटक से सामाजिक यथार्थ का एक नया नाट्य रूप शुरू हुआ।

आगे चल कर 'कोणार्क' और 'मादा कैक्टस' इन दोनों धाराओं का अप्रतिम विकास हिन्दी में हुआ और 'अंधा युग', 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'रात रानी', 'दर्पण' इन सभी प्रसिद्ध नाटकों से हिन्दी का रंगमंच अभूतपूर्व भूमिका अदा करने लगा और एक बड़े रंगमंच आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। किन्तु जब हम पिछले वर्षों या किसी एक वर्ष के हिन्दी नाटक का लेखा-जोखा करने चलते हैं तो हमें सहसा यह बात याद आने लगती है कि इतने बड़े रंगमंच आन्दोलन के होते हुए भी हिन्दी में शायद नाटक ही अन्य विधाओं की तुलना में सबसे कम लिखा जा रहा है और जितना लिखा जा रहा है उसका स्तर अन्य साहित्यरूपों की कृतियों की अपेक्षा कमजोर है।

दरअसल यह स्थिति केवल हिन्दी की ही नहीं है, प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में नाट्य-लेखन कम है और उनके प्रदर्शन तो और भी कम हैं। कारण यह है कि नाटक रंगमंच का सत्य है और रंगमंच प्रदर्शन का। इसलिए इसकी स्थिति प्रत्यक्ष रूप से समाज सापेक्ष है, व्यक्ति सापेक्ष नहीं। पिछले दो तीन वर्षों में हिन्दी के मौलिक नाट्य-लेखन जगत में कई महत्वपूर्ण नाट्य-कृतियां आई हैं, जैसे - 'आधे-अधूरे', 'शतुरमर्ग', 'त्रिशंकु', 'कलंकी', 'सूर्यमुख', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'बिना दिवारों का घर'। इन सभी नाटकों के माध्यम से समसामयिक भारतीय समाज का यथार्थ रंग-चित्र प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान समाज के पति-पत्नी के संबंधों में एक नया तनाव आया है। इससे बार-बार यह लगा है कि हमारे घर अधूरे हैं। इनमें रहने वाले दम्पति भी आधे अधूरे हैं - इसका सुन्दर चित्र 'आधे अधूरे' में प्रस्तुत हुआ है। इस नाटक का रंगमंच शिल्प इस अर्थ में नया है कि इसमें एक ही व्यक्ति कई व्यक्तियों की भूमिकाएं लेकर अवतरित हुआ है।

'शुतुरमुर्ग' एक राजनीतिक फन्तासी है, जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक तस्वीर बड़े मार्मिक और मौलिक ढंग से प्रस्तुत की गई है। शुतुरमुर्ग प्रतीक है हमारे उस राजनीतिक भावबोध का जहां निर्णय लेने वाला राज-नेता स्थिति आने पर शुतुरमुर्ग की तरह अपनी गर्दन अंध-विश्वास की बालू में गड़ा लेता है। इसमें एक ऐसी नगरी की कल्पना की गई है जहां राजा तमाम अक्ल-मंद और चुगलखोर मन्त्रियों के बीच फंस गया है, सही निर्णय नहीं ले पाता है। इस नाटक का प्रदर्शन कलकत्ता, जयपुर और कानपुर में बड़ी सफलता से हुआ है; उसी तरह 'आधे अधूरे' का प्रदर्शन बंबई, कलकत्ता और दिल्ली में सफलतापूर्वक हुआ है।

'कलंकी' में 'हिन्दू मिथ' का आश्चर्यजनक प्रयोग आधुनिक बोध की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। 'कल्कि अवतार' की कथा प्रसिद्ध है। उसमें बताया गया है कि कलियुग में जब सब कुछ इतना बिगड़ जायगा कि उसका हल मनुष्य नहीं ढूंढ पाएगा तो कल्कि अवतार होगा। वही सारी समस्याओं का समाधान करेगा। 'हिन्दू मिथ की इस कथा का उपयोग नाटककार ने व्यक्ति स्वतंत्रता बनाम सत्ता के प्रश्न को प्रकट करने के लिए किया है। इसमें एक ऐसी काल्पनिक नगरी में नाटक की कथा शुरू होती है जहां अकाल पड़ा हुआ है; लोग मर रहे हैं, नगर में अवधूत आकर शव-उपासना कर रहा है, ताकि कल्कि अवतार हो और लोग फिर सुखी और सम्पन्न हों। इस परिवेश में एक

निर्वासित युवक अपने घर वापस आता है और उस नगर के लोगों से कुछ बुनियादी सवाल करता है।

'सूर्यमुख' में पौराणिक संवेदना लेकर नाटककार ने पुनः आजादी के बाद की नयी पीढ़ी के बुनियादी सवाल को रंग दृष्टि दी है। यह नाटक उस द्वारिका के जीवन पर आधारित है जहां अब न कृष्ण हैं, न बलराम, न कोई अन्य वयोवृद्ध। जहां केवल कृष्ण के पुत्र हैं और उनकी विधवा माताएं हैं तथा तीनों तरफ से समुद्र द्वारिका को डुबाने जा रहा है। इस अंधेरे संसार में सूर्य-मुख है, कृष्ण का ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न और उनकी प्रिया वेनुरती। इस नाटक का प्रदर्शन नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, नई दिल्ली कर रहा है और निर्देशन अल्काजी कर रहे हैं। 'मिस्टर'अभिमन्यु' सामाजिक नाटक है, परोक्ष में है चक्रव्यूह में फंसे अभिमन्यु का हिन्दू मिथ। आज का मनुष्य अपने ही बनाए हुए चक्रव्यूह में किस तरह फंसा है और किस तरह बिना लड़े मारा जाता है, इसका महत्वपूर्ण दस्तावेज इस नाटक में मौजूद है। इसका प्रदर्शन कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता, बंबई आदि नगरों में हुआ है। कई अन्य नगरों में हो रहा है।

'चार अपाहिज' और 'बिना दिवारों का घर', पिछले वर्षों की उल्लेखनीय नाटक-कृतियां हैं और कहा जा सकता है कि इन से शौकिया रंगमंच को बल मिला है।

1970 के हिन्दी नाटकों पर विचार करते समय हमारे सामने कुल सात नाटक आते हैं। (1) गिरिराज किशोर लिखित 'नरमेध', (2) श्याम उमाठे लिखित 'औरत', (3) शोभना भूटानी लिखित 'तो, कल', और (4) 'शायद हां', (5) सुरेन्द्र वर्मा लिखित 'द्रोपदी', (6) आर० जी० आनन्द लिखित 'दलदल' और (7) भगवतीचरण वर्मा लिखित - 'रुपया तुम्हें खा गया'।

अनूदित और रूपांतरित

हिन्दी में अन्य भाषाओं से अनूदित और रूपांतरित कई नाटक गत वर्ष सामने आए। अनुवाद के क्षेत्र में पहला है बंगला का 'छायानट', जिसके मूल लेखक उत्पलदत्त हैं और अनुवादक हैं - कृष्ण कुमार। दूसरा बंगला नाटक है - बादल सरकार लिखित 'सारी रात' और तीसरा है 'पगला घोड़ा'। इन दोनों नाटकों का अनुवाद प्रतिभा अग्रवाल ने किया है। जरासंध की बंगला कहानी 'लोहे की दीवार' (लोह कपाट के हिन्दी रूप) का नाट्य रूप

अनिल कुमार मुखर्जी ने तैयार किया । बंगला से हिन्दी में अनूदित अन्य नाटकों में रामचन्द्र कात्यायन द्वारा अनूदित संतु बोस का 'घटना-दुर्घटना', कृष्ण कुमार द्वारा अनूदित मोहित चटर्जी का 'निषाद' प्रमुख कृतियां हैं । इनसे हिन्दी के माध्यम से बंगला नाट्य साहित्य की समसामयिक तस्वीर मिलती है ।

कन्नड़ भाषा से हिन्दी में सिर्फ एक नाटक - ब० ब० कारंत द्वारा अनूदित गिरीश कारनाड का 'हय बदन' उल्लेखनीय है ।

मराठी से विजय तेंदुलकर का 'पंछी ऐसे आते हैं' का अनुवाद श्रीमती केशवचन्द्र वर्मा ने किया है ।

1970 में विदेशी नाटकों के कई अनुवाद हिन्दी में आए हैं और उनके प्रकाशन और प्रदर्शन भी हुए हैं, जैसे - (1) तलछट (लोअर डैप्थ्स)- मैक्सिम गोर्की ; अनुवादक: जीत शर्मा (2) कांच के खिलौने (द ग्लास मेनेजरी) - टैनेसी विलियम्स ; रूपान्तरकार : हरिकिशन लाल पराशर (3) आवाज़ (एन इन्सपैक्टर कौल्स) - जे० बी० प्रीस्टले ; अनुवादक : कृष्ण कुमार, (4) गोंडो के इन्तजार में -(वेटिंग फार गॉडो) सैमुअल बैकेट ; अनुवादक : कृष्ण बल्देव वैद (5) इन्तजार - सैमुअल बैकेट ; अनुवादक : अनिल कुमार मुखर्जी, (6) गेंडा (राइनोसेरस) - आयनेस्को ; अनुवादक : अनिल कुमार मुखर्जी, (7) एक सेल्समैन की मौत - (डैथ आफ ए सेल्समैन) आर्थर मिलर ; अनुवादक : अनिल कुमार मुखर्जी (8) तीन टके का स्वांग (थ्री-पैनी आपेरा) - बर्टोल्ट ब्रेख्त ; अनुवादिका : सुरेखा सीकरी।

हिन्दी के मौलिक नाटकों में शोभना भूटानी और सुरेन्द्र वर्मा की नाट्य कृतियों की ओर सहसा ध्यान आकृष्ट होता है । शोभना भूटानी ने अपने दोनों मौलिक नाटकों - 'शायद हाँ' और 'तो, कल' में समसामयिक जीवन और समाज का जैसे आँखों देखा चित्र प्रस्तुत किया है । इन दोनों कृतियों में नए रूप-बंध और नये शिल्प की खोज है । साथ ही बड़ी निर्भयता और विश्वास के साथ व्यक्ति और समाज के समसामयिक और दैनन्दिन यथार्थ को चित्रित किया गया है । इनके संवाद और संवादों की भाषा में ताजगी है और लेखिका की प्रतिभा का सुंदर संकेत भी है ।

सुरेन्द्र वर्मा लिखित 'द्रोपदी' नाटक – (जिसका प्रदर्शन दिशान्तर ने किया और प्रकाशन 'नटरंग' में हुआ) कई बातों में दिलचस्प है और सृजन का अच्छा उदाहरण है । इस समसामयिक सामाजिक नाटक में 'द्रोपदी' संबंधी हिन्दू

मिथ सांकेतिक रूप में अच्छे ढंग से प्रयुक्त हुआ है। मूल पात्र है मन मोहन और चार नकाब वाले हैं, वैसाखी के साथ; और ये पांचों पात्र इस नाटक में बसी, द्रोपदियों के यथार्थ को उद्घाटित करते हैं। यह दो अंकों का नाटक है। पहला अंक दिन के वक्त घर में संपादित होता है और दूसरा रात के वक्त घर के बाहर चरितार्थ होता है। सुरेखा इस नाटक की सूत्रधार है। वही 'द्रोपदी' के मिथ को अपने में समेटने और प्रकट करने में सफल होती है।

इस नाटक में कई रंगमंचीय प्रयोग हुए हैं। लगता है कि अपनी बुनियादी बात के लिए नाटककार ने कई विदेशी और भारतीय नाट्य-परंपराओं का बखूबी इस्तेमाल किया है। मेरा निश्चित मत है कि ऐसे साहसिक प्रयोग हिन्दी के नए रंगमंच की तलाश में बहुत मूल्यवान हैं और इनसे हिन्दी रंगमंच को बहुत बल मिलेगा। 'द्रोपदी' नाटक की भाषा, उसका कथ्य और उसका रंगमंच पक्ष सभी सबल हैं और उनका प्रभाव पढ़ने से भी पड़ता है और देखने से भी।

1970 के अनूदित नाटकों में वे नाटक हिन्दी मंच पर अपेक्षाकृत ज्यादा अभिनीत हुए हैं, जो भारतीय भाषाओं से हिंदी में आए हैं - जैसे विजय तेंदुलकर का 'पंछी ऐसे आते हैं' और बादल सरकार का 'पगला घोड़ा' और 'सारी रात'। पश्चिम के नाटक हिन्दी में लगातार अनूदित हो रहे हैं, लेकिन उनका प्रदर्शन अपेक्षाकृत कम ही होता है।

पिछले वर्षों में भारत की किसी भी भाषा में लिखा कोई भी उल्लेखनीय नाटक शेष नहीं है, जिसका अनुवाद और प्रस्तुतीकरण हिन्दी में न हुआ हो। इसलिए बड़े विश्वास से यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच का जो महत्त्वपूर्ण चरण प्रारंभ हुआ इस दशक में उसका अच्छा विकास हुआ है। इन वर्षों में लेखन, प्रदर्शन और रंग -समीक्षा तथा दर्शक के सौन्दर्यबोध में परम्परा का प्रयोग, प्राचीन और नवीन, पूरब और पश्चिम, श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ इन सभी रंग दृष्टियों का विकास हुआ है। समूचे हिन्दी क्षेत्र में और साथ ही बंबई, कलकत्ता, दिल्ली, जयपुर आदि नगरों में जिस वेग और गम्भीरता से हिन्दी नाटकों के प्रदर्शन हो रहे हैं, उनसे बड़ी आशा बंधती है। ऐसा लगता है कि आजादी के बाद का प्रत्येक दशक नाट्य-लेख-प्रदर्शन, प्रशिक्षण आदि सभी क्षेत्रों में विकासमान है।

हिंदीतर भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित साहित्य: 1970

- महेन्द्र चतुर्वेदी

जब हम हिंदीतर भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित साहित्य का विहंगावलोकन करते हैं तब चाहे वह किसी एक वर्ष का(जैसे 1970 का)हो अथवा संपूर्ण गद्य-युग का, एक स्तर पर घोर निराशा होती है। यह स्तर ज्ञानात्मक साहित्य का स्तर है। समूचे आधुनिक ज्ञानात्मक साहित्य पर दृष्टिपात कर जाइए, एक भी कृति ऐसी नहीं मिलेगी जो किसी भारतीय भाषा से हिंदी में आई हो। कहने का तात्पर्य है कि तथाकथित समृद्ध भारतीय भाषाएं और उनके साहित्य ज्ञानात्मक कृतित्व की दृष्टि से इतने अंकिचन हैं कि शायद विनिमय का प्रश्न ही किसी के मन में नहीं उठा। दरिद्र को दरिद्र दे भी क्या सकता है । किसी प्रफुल्लचंद्र ने, किसी जगदीश बोस ने, किसी रामानुजन अथवा रामन ने यदि कभी अपने वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रकाश में लाने के लिए अपनी भाषा का सहारा लिया होता तो शायद आज यह मंच सर्वथा शून्य न होता - इस पर उपस्थित छायाकृतियाँ ,चाहे संख्या में कम होतीं, परन्तु गरिमामयी होतीं। पिछले पच्चीस-तीस वर्ष में हिन्दी मंच पर तो फिर भी यत्किंचित् पट-परिवर्तन हुआ है और कम से कम कुछ ज्ञानात्मक कृतियां ऐसी अवश्य आई हैं जो मूलतः हिंदी में लिखी गई हैं और जो उल्लेखनीय भी हैं - और जिन का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो तो निश्चय ही उनकी समृद्धि होगी, परन्तु अन्य भारतीय भाषाएं इस दृष्टि से शायद अभी बहुत पीछे हैं । अतः

एक सामान्य निष्कर्ष यह है कि ज्ञानात्मक साहित्य के स्तर पर हिन्दीतर भाषाओं से अनूदित रचनाओं का व्यापक अभाव है और यह अभाव तब तक रहेगा जब तक हम भारतीय पराई वाणी में अभिव्यक्ति की परंपरा नहीं त्यागते। 1970 का वर्ष इस व्यापक स्थापना का अपवाद नहीं है।

अत: हमें अपना सर्वेक्षण अनिवार्यत: शक्ति के साहित्य अथवा शास्त्रेतर (काव्य) साहित्य तक ही सीमित रखना पड़ेगा।

जब हम हिंदीतर भारतीय भाषाओं से अनुवाद की बात करते हैं तो हमारा ध्यान सबसे पहले बंगला की ओर जाता है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आधुनिक हिंदी गद्य ने जब अपना रूप सजाया-संवारा तो उसने बंगला से बहुत कुछ सीखा—लिया। पाश्चात्य साहित्य की नई विधाएं भी बंगला की राह हिंदी में आईं। हिंदी गद्य के आदिकालीन लेखकों में अनेक ऐसे थे जो बंगला को अपनी मातृभाषा की भांति लिख-बोल सकते थे और जिन की कृतियों पर बंगला का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक साहित्य की सबसे समर्थ और सशक्त विधा 'उपन्यास' का स्रोत भी बंगला ही है (वस्तुत: आधुनिक अर्थ में यह शब्द ही बंगला से हिंदी में आया) और बंगला उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद का जो क्रम उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में आरंभ हुआ था वह आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। पूर्ववर्ती युग में बंकिमचंद्र, रवीन्द्र और शरत् तथा आज ताराशंकर बंद्योपाध्याय, विमल मित्र, शंकर, प्रमथनाथ बिशी, बनफूल, जरासंध आदि हिंदी में इतने आत्मसात् और लोकप्रिय हो गए हैं कि वे हिंदी के अपने कथाकार बन गए हैं और हिंदी में इनके पाठकों की संख्या बंगला की तुलना में शायद किसी तरह कम नहीं होगी।

एक बात और विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनुवादों के माध्यम से जो रचनाएं हिंदीतर भाषाओं से हिंदी में आई हैं उनमें कथाकृतियों की - विशेषत: उपन्यासों की - संख्या सबसे अधिक है। यह बात समीक्षाधीन वर्ष के संदर्भ में ही सत्य नहीं है, व्यापक रूप से सत्य है। और यह कोई संयोग की बात नहीं - इसका ठोस आधार है। वस्तुत: आधुनिक व्यस्त औद्योगिक युग और युगीन अस्त-व्यस्त जटिल जीवन को उसके पूरे तीखेपन के साथ उभार कर रख देने की क्षमता यदि किसी साहित्य-विधा में है तो वह उपन्यास है। यों तो मानव-जीवन के किसी भी पक्ष की अभिव्यक्ति करने की सामर्थ्य किसी भी साहित्य-विधा में होती है परंतु फिर भी इस प्रकार का संबंध भी कुछ न कुछ होता ही है कि विशेष प्रकार की विषय-वस्तु किसी विधा-विशेष के अधिक अनुकूल पड़ती है। अस्तु, जीवन की जटिलताओं और इन जटिलताओं के

बीच उलझते हुए मानवीय संबंधों, बिखरती हुई व्यवस्थाओं और मूल्यों, विशृंखलित होती हुई धारणाओं और विचारधाराओं को अपने सुनम्य कलेवर में समा लेने की अद्भुत क्षमता उपन्यास में है और चूंकि आज का पाठक जागरूक है, जनजीवन के वैविध्य से परिचित होना चाहता है, जानना चाहता है कि भौगोलिक-भाषिक दीवारें कहां तक मानव-मानव को अलग कर पाती हैं और कहां तक आधारभूत मानवीय प्रतिक्रियाओं की एकरूपता में कोई भी दरार डालने में असमर्थ रह जाती हैं - इसलिए वह आज की सर्वाधिक प्रतिनिधि विधा उपन्यास को अपने मन के सबसे अधिक निकट पाता है। उसके चिंतन के अनेक स्तर उसमें एक साथ परिलक्षित होते हैं और अच्छे उपन्यास को पढ़ने के बाद वह एक प्रकार की परितृप्ति का अनुभव करता है। यही कारण है कि हम पाते हैं कि अनूदित रचनाओं में (यों यहां हम भारतीय भाषाओं से अनूदित रचनाओं की चर्चा कर रहे हैं परंतु यह बात विदेशी भाषाओं से अनूदित रचनाओं के संदर्भ में भी उतनी ही सही है) सबसे अधिक प्रतिनिधित्व उपन्यास का ही होता है।

उपन्यास और बंगला उपन्यासकारों की चर्चा हुई है तो सबसे पहले हम उन्हीं को लेते हैं। ताराशंकर बंद्योपाध्याय बंगला के समकालीन उपन्यासकारों में ही नहीं भारतीय उपन्यासकारों में मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं। ज्ञानपीठ के एक लाख रुपए के पुरस्कार से सम्मानित उनकी औपन्यासिक कृति 'गणदेवता' भारतीय ग्राम जीवन का एक विराट् महाकाव्य है। किंतु हिंदी में उनके नवीनतम प्रकाशित उपन्यास 'न्यायमूर्ति' को उपन्यासिका अथवा लंबी कहानी कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसमें कथा-संयोजन का इकहरापन और प्रभावान्विति उसके कहानीत्व का संकेत देते हैं। न्यायासन पर विराजमान न्यायमूर्ति ज्ञानेंद्रनाथ के सम्मुख जो वाद उपस्थित है उसमें कहीं किसी स्तर पर मानव के चिरंतन पशुत्व और शाश्वत मानवता का ऐसा संघर्ष निहित है जो उन्हें भीतर तक मथ डालता है। घटना की संपूर्ण परिस्थितियों और गहरे तर्क-वितर्क के बीच उन्हें लगता है कि वे स्वयं भी जाने-अनजाने, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में, अपनी पत्नी की हत्या के अपराधी हैं। उनका आत्ममंथन पाठक को झकझोर देता है और उसे लगता है कि कहीं न कहीं वह स्वयं भी अपराध की उसी परिधि में सिमटा हुआ जी रहा है। परिस्थितियों के विकट शिकंजे में जकड़े हुए ज्ञानेंद्रनाथ की विवशता पाठक को बेचैन कर डालती है। न्यायाधीश के सामने उनकी मृत पत्नी बार-बार साकार होकर मानो उनके न्याय-विचार के अधिकार को चुनौती दे जाती है, उनके कपटाचार का पर्दाफाश करती है और न्यायासन पर आसीन पाठक एक धर्मसंकट में ग्रस्त होकर अवसन्न रह जाता है। 'न्यायमूर्ति' सशक्त प्रभावशाली

कथाकृति है। यह जीवन के यथार्थ की एक कहानी है जिसमें लेखक ने अपने पांव बड़े आग्रह के साथ कठोर भूमि पर जमाए रखे हैं। हम सभी प्रायः दूसरों के अपराध के संदर्भ में न्यायाधीश बन बैठते हैं और अपनी उन्हीं कमजोरियों को एक ओर झटक कर अपने से अलग हो जाने का ढोंग रचते हैं। श्री हंसकुमार तिवारी सिद्धहस्त अनुवादक हैं और बंगला के मुहावरे और अभिव्यंजना की बारीकियों में उनकी गहरी पैठ है। 'न्यायमूर्ति' का अनुवाद भी उन्होंने सामान्यतः अच्छा ही किया है, यद्यपि उनके कुछ प्रयोग परिनिष्ठित हिंदी की कसौटी पर शायद खरे न उतरें।

विमल मित्र का एक छोटा-सा उपन्यास निकला है 'मन क्यों उदास है?' (मन केमन करे?)। विमल मित्र बंगला उपन्यासकारों में हिंदी पाठक के सबसे अंतरंग हैं और उनके उपन्यासों की हिंदी में बड़ी मांग रहती है। उनके विशाल उपन्यासों 'साहब बीबी गुलाम', 'बेगम मेरी विश्वास' आदि के बाद इस अपेक्षाकृत लघुतर कथाकृति से एक राहत-सी मिलती है कि मित्र महाशय विशाल आधार-फलक के साथ ही लघु चित्र-फलक लेकर भी मानव-मन की गहराइयों के चित्र वैसी ही सहजता से उरेहने में समर्थ हैं। प्रस्तुत उपन्यास में कैशार्य की नारी-संसर्ग से उद्दीप्त तरल भावनाओं को ऐसी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है कि कथा-सूत्रों की अन्तिम परिणति मन में एक विवश-तरल करुणा जगाकर रह जाती है। सुरेश्वरी दीदी कथाख्याता से बड़ी हैं और उनकी भावना में संयत स्नेह की प्रचुरता है जिसकी अभिव्यक्ति वे वाणी में बहुत ही कम करती हैं। उपन्यास के अन्तिम दृश्य में मानों उनके विगत जीवन का कोई भी अंश उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित नहीं होता - कहां संयम की धनी, श्वसुर-शुश्रूषा में अपनी बलि देने को तत्पर, प्रेमपगी, सेवा उत्सर्ग-मयी सुरेश्वरी दीदी और फिर कहां अलंकृता, विलास-लीलामयी, पान चबाती, केवल कंठ से बतियाती, अपने में ही केन्द्रित सुरेश्वरी। यही परि-णति मिन्नी की होती है - कहां वह बचपन की अभिन्नता, निरवरोध स्नेह-क्रीड़ा, भोली बातें और कहां वह अन्तिम चित्र - 'एक दिन आओ, समझे। मि० वसु और मैं तो अभी सिनेमा जा रहे हैं' : एकदम भावनाहीन, ठण्डी, तटस्थ प्रतिक्रिया। वस्तुतः लेखक के मतानुसार 'हम लोग विभिन्न मनुष्यों के सम्पर्क में आकर सिर्फ अपनी ही तृप्ति खोजते हैं। कुछ अपनी पत्नी में ही तृप्ति खोजते हैं, कुछ परकीया में, कुछ दोस्तों में और कुछ पड़ौसी में। और सच तो यह है कि सभी हैं केवल उपलक्ष्य मात्र, लक्ष्य तो हमारी अपनी तृप्ति है'। पर जीवन का ढांचा ही कुछ ऐसा है कि वह तृप्ति मिलती नहीं -

और तृष्णा छूटती नहीं । मित्र महाशय के लेखन की कुछ विशेषता है कि कृति के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते मन एक अजीब करुणा-मिश्रित विवशता से विगलित होकर रह जाता है। जो सांसारिकता के प्रवाहवश और निर्भाव यथार्थ के देवता की उपासना में अपने विगत से ऊपर उठ आने का दम्भ मन में पाल लेते हैं उनका मनोरूपान्तर हो जाता है पर जो भावुक अपने अतीत से जुड़ा रहता है और उस नाते को तोड़ नहीं पाता उसके प्रति दया जागती है। 'मन केमन करे' का हिन्दी अनुवाद सामान्यतः अच्छा ही हुआ है परन्तु कुछ अभिव्यक्तियों पर शायद बंगला वाक्य-रचना की छाया है और वे हिन्दी के सांचे में नहीं समाती। 'तुम्हें तो गुड़िया है न?' 'तुमको कैसे भाई है मां?' आदि प्रयोग अशुद्ध ही कहे जाएँगे, चाहे बोलचाल में हिन्दी प्रदेश के भी -र लोग भले ही इन्हें अपनाते हों।

'मन क्यों उदास है?' और 'न्यायमूर्ति' से सर्वथा भिन्न आधार-भूमि पर सृजन किया गया है 'मसाले और मसीहा' (बंगला-पदसंचार) का। इसके लेखक नारायण गंगोपाध्याय बंगला के सशक्त कथाकारों में अग्रणी हैं किन्तु हिन्दी में उन्होंने अभी पिछले ही वर्ष (1969) अपने 'उपनिवेश' के हिन्दी अनुवाद के साथ प्रवेश किया। इन दोनों उपन्यासों के माध्यम से लगा था कि हिन्दी में एक नए सशक्त हस्ताक्षर का उदय हो रहा है कि तभी काल-विधाता के क्रूर विधान ने सदा के लिए उनकी लेखनी को मौन कर दिया। 'मसाले और मसीहा' की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है जिसका सम्बन्ध पुर्तगालियों के भारत-प्रवेश के षडयन्त्रमय प्रयत्नों से है। पुर्तगालियों के दो उद्देश्य थे - मसाले का व्यापार और मसीही धर्म का प्रचार। नारायण गंगोपाध्याय अपने व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन तथा सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि के बल पर तत्कालीन जीवन और परिवेश को जीवन्त रूप देकर प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। एक ओर सत्ता एवं धनलोलुप लुटेरे पुर्तगालियों के निर्मम कुचक्रों से पीड़ित हिन्दू-मुसलमानों के खून से लाल केरल से बंगाल तक का समूचा जनमार्ग है, दूसरी ओर चैतन्य महाप्रभु के मनोमुग्धकारी वैष्णव कीर्तनों से गुंजित तथा शैव एवं विशेषतः शाक्तों के विरोध से तथा अन्य विघटनकारी तत्वों के कोलाहल से व्यस्त-त्रस्त और शेरशाह की लपलपाती तलवार की चमक से चौंधियाया हुआ, हुमायूं के आक्रमण के भय से ग्रस्त और सबसे ऊपर पुर्तगालियों की गृद्ध-दृष्टि से आतंकित बंगाल का संश्लिष्ट चित्र नारायण गंगोपाध्याय ने बड़ी गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ उरेहा है और भारतीय इतिहास के कुछ अनमोल सत्य अनायास उभर कर सामने आए हैं — "ये एक-दूसरे

से विलग हैं, एक दूसरे से जलते हैं। कभी इसी हथियार से मुसलमानों ने इस देश पर विजय पाई थी, आज ईसाइयों की फ़तहयाबी की बारी है।" अनुवाद अच्छा बन पड़ा है परन्तु बंगला मुहावरे का प्रभाव कहीं-कहीं अत्यन्त परिस्फुट है। कुछ पात्र अपने मौन में भी काफी प्रभावशाली हैं - जैसे दैत्याकार काल-पुरुष-सा राघव जो अनायास रांगेय राघव के 'मुर्दों का टीला' के अघाप का स्मरण करा देता है।

दक्षिण भारतीय भाषाओं से इस वर्ष केवल एक औपन्यासिक कृति का हिन्दी अनुवाद हुआ - 'सहस्रफण'। यह तेलुगु के मूर्धन्य साहित्य-सृष्टा श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के बृहत् तेलुगु उपन्यास 'वेयिपडगलु' का हिन्दी अनुवाद है और अनुवादक हैं आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री पी० वी० नरसिंह राव। ज्ञानपीठ पुरस्कार-विजेता श्री विश्वनाथ सत्यनारायण बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं किन्तु मूलतः वे कवि हैं - 'कवि-सम्राट' - और उनका कवित्व उनकी गद्यात्मक कृतियों को भी एक अनिर्वचनीय रसात्मकता प्रदान कर देता है। 'वेयिपडगलु' आज से लगभग 36-37 वर्ष पूर्व की रचना है जब हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी, विराट् आधार-फलक ग्रहण कर 'रंगभूमि' तथा 'गणदेवता' जैसे महा-काव्यात्मक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति थी। प्रस्तुत उपन्यास की आधारभूमि भी बड़ी विस्तृत है जिसमें भारतीय जीवन के विविध पक्षों और स्तरों पर सांस्कृतिक सन्धिकाल के प्रभाव का साहित्यिक आकलन दृष्टिगोचर होता है। यह उस युग का संश्लिष्ट चित्र है जिसमें प्राचीन आस्थाएं, मूल्य-मान्यताएं शिथिल पड़ गई थीं और एक व्यापक शंकाशीलता के गर्भ में विलीन होती जा रही थीं और उनके स्थान पर नई आस्थाओं, नए मूल्यों, नए जीवन-दर्शन और नई अन्तःप्रेरणाओं की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। धर्म के प्रति एक विशिष्ट आश्वस्त-भाव और उसके साथ ही पात्र-समष्टि की मानसिकता की गहरी समझ तथा औपन्यासिक तत्वों का निर्वाह उपन्यासकार ने बड़ी सफलता के साथ किया है। मानव-मन की गहराइयों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण की पैठ गहरी है और साथ ही उनमें एक विचारक का तटस्थ-बौद्धिक भाव भी है। जिस युग में साधारण उपन्यासकार अपने पात्रों को 'शुभ' और 'अशुभ' अथवा 'विमल' और 'मलिन' की कृत्रिम कोटियों में विभाजित करके उनका निरूपण करते थे, तब श्री सत्यनारायण की चरित्र-सृष्टि में मंगम्मा, रामेश्वरम्, कुमारस्वामी, ईटसन, कबीर, चन्द्रा रेड्डी, नागन्ना आदि ऐसे पात्र उभर कर आए हैं जिनमें अच्छाई भी है, बुराई भी; जिनका व्यक्तित्व मिला-जुला है और जो समाज के साधारण जीते-जागते

पात्र हैं । अपने पात्रों को - वे चाहे जैसे भी हों - उन्होंने स्नेह दिया है । वस्तुतः यहां पात्रों का संघर्ष उतना दृष्टिगोचर नहीं होता जितना विचारों का । उपन्यास के कलेवर में वस्तुतः 'स्वधर्म' और 'परधर्म' के अनवरत संघर्ष का विस्तार है । आधुनिक उपन्यास-पाठक को इस कथा-योजना में, भाव-भूमि में तथा शैली-शिल्प में पुरानापन लग सकता है परन्तु हमें यह याद रखना होगा कि यह कृति प्रायः चार दशक पुरानी है और अपनी सामयिकता से प्रभावित है । अनुवादक ने मूलकृति के विस्तार को घटाकर बुद्धिमानी का परिचय दिया है क्योंकि उनका यह उपाय उपन्यास में पाठक की रुचि बनाए रखने में सहायक होता है । कुल मिलाकर 'सहस्रफण' इस वर्ष के अनूदित साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

इधर बिल्कुल भिन्न आधुनिक भावभूमि पर रचा गया है अमृता प्रीतम का 'जेबकतरे' । अमृता प्रीतम मूलतः कवयित्री हैं और काव्यात्मक तरलता उनके उपन्यासों की विशेषता है । इस तरलता के कारण उनके उपन्यासों में ठोस कथा-सूत्रों का अभाव-सा रहता है और बीच-बीच में लगता है सहसा क्रम विच्छिन्न हो गया है । कालेज के छात्र-छात्राओं का जीवन के प्रति नितांत 'आनुषंगिक' - अव्यावहारिक दृष्टिकोण आज का बहुत बड़ा सत्य है । लगता है वे क्षण विशेष में जीते हैं, भविष्य के अनागत भार को नहीं ढोते - ढोने को तैयार ही नहीं । लगता है जो भी जहां है, उसके भीतर असंतोष की ज्वाला व्याप्त है । उन्होंने विविध पात्रों को लेकर गहरे और चुटीले व्यंग्य के माध्यम से उनके वैशिष्ट्य को उभार कर रख दिया है - सबके सब एक साथ ढोंगी भी लगते हैं और सच्चे भी । वे मानो एक दूसरे की जेबें काट लेने को तत्पर दिखाई पड़ते हैं और जब भी मौका मिलता है वक्त की जेब कतर लेते हैं । पात्रों के माध्यम से जो सामाजिक व्यंग्य उभरा है वह अपना प्रभाव छोड़ता है परंतु कहानी में भराव और वर्तुलता की कमी के कारण न तो पकड़ने की क्षमता है, न असर डालने की । बहुत-सी बातें स्पष्ट रूप से न कहकर पाठक के लिए छोड़ दी गई हैं । संवादों में अंग्रेजी बहुलता कदाचित् परिवेश और पात्रों के संदर्भ का तकाज़ा था - वह असंगत और अयुक्त नहीं लगती ।

'दादर पुल के बच्चे' कृश्नचंदर की नई औपन्यासिक रचना है । इस उपन्यास पर अनुवादक का नाम नहीं है जिससे अनायास संदेह जागता है कि कहीं कृश्नचंदर सीधे हिंदी में तो रचना नहीं करने लगे । यों विश्वास नहीं होता क्योंकि जिस दिन वे सीधे हिंदी में लिखेंगे उस दिन शायद कृश्नचंदर

'कृष्णचंद्र' हो जाएँगे। 'दादर पुल के बच्चे' छोटा-सा उपन्यास है परंतु अपनी रोचकता में विशेष उल्लेखनीय है। कृश्नचंदर की लेखनी की सबसे बड़ी शक्ति उनका व्यंग्य है जिसकी चोट बड़ी करारी होती है। पुरानी तथा सर्वोत्कृष्ट संस्कृति के ठेकेदार बनकर भी हम अपनी संतान को किस सांचे में ढाल रहे हैं - यह उपन्यास का आयाम है। भगवान बालरूप धारण कर एक बेकार युवक के साथ बंबई-दर्शन करते हैं और होटल, बाजार, फिल्म, शराबघर, स्कूल में तथा भिखारियों के घरों में नवजीवन को पलते-बढ़ते देखते हैं - देखते हैं इस संसार की दौड़ में, आपाधापी में कमजोर और बेसहारा पिसे जा रहे हैं। जो संपन्न हैं वे विपन्न वेशधारी भगवान को मार-पीटकर निकाल देते हैं और फिर सबसे दयनीय तो स्थिति वह है जिसमें गरीबी गरीबी पर जुल्म करती है। अंत में निर्धनवेशी बाल-भगवान स्वयं पकड़े जाते हैं और उन्हें भीख मांगने के योग्य बनाने की तैयारी में उनकी आंखें फोड़ी जाने लगती हैं; तभी वे सहसा चिल्लाते हैं - मैंने देख लिया, मैंने देख लिया। भगवान ने निकट मनुष्य का परिचय!

'दादर पुल के बच्चे' कृश्नचंदर की एक प्रभावशाली कृति है जिस में उन्होंने एक अतिकल्पना के माध्यम से मानव के कई चेहरों पर से मुखौटे हटाकर उनकी असलियत जानने की प्रेरणा दी है और कथा-सूत्रों में अपने ढंग से दर्शन का भी समन्वय एवं संश्लेष कर दिया है। भाषा पर तो कृश्नचंदर का अद्भुत अधिकार है ही - बल्कि कहीं-कहीं तो यह देखकर मन में आक्रोश भी होता है कि कथ्य में वैशिष्ट्य न होने पर भी लेखक ऐसा अकाट्य जाल बुनता है जिसके आकर्षण से बच निकलने का कोई उपाय नहीं होता।

उपन्यास-चर्चा के बाद अगर हम कहानी-मंच पर दृष्टि डालें तो पात्र-उपस्थिति की क्षीणता एक साथ कई प्रश्न मन में जगा जाती है। कहानी की लोकप्रियता क्या घट रही है? कहानी-संग्रह छपवाने का युग क्या समाप्त हो गया? क्या उपन्यास की तरह कहानी भी हमें एक-दूसरे के पास नहीं लाती? एक-दूसरे को जानने-समझने में सहायक नहीं होती? वास्तव में यह तो तथ्य है ही कि एक ही लेखक के संग्रहों का चलन आज खत्म हो चुका है - लोग कथा-क्रम की अविच्छिन्नता अवश्य चाहते हैं किंतु एक ही लेखक की विभिन्न कृतियों के पाठ की एकरसता सहन नहीं कर सकते। सामयिक रुचि एक-लेखकीय कहानी संग्रहों के प्रतिकूल ही पड़ती है। कहानी-संग्रहों की विरलता का यही कारण है।

'जनपथ' नंदिनी सतपथी की उड़िया से अनूदित कहानियों का संग्रह है। नंदिनी सतपथी उड़िया की प्रतिष्ठित कहानी-लेखिका हैं और संतोष का विषय है कि उनका व्यस्त मंत्री-जीवन उन्हें साहित्य से सर्वथा पराङ्मुख करने में सफल नहीं हुआ और उनकी लेखनी यथापूर्व गतिमान है। नंदिनी जी का अनुभव क्षेत्र बड़ा व्यापक है - जो कि स्वाभाविक है और उन्होंने जीवन को बड़ी पैनी दृष्टि से देखा-परखा है। कई कहानियाँ बड़े सहज-सरल ढंग से जीवनगत परिस्थितियों की विषमता और व्यंग्य का उद्घाटन कर जाती हैं। 'जनपथ' कहानी महानगर दिल्ली के भावहीन जीवन पर बहुत बड़ा व्यंग्य है। 'एक कलाकार का श्राद्ध' का व्यंग्य भी बड़ा गहरा है और हमारे जीवन के कपट और ढोंग का बड़े सशक्त ढंग से पर्दाफाश करता है — कलाकार के जीते जी जिसे कभी भोजन की चिंता से मुक्ति नहीं मिली, कोई सुख-सुविधा नहीं मिली, जिसके उपचार के लिए मंत्री महोदय की ओर से कोई सहायता नहीं मिली उसी के श्राद्ध के अवसर पर स्वयं मुख्य मंत्री सभापति बनकर श्रद्धांजलि अर्पित करने को तैयार हो जाते हैं। लगता है जीवन के हर स्तर पर और हर समय कपट का जाल फैला रहता है और कोई भी इससे बच नहीं पाता - 'ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों-त्यों उरझत जात'। देश के उन्नयन में सक्रिय योगदानी की कामनाएं सिकुड़ते-सिकुड़ते अपने में ही केंद्रित होकर रह जाती हैं ('अब घर जाना है')। लेखिका की उस वर्ग के साथ गहरी सहानुभूति और संवेदना है जो दुःखी और विपन्न है और जिसे समाज से न्याय नहीं मिला, और जिसका भाग्य बदलने के नारों का कोलाहल अस्पष्ट गूंज बनकर कहीं शून्य में विलीन हो जाता है। लेखिका की शैली सहज-सरल और सीधी है और संवेदना की सच्चाई के कारण मन पर छाप छोड़ती है।

इससे भिन्न स्वरूप का - अनेकलेखकीय - कहानी-संग्रह है 'मलयालम की श्रेष्ठ कहानियाँ' जिसमें पी० केशवदास, शिवशंकर पिल्लै, मुहम्मद बशीर, कुरूप्पु, कोवूर, पद्मनाथन, उरूब, कोविलन प्रभृति शीर्षस्थ मलयालम कहानीकारों की रचनाएँ संगृहीत हैं। इनका संकलन, संपादन और अनुवाद किया है श्री सुधांशु चतुर्वेदी ने। प्रस्तुत कहानियों में केरल की राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि पर स्थानीय जीवन के विविध चित्र बड़े सशक्त ढंग से उरेहे गये हैं। कई कहानीकारों की रचनाओं में मनोहारी केरल भूमि और उसके निवासी अपनी समस्त मानवीय कमजोरियों और खूबियों, अपनी चित्राकर्षता तथा रमणीयता में उभर कर सामने आये हैं। कुछ कहानियों में जीवन की वास्तविकताओं, यथार्थ और कटुता-तिक्तता को यथावत् प्रस्तुत करने का साहस

परिलक्षित होता है - उनसे बच निकलने की रुग्ण रोमानी भावना उनमें नहीं है। हां, कुछ कहानियां अवश्य ऐसी हैं जो अतिभावुकता के रोग से ग्रस्त हैं और जिनकी संवेदना सतही होने के कारण पाठक के अंतर का स्पर्श नहीं कर पाती। 'तेरी कहानी (मेरी भी)'। कुछ कहानियां अपनी मूल संवेदना तथा रचना एवं अभिव्यक्ति शैली में पुरानापन लिये हुए हैं और आज के जागरूक पाठक को प्रभावित नहीं करतीं। किंतु कुल मिलाकर इन कहानियों को पढ़ने से यह प्रभाव अवश्य पड़ता है कि मलयालम की कहानी-धारा भारतीय कहानी-धारा के समांतर प्रवाहित हो रही है, कि उसकी विषय वस्तु और मूल संवेदना नई हिन्दी कहानी से बहुत भिन्न नहीं है। आज के मनुष्य की असहायता-विवशता और एकाकीपन पर एक गहरी उद्विग्नता के दर्शन भी कई कहानियों में होते हैं। समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक, धार्मिक संकीर्णताओं एवं विषमताओं पर अपेक्षाकृत नये कहानीकारों में भरपूर व्यंग्य के दर्शन भी होते हैं।

इन्हीं श्री सुधांशु चतुर्वेदी का संकलित-संपादित और अनूदित एकांकी-संग्रह है - 'मलयालम के श्रेष्ठ एकांकी,' दोनों संग्रहों में कुछ लेखकीय नाम समान हैं, कुछ भिन्न। पी० केशवदेव, उरूब, विवेकानंदन, के० टी० मुहम्मद आदि के नाम दोनों संग्रहों में हैं परन्तु कृष्ण पिल्ला, गोपीनाथन नायर, श्रीकंठन नायर ओम्चेरी, एरुर - वासुदेव आदि नाटककारों के रूप में ही अधिक प्रख्यात हैं। संगृहीत एकांकियों में विषयवस्तु की व्यापकता तथा शैली शिल्प का वैविध्य इस बात का प्रमाण है कि मलयालम में यह विधा पर्याप्त लोकप्रिय और समृद्ध है और एकांकीकार अपने सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के प्रति पूर्ण सजग और सावधान हैं। प्रस्तुत एकांकीकारों ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की गहराइयों तथा व्यक्ति-मन के गह्वरों में झांकने के लिये प्रस्तुत माध्यम का समीचीन प्रयोग किया है। इनमें हास्य और व्यंग्य दोनों का यथा-स्थान संयोग हुआ है। 'दोनों एक जैसी' आदि नाटकों में आज के युवावर्ग की जीट मारने की आदत पर बड़ा करारा व्यंग्य किया गया है। इन नाटकों में अतिभावुकता का वैसा आवेग नहीं है जैसा कुछ कहानियों में दीख पड़ता है। अभिनेयता इनका वैशिष्ट्य है। यह तो विश्वासपूर्वक कह देना कठिन है कि मलयालम के ये ही लेखक और उनकी ये विशिष्ट रचनाएं ही चयन के सबसे अधिक योग्य हैं परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर ये कहानियां और एकांकी मलयालम साहित्य की इन विधाओं का तथा सामान्य केरलीय जीवन के अनेक पक्षों का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुवाद की

भाषा में कहानीकारों के अनुरूप वैविध्य है और सहज-सरलता भी तथा उसने हिंदी की प्रकृति को यथाशक्ति अक्षुण्ण रखने का भी प्रयत्न किया है।

अनुवाद के क्षेत्र में सबसे कठिन काम है काव्यानुवाद का जिसके विषय में अनेक उक्तियों का सारतत्व यह है कि कविता का अनुवाद हो ही नहीं सकता, हालांकि वह चिरकाल से हो रहा है और शायद सदा होता रहेगा। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि जिसमें सृजन-प्रतिभा नहीं और जो प्रस्तुत काव्य कृति के स्थूल अर्थ बोध के साथ ही उसके अंतर में पैठकर मर्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता, वह मूल कृतिकार के साथ न्याय नहीं कर सकता। मूल कृतिकार और स्रष्टा-अनुवादक की काव्य-प्रतिभाओं की समकक्षता और समानांतरता भी सफल काव्यानुवाद के लिए अपेक्षित और अभीष्ट होती है। 'भाषा अपनी भाव पराए' बच्चन जी की अनूदित कविताओं का नवीनतम संग्रह है जिसमें कश्मीरी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, तमिल, अंग्रेजी, और स्पेनी कविताओं के हिंदी अनुवाद संगृहीत हैं जो समय-समय पर आकाशवाणी के सर्वभाषा कवि-सम्मेलन के लिए किये गये। इनके अनुवाद की जटिल और अनेक स्तरीय प्रक्रिया का स्पष्टीकरण बच्चन जी ने भूमिका में किया है - कैसे इनमें से अधिकतर भाषाओं के अज्ञान अथवा अत्यंत स्वल्प ज्ञान के बावजूद वे अनुवाद (और सफल अनुवाद) करने में सफल हुए। इस विस्तृत स्पष्टीकरण के विषय में मैं यहां कुछ भी नहीं कहूंगा परन्तु इतना स्पष्ट है कि बच्चन जी ने मूल कृतियों को अपने कंठ का फंदा नहीं बनाया और अनुवाद से अधिक 'प्रति रूप' प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि उन्होंने वे ही कविताएं अनुवाद के लिए स्वीकार की हैं जिन्होंने उनके मन को छुआ और जिनके स्रष्टाओं के साथ वे सहानुभूति (सह+अनुभूति) का अनुभव अथवा तादात्म्य स्थापित कर सके हैं और जिनके प्रति उन्होंने रचनात्मक उद्बोधन का अनुभव किया है। प्रसन्नता की बात है कि अनुवाद के प्रति इसी उदार दृष्टिकोण के फलस्वरूप उनकी रचनाओं में मौलिक कृतित्व का सौंदर्य और प्रभविष्णुता आ गई है और मूलानुरूप का बंधन जड़ता में परिणत नहीं हो पाया बल्कि, उन्हीं के शब्दों में 'संयम की गरिमा' से समन्वित हो गया है। यों तो सभी कविताओं के पीछे उनकी शब्दार्थ एवं भाव-साधना निहित है परन्तु फिर भी कुछ अनुवाद (प्रतिरूप) अपेक्षाकृत अधिक सफल रहे हैं - बल्कि यह न कह कर मैं यह कहूंगा कि उनमें मौलिकता का आकर्षण कहीं अधिक मात्रा में परिलक्षित होता है। इसमें शायद कुछ न कुछ श्रेय मूल व्यष्टि - रचनाओं को भी होगा ही - वे शायद और कविताओं से अच्छी

और अधिक प्रभावशाली तथा मर्म-स्पर्शी होंगी। 'सागर-गीत' (कुरुप), 'झंझावात' (श्रीधराणी), 'वन का निमंत्रण' (फ्रास्ट) तथा 'राम का बनवास' (कंबन) का मैं विशेषत: उल्लेख करना चाहूंगा। राबर्ट फ्रास्ट की 'वन का निमंत्रण' का यह छंद - अपने विशिष्ट संदर्भ के कारण- मन को मथ डालता है :

'गहन, सघन, मनमोहन वन-तरु
मुझ को आज बुलाते हैं।
किंतु किये जो वादे मैंने
याद मुझे आ जाते हैं॥
अभी कहां आराम बदा, यह
मूक निमंत्रण छलना है।
अरे अभी तो मीलों मुझ को,
मीलों मुझ को चलना है॥'

एक अन्य उल्लेखनीय संकलन फिराक़ गोरखपुरी का है - 'गुलेनग़मा'। 'गुलेनग़मा' की रचनाएं अनूदित नहीं, केवल लिप्यंतरित हैं-पहली बार नागरी लिपि में प्रस्तुत की गई हैं। इस पर 1961 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और अब 1970 में भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख का पुरस्कार मिला है। इस संग्रह में फिराक़ की नई-पुरानी चुनी हुई कविताएं हैं। भारत, भारत-प्रेम तथा भारतीय परिवेश ऐसे विषय हैं जिनके दर्शन उर्दू कविता में अत्यंत विरल हैं परंतु फिराक़ इस दृष्टि से अपवाद हैं और विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। जहां काव्य-सौष्ठव और अनुभूति की गहराई की दृष्टि से वे उर्दू के वर्तमान कवियों में बेजोड़ हैं, वहीं इस नाते भी वे उर्दू कवियों में अनन्य सम्मान्य हैं कि उनकी वाणी में भारतीय आत्मा की धड़कन गूंजती हैं। भारतीय संस्कृति की आत्मीयता, रहस्यमयता तथा व्यक्तित्व उनकी कल्पना तथा आत्मा में समाहित हो गये हैं। फिराक़ की शायरी उर्दू शायरी के सामान्य विषय - इश्क़ -- को छोड़ती नहीं पर उसे एक सर्वथा नया अर्थ दे देती है, नये सांचे में ढाल देती है। उन्होंने प्रेम को पूरे जीवन के परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा है - वह अनेक अनुभूतियों में से एक हैं : विशिष्ट और अत्यंत महत्वपूर्ण। उनकी शायरी में विवेक का बल है, सार्वभौमता और विराट्ता है और इसमें केवल विषय वस्तु तथा अनुभूति का ही योग नहीं, उनके 'शब्दों की गमक' का भी बहुत योगदान है। उन्होंने स्वरध्वनियों का जैसा प्रभावशाली उपयोग किया है, वैसा उर्दू के शायद ही किसी और शायर ने किया हो। नागरीकरण के साथ ही साथ क्लिष्ट शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियों के रूप में देकर पाठ को सुबोध सुगम बना

दिया गया है । वैसे भी शायद हिंदी के पाठक को ये कविताएं हृदयंगम करने में विशेष कठिनाई नहीं होती: इसका कारण है शब्द-भंडार, व्याकरण, वाक्य-रचना तथा सबसे बढ़कर अनुभूति की समानता - समानांतरता ।

अंत में, यह सर्वेक्षण समाप्त करने से पूर्व, मैं दो और कृतियों का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं जिनकी माध्यम भाषा भले ही भारतीय न हो किंतु जो अपनी भावानुभूति, अभिव्यक्ति- शैली और परिवेश में ठेठ भारतीय है - डॉ० कर्णसिंह की कविताओं का संग्रह 'प्रेरणा के मोर-पंख' (अनुवादक: श्री राजेन्द्र मोहन कौशिक) तथा श्री के०पी०एस०मेनन की आत्मकथा 'मैनीवर्ल्डस' का हिंदी अनुवाद 'मलाबार से मास्को तक' (अनुवादक: श्री नूरनबी अब्बासी)। डा० कर्णसिंह यद्धपि व्यवसाय से राजनेता और अध्ययन से राजनीति शास्त्री हैं, फिर भी उनके मन की कोमल अनुभूतियां और भावनाएं राजनेता की व्यस्तता तथा राजनीति शास्त्री की शुष्क व्यावहारिकता - यथार्थनिष्ठा की दीवारों को भेदकर कल्पना के पंखों के सहारे बाहर का रास्ता ढूंढ ही निकालती है । डॉ० कर्णसिंह की कविता की सुकुमारता-लालित्य, रोमानियत और गहन भावानुभूति की लय से जनित दार्शनिक झंकृति उनकी कवि कल्पना के प्रीतिकर तत्व हैं । ये कविताएं हमारा एक अत्यंत आकर्षक कवि व्यक्तित्व से साक्षात्कार कराती हैं - और इस माने में अनुवाद सफल प्रतीत होता है । यदि हम इस अनुवाद के माध्यम से मूल तक पहुंचने का प्रयास करें और उसे पढ़ें समझें तो शायद काव्य के संपूर्ण रस और व्यंजना के अखंड चमत्कार के ऐसे सम्यक् दर्शन हो सकें जिससे कवि की मानस-तरंगों का, उसकी काव्य-प्रतिभा का और भी सही बोध हो । 'सेमिनार', 'सम्मेलन', 'चाय' आदि कविताओं में हल्के-मीठे व्यंग्य का मनोरम पुट है और 'शोक गीत' में राष्ट्र मन की विगलित करुणा और संकल्प प्रतिध्वनित हुए हैं:

(नेहरु जी के निधन पर)

प्रतापी !
तुम इतिहास बने
तो क्या !
हम शेष हैं
तुम्हारी यादें शेष हैं
दीप से दीप जलेगा
सपने साकार होंगें ।

तथा

(शास्त्री जी के निधन पर)

यशस्वी!
शरीर की लघुता
हृदय की विशालता मापने की
कसौटी नहीं बन सकती
और न परखना ही उचित है
गरिमामयी विनम्रता से रहित
सत्यनिष्ठा को -
तुम उदाहरण थे।

दूसरी कृति संस्मरणात्मक है - के० पी० एस० मेनन की 'मलाबार से मास्को तक'। 'मलाबार से मास्को तक' में लेखक ने मलाबार प्रदेश में अपने बाल्यकालीन अनुभवों के माध्यम से स्थानीय रूढ़िप्रिय समाज की प्रथाओं, परंपराओं, रीति-रिवाजों आदि के परिचय से आरंभ करके विविध देशों में और विभिन्न पदों पर अपनी सफलताओं-असफलताओं, कड़ुवे-मीठे अनुभवों की सरस कहानी बड़ी ईमानदारी के साथ और सहज सरल शैली में कही है। अपनी सार्वजनिकता के नाते वैयक्तिक जीवन की यह कहानी व्यापक अर्थ और रोचकता से मंडित हो गई है। आत्मकथा की सफलता इस बात में होती है कि लेखक अपने अनुभवों को, भरसक वस्तुपरकता का निर्वाह करते हुए और पूरी ईमानदारी के साथ उनकी संपूर्णता में निवेदित कर दे और यही श्री मेनन ने किया है - यहां तक कि उन्होंने अपने समाज को और अपने आपको भी, अपने पैने व्यंग्य की चपेट में ले लिया है। जो अपने आप पर हंस सकता है, उसकी सच्चाई और ईमानदारी में संदेह करने का कोई कारण नहीं रह जाता। मेनन की इस आत्मकथा के माध्यम से राष्ट्र जीवन के अनेक पक्ष और अनेक राष्ट्रीय घटनाओं की पृष्ठभूमि अनायास उजागर हो उठती है। अनेक ऐसी मनोरंजक घटनाएं वर्णित हैं कि वे पाठक को बरबस गुदगुदा देती हैं। अनुवाद की सफलता निर्विवाद है - उसमें मूल की अभिव्यंजना - शक्ति तथा शैली की रोचकता की पूरी तरह रक्षा हुई है और हिंदी की प्रकृति की भी कोई हानि नहीं हुई। संपूर्ण कृति अपनी रोचकता में किसी भी औपन्यासिक कृति से कम आनंद नहीं देती। इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों कृतियों से हिंदी वाङ्मय समृद्ध हुआ है।

मैं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता कि मैंने ऊपर जिन कृतियों की चर्चा की है उनके अतिरिक्त और भी उल्लेखनीय कृतियां न होंगी। न मैं यह दावा कर सकता हूं कि 1970 के अनूदित साहित्य की प्रातिनिधिक कृतियां ये ही हैं और मेरा विवेचन सर्वथा निःशाषिक है । मुझे जो कृतियां उपलब्ध हुईं और रुची उन्हीं का अंतर्भाव मैंने इस विवेचना में किया है। यह मैं अवश्य कहूंगा कि गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से जितना इतर भाषीय साहित्य अनूदित होकर हिंदी में आया है, बहुत कम है - विशेषत: जब हम यह देखते हैं कि हमारे लिए कम से कम 14-15 स्रोत भाषाएं हैं। हम तो अपने आपको कृतकृत्य उस दिन मानेंगे जब किसी भी भाषा की कोई भी विशिष्ट कृति उसी वर्ष हिंदी में अनूदित-प्रकाशित होने लगेगी। यदि हम भावात्मक एकता की स्थापना के लिए एक-दूसरे के निकट आना चाहते हैं तो उसका सबसे अचूक और मंगलमय माध्यम साहित्य ही है और मैं आशा करता हूं कि हमारे विविध साहित्यों के बीच साहित्यिक आदान प्रदान की धाराएं निरंतर प्रथुल और वैविध्यमयी होती जायेंगी - इसी में भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र 'विविधता में एकता' की सार्थकता और सिद्धि है।

सन् सत्तर का विज्ञान वाङ्मय

– रमेश दत्त शर्मा

हिंदी में विज्ञान-लेखन तथा प्रकाशन का कार्य अनेक बाधाओं के बावजूद उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है; हालांकि गति संतोषजनक नहीं है। वर्षों के अनुसंधान-कार्य के बाद वैज्ञानिक शब्दावली आयोग ने विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली हिंदी के माध्यम से लिखने-पढ़ने में लगे हुए लोगों को उपलब्ध करा दी है। यद्यपि अब भी अनेक लेखक आयोग-पूर्व की विविध शब्दावलियों और रघुवीरी शब्दावली का इस्तेमाल करते देखे गए हैं, फिर भी ज्यादातर विज्ञान लेखक मान्य शब्दावली को अपनाने लगे हैं। जो नहीं अपना रहे, उनमें से अधिकतर आयोगीय कार्य से अनभिज्ञ हैं। जब आयोग की विज्ञान-शब्दावलियों के बारे में उन्हें बताया गया तो उन्होंने उत्सुकता ही प्रकट नहीं की अपितु कहां मिलती हैं, कैसे मिलती हैं, जैसे व्यावहारिक प्रश्न भी किए। अच्छा हो कि विज्ञान की इन पारिभाषिक शब्दावलियों के बारे में प्रमुख समाचार पत्रों में विज्ञापन दिए जाएं।

सन् सत्तर में हिन्दी के विज्ञान-वाङ्मय में 'खगोल-विज्ञान' का बोल-बाला रहा। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा बाल साहित्य प्रतियोगिता में पुरस्कृत 'चलो चांद पर चलें' (ले० जयप्रकाश भारती) से लेकर 'चन्द्र यात्राओं की कहानी' (ले० धर्मपाल एम० ए०), 'ब्रह्माण्ड यात्रा शुरू हो गई'

(ले० रामस्वरूप चतुर्वेदी) तथा 'अनन्त आकाश: अथाह सागर' (ले० जय प्रकाश भारती और श्याम सुन्दर शर्मा) तक सभी पुस्तकों में बीसवीं सदी के इस सातवें दशक में हुई विज्ञान की महानतम उपलब्धि चन्द्र-विजय की दुन्दुभी बजाई गई है।

उन भारतीय बच्चों को जिन्हें बड़े होकर अन्तरिक्ष यात्राएं करनी हैं, चांद पर जाना है और शायद दूसरे ग्रहों पर भी .... इन 'शुभकामना' भरे शब्दों के साथ शुभकामना प्रकाशन की यह भेंट सहज ही बालकों और किशोरों के लिए हिंदी में 'चन्द्र विज्ञान' की अब तक की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जा सकती है। इसमें विषय-सूची की जगह छपा है, 'खोजो तो'। किसी विज्ञान पुस्तक की विषय-सूची का बालकों के लिए इससे बढ़िया शीर्षक और क्या हो सकता है ? विविध अध्यायों के शीर्षक भी सूझ-बूझ से दिए गए हैं : 'एक थाल मोतियों से भरा', 'चन्दा मामा दूर के', 'अन्तरिक्ष के मेहमान', 'चांद की यात्रा', 'चांद पर चहल-पहल', 'दूसरे ग्रहों की यात्रा', 'सितारों से आगे', और 'मनोरंजक बातें'। पूरी पुस्तक राकेश और उसकी दो बहनों रचना तथा छाया और उनके दादा जी के बीच बातचीत के ढंग पर लिखी गई है। बच्चों के लिए विशेषज्ञों ने वार्तालाप की शैली ही सबसे उपयुक्त मानी है। सजीले चित्रों और चुटीले संवादों से भरपूर यह पुस्तक लेखक की शैली विषयक प्रवीणता का प्रमाण है।

'चन्द्र यात्राओं की कहानी' में लेखक ने सत्ताईस अध्यायों में प्रर्याप्त अखबारी मसाला एक जगह जुटा दिया है। 'अमरीकी सूचना सेवा' भारत में कितना अच्छा कार्य कर रही है यह इस पुस्तक के पारायण से सिद्ध हो जाता है। इसके बाद भी यदि किसी पाठक के मन में यूसिस (यू० एस० आई० एस०) की कार्यक्षमता में संदेह रह जाए तो, वे "ब्रह्माण्ड यात्रा शुरू हो गई" पढ़ लें। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा लिखित यह पुस्तक छह अध्यायों में है - 'ब्रह्माण्ड यात्रा का आदिकाल', 'ब्रह्माण्ड यात्रा का वर्तमान काल', 'ब्रह्माण्ड यात्रा का पहला पड़ाव', 'मनुष्य चांद पर पहुंचा', 'अपोलो 12 की उड़ान', और 'ब्रह्माण्ड यात्रा का भविष्य'। यूसिस के सौजन्य से प्राप्त चित्रों का भरपूर उपयोग पुस्तक में किया गया है। वैज्ञानिक तथ्यों को सुगम और सरल भाषा में रखना उतना आसान नहीं है, जितना सामान्यत: समझा जाता है। दोनों पुस्तकें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। 'और भी बहुत-सी बातों की खोज की गई' कह कर कौन-सी जानकारी दी गई है, यह पाठक की समझ से परे है। शायद यह अधूरा वाक्य यों पूरा होता - 'और भी बहुत-सी बातों की खोज की गई है, जो लेखक की समझ में नहीं आई'। यूनेस्को से पुरस्कृत ब्रह्माण्ड यात्रा पर इस वर्ष शायद यही एकमात्र पुस्तक रही हो। अन्यथा जहां 'चन्द्र यात्राओं की कहानी' में हवाई जहाज

के आगे एक पंखा – प्रोपेलर – चलते समय 1800 (क्या ?) के तूफानी वेग से घूमता है, वहीं 'ब्रह्मांड यात्रा शुरू हो गई' में 20 वर्ष का युवक शून्य स्थान (?) में रह कर 50 वर्ष बाद भी जवान बना रहता है। विज्ञान विषयक सामग्री के लेखन की सबसे पहली शर्त है विज्ञान की समझ – अंग्रेज़ी में उपलब्ध सामग्री का जैसा-तैसा उल्था करके विज्ञान के नाम पर चालू कर देने से हिंदी का हित नहीं, अहित ही होता है।

'अनन्त आकाश: अथाह सागर' दो भागों में है। एक में आकाश में छलांग लगाई गई है, दूसरे में सागर की गहराई में पैठने की कोशिश की गई है। यूनेस्को द्वारा पुरस्कृत यह पुस्तक छपाई-सफाई, विषय सामग्री और रोचकता में अपने विषय की सभी पुस्तकों से बाज़ी मार ले जाती है। आधुनिक राकेटों की कल्पना करने वालों में अग्रणी रूसी वैज्ञानिक कांस्तेंतिन त्सिओलकोवस्की की इस उक्ति से पुस्तक प्रारंभ होती है, छोटा बच्चा पालने में लेटा रहता है, उसी में हाथ पैर चलाना सीखता है। बड़ा होने पर उसे पालने में नहीं रखा जा सकता। यह पृथ्वी मानव के लिए पालने के समान ही है। सदा-सदा के लिए मानव इसकी सीमाओं में बंधकर कैसे रह सकता है'।

केपकैनेडी पर – "धांय धांय – कानों के पर्दे फाड़ने वाली आवाज और – लाल तथा नारंगी लपटों के बीच जैसे एक इस्पाती पक्षी आसमान की ओर उड़ान भरता है"– अंतरिक्ष यान छूटने की इस अति नाटकीय घटना से अनंत आकाश का परिचय शुरू होता है। बादलों में इस 'सुनहरी गेंद' के परिचय के बाद ब्रह्मांड की सैर शुरू होती है – 'दूधिया नदी में हम'। इसमें चांद-सितारों की दुनिया का परिचय देते हुए लेखक गैलीलियो की दूरबीन से और गोडविन तथा जूल्स वर्न जैसे लेखकों की 'कलम' से चन्द्र दर्शन कराता है। अगला अध्याय 'उड़न खटोले में बंधे राकेट' में न्यूटन द्वारा 'कण कण के आकर्षण की कहानी कहते हुए चीन में पांच सौ साल पहले वान हू द्वारा 47 राकेटों के उड़न खटोले में उड़ान भरने के दुस्साहस की चर्चा की गई है – वान हू तेजी से ऊपर को उड़ा लेकिन उस धुएं और धमाके में उसका सपना भी उड़ गया'। इसी अध्याय में हैदर अली और टीपू सुल्तान की सेनाओं के राकेट-दस्तों का वर्णन है। फिर अंतरिक्ष युग के असली नेताओं की कहानी दी गई है। 'अंतरिक्ष शिशु का जन्म' में बताया गया है कि किस तरह नवजात शिशु के रोने की तरह 'बीप-बीप' की आवाज करता हुआ पहला उपग्रह –'स्पुतनिक-1' पृथ्वी की परिक्रमा के लिए उड़ा। इसी अध्याय में अंतरिक्ष में उड़ते हुए 'आंख-कान' यानी संचारी, टोहक, मौसम सम्बन्धी और दिशा ज्ञान देने वाले उपग्रहों का परिचय है। फिर शुरू होती है

'अंतरिक्ष की दौड़' - 'लाइका' कुतिया से शुरू करके लायक अंतरिक्ष मानवों तक। चांद के चेहरे को पास से दिखाया गया है 'चंदा मामा पास के' अध्याय में। फिर अरबों डालर खर्च करके मानव चन्द्रतल पर पहुंचा - 'डगमग-डगमग चन्दा पर मानव के पद'। इस अध्याय में बुधवार 16 जुलाई 1969 को सांय 7 बज कर 2 मिनट पर केपकैनेडी से छोड़े गए अपोलो-11 के तीन यात्रियों - नील आर्मस्ट्रांग, माइकल कॉलिन्स और एडविन एल्ड्रिन की उस युगान्तरकारी चन्द्र-विजय की लोमहर्षक गाथा दी गई है। जब सोमवार 21 जुलाई, 1969 को बहुत सबेरे 'ईगल' चन्द्रयान आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन को लेकर चन्द्रतल पर जा उतरा। बड़े ही रोचक ढंग से चन्द्रयात्रा की तैयारियों और उपलब्धियों का लेखा-जोखा दिया गया है। रूस के लूना 16 द्वारा चन्द्रतल के नमूने लाने के साथ-साथ चन्द्र शिला और धूलि की वैज्ञानिक जांच का विवरण भी है।

सफलताओं की ही नहीं, असफलताओं की चर्चा भी पुस्तक में है। 'चन्दा मामा पास के' अध्याय में 'एक और बलिदान' शीर्षक से 27 जनवरी, 1967 की उस दर्दनाक दुर्घटना का विवरण है, जब वर्जिल ग्रिशम, एडवर्ड व्हाइट और रोजर शैफी परीक्षण के दौरान क्षेपण मंच पर ही एक अपोलो यान के साथ जलकर भस्म हो गए थे। 'इस्पाती पक्षी ने पर त्यागे' शीर्षक से अपोलो -13 के उन संकट भरे क्षणों का लेखक ने रोमांचकारी विवरण दिया है, जब 'एकाएक हजारों मील के अंतराल में अनगिनत लहरदार प्रश्न इधर-उधर तेजी से तैरने लगे, अंक-आंकड़े और मुड़े हुए संकेतों का तेजी से आदान-प्रदान होने लगा।' क्योंकि पृथ्वी से 3,28,000 किलोमीटर दूर अपोलो - 13 से आक्सीजन गैस रिस रही थी - जिससे तीन अंतरिक्ष यात्रियों की जीवन डोर बंधी थी। फिर किस तरह तीनों साहसी यात्री चार दिन तक जीवन-मरण के संघर्ष में झूलते हुए पृथ्वी पर सकुशल लौटे, इसका बड़ा ही प्रेरक वर्णन है।

जहां मानव द्वारा अंतरिक्ष के भेद उघारने की कहानी उभरती है, वहीं पाठक के मन में संघर्षों में आगे बढ़ते जाने और अभावों में भी कुछ कर गुजरने की आकांक्षा पनपती जाती है। लेखक यह बताना नहीं भूलता कि नवजात न्यूटन इतना छोटा और दुबला था कि 'जिसने भी उसे देखा, उसी ने कहा - बालक है या चूहा'। तिसओलकोवस्की दस साल की उम्र में ही बहरा हो गया था। बड़ी तंगी से दिन गुजारते हुए उसने राकेट सम्बन्धी प्रयोग जारी रखे। गोडर्ड के राकेट-प्रयोगों की इतनी खिल्ली उड़ाई गई कि तंग आकर उन्होंने वह जगह ही छोड़ दी, पर अपनी धुन नहीं छोड़ी।

पुस्तक के दूसरे खण्ड 'अथाह सागर' में न तो पहले खंड जैसी रोचकता है और न प्रेरकता। सागर के पानी में से सोना बनाने की कहानी से यह खण्ड शुरू होता है। इस सोने की लागत बहुत आने के कारण यह योजना छोड़नी पड़ी थी। घटनाओं के बीच तारतम्य कहीं-कहीं टूट गया है और यह खण्ड सागर-विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों का भानमती का पिटारा बन कर रह गया है। इस सदी के सबसे महान सागर-खोजी कैप्टन कुस्तू का नाम आखिरी अध्याय में आता है। आधुनिक सागर-विज्ञान और कुस्तू एक दूसरे के पर्याय हैं। तथापि हिन्दी में यह पहला प्रयास सराहनीय है।

पुस्तक की छपाई-सफाई और सज्जा देखते हुए हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन के क्षेत्र में यह पुस्तक एक उपलब्धि मानी जाएगी।

चन्द्र-यात्राओं और खगोल विज्ञान पर हिंदी के मूर्धन्य लेखक थे रमेश वर्मा। उनकी पुस्तक 'झिलमिलाते सितारे' 1961 में 'विज्ञान परिषद्' प्रयाग के हरिशरणानन्द पुरस्कार द्वारा और शिक्षा मंत्रालय के 1964 के बेसिक साहित्य पुरस्कार द्वारा सम्मानित हुई थी। सन् सत्तर में उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को बिल्कुल ही नए विषय पर एक पुस्तक दी : 'कम्प्यूटर : मानव का मशीनी मस्तिष्क'। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के विज्ञान स्तम्भ में रमेश वर्मा की लेखमाला इसी विषय पर प्रकाशित हुई, इस पर हिंदी निदेशालय का ध्यान आकर्षित हुआ। एकदम अनूठे विषय पर उसे यह लेखमाला इतनी भायी कि उसने राजपाल एंड संस को पत्र भेजा कि वे लेखक से सम्पर्क स्थापित करके, इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करें और शिक्षा मंत्रालय की प्रकाशकों के सहयोग से विज्ञान-साहित्य-प्रकाशन योजना में शामिल करने के लिए आवेदन करें। और यों कम्प्यूटरों की जटिलता को जन साधारण के समक्ष हिंदी में पहली बार उघारने के लिए आठ अध्यायों में बंटी हुई यह पुस्तक प्रकाशित हुई। पहले अध्याय में कम्प्यूटरों के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाला गया है, बाद के तीन अध्यायों में कम्प्यूटरों की कार्य प्रणाली को उदाहरणों द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है। इसमें लेखक को निःसंदेह पर्याप्त सफलता मिली है। इसके बाद अंतरिक्ष विज्ञान, जन गणना, मौसम की पूर्व सूचना, युद्ध और सुरक्षा कार्यों तथा रोगों के निदान और उपचार तथा वैज्ञानिक अनुसंधान जैसे क्षेत्रों में कम्प्यूटर की उपयोगिता का वर्णन रोचक ढंग से किया गया है। आखिरी दो अध्यायों में कम्प्यूटरों के सामाजिक प्रभावों तथा भविष्य की चर्चा की गई है। कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय है, पर भारत में कम्प्यूटर - अनुसंधान और उपयोग की चर्चा न किया जाना खटकता है।

हिंदी में भौतिकी, खगोल विज्ञान आदि विषयों तथा विज्ञान-कथा के इस लोकप्रिय शिल्पी की एक सड़क-दुर्घटना में असामयिक मृत्यु हो गई। उन्हीं दिनों 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में उनकी 'इक्कीसवीं सदी का चेहरा' लेख-माला प्रकाशित हुई थी। एक संस्था के लिए वे 'अंतरिक्ष' नाम से एक सचित्र मासिक पत्रिका का प्रवेशांक निकाल चुके थे और फिर इसे छोड़ कर थॉमसन प्रेस से हिंदी में मौलिक विज्ञान पुस्तकों की एक विशाल योजना का समारंभ कर रहे थे। व्यक्तिगत रूप से वे अंतरिक्ष विज्ञान पर कई खण्डों में एक वृहत् विश्वकोश बना रहे थे - अब वे सारी योजनाएं अधूरी रह गईं।

हिन्दी निदेशालय की प्रकाशकों के सहयोग से विज्ञान योजना के अधीन कैपिटल बुक हाउस ने अनेक रोचक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। 'विज्ञान की कहानियां' (चार भाग), 'अतल गहराई में जीवन,' 'विज्ञान का सहज बोध,' 'आदमी कैसे बना,' 'परमाणु,' 'दैनिक जीवन में विज्ञान,' 'आधुनिक विज्ञान के महान अन्वेषक,' 'कार्यरत आधुनिक वैज्ञानिक,' 'हेलिकाप्टर,' 'रेडार,' 'जैटयान,' 'राकेट और उपग्रह,' 'ध्वनि अभिलेखन तथा आधुनिक जीव विज्ञान,' 'जिन्होंने भविष्य बनाया,' 'जिन्होंने दुनिया बदल दी' जैसी पुस्तकें छपाई-सफाई और अनुवाद की दृष्टि से पठनीय तथा संग्रहणीय हैं। सन् सम्वत् न छपा होने के कारण यह पता नहीं चला कि कौन-सी पुस्तक समीक्षाधीन वर्ष में प्रकाशित हुई है और कौन-सी इसके पूर्व।

इस वर्ष कृषि विज्ञान में अनेक उल्लेखनीय पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पंतनगर के उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय में कृषि विज्ञान की चुनी हुई पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद के अलावा मौलिक पुस्तकों के लेखन की योजना का प्रारंभ जुलाई 1969 से हुआ। अल्पावधि में ही वहां कृषि और पशुचिकित्सा विज्ञान की लगभग दो दर्जन पुस्तकें अनूदित हुईं। शस्य विज्ञान संबंधी एक मौलिक पुस्तक प्रकाशित हुई और एक प्रेस में पहुंच गई। भारतीय कृषि अनु-संधान परिषद् के हिन्दी सम्पादन विभाग से इस वर्ष 12 पुस्तकें प्रकाशित हुईं - जैविक खाद, आलू के विषाणु रोग, संकर मक्का, मिलवां खेती, कृषि अनु-संधान के तीर्थ, उर्वरक और खाद, सुहावने उद्यान, रानीखेत रोग, नींबू वर्गीय वृक्षों का उल्टा सूखा रोग, पूसा कोठी, बौने गेहूं में अनुसंधान के पांच वर्ष तथा परिषद् की वार्षिकी।

'सुहावने उद्यान' पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० महेन्द्र सिंह रंधावा द्वारा भारत के शोभाकर वृक्षों के निरीक्षण और अध्ययन की दस वर्षों की अनुभूति और उपासना का फल है। अठारह बहुरंगी और बारह सादे चित्रों से सुसज्जित यह ग्रंथ हिन्दी में उद्यान विज्ञान की इसी लेखक की 'भारत में पुष्प वृक्ष' के बाद दूसरी अनूदित पुस्तक है। दोनों पुस्तकों का अनुवाद श्री देवकीनंदन पालीवाल ने और संपादन डा० रामगोपाल चतुर्वेदी ने किया है। प्रथम अध्याय 'सुंदर वृक्ष की खोज' से लेकर अंतिम अध्याय 'पेड़-पौधों के देशांतरण' तक यह पुस्तक दस अध्यायों में बँटी हुई है। बीच के अध्याय में हैं- भूले बिखरे फूल, ऋतुओं की झांकी, आधुनिक भारतीय कला में वृक्ष, भारतीय लोक गीतों में वृक्ष, हिन्दू बौद्ध उद्यान, ईरानी और मुगल उद्यान, इंग्लैंड के उद्यान, शांति और सौंदर्य के प्रतीक जापान के उद्यान। अशोक, कदम्ब और चम्पक फूलों से क्रीड़ा करती कुशाणकालीन यक्षणियों से लेकर ईरानी और मुगलानी बेगमों के प्रिय गुलाब, गुललाला, और नरगिस तक इस पुस्तक में प्रकृति का वह सारा हरा खजाना खोल दिया गया है, जो जीवन को सुरम्य बनाता है। डा० रंधावा भारत की उन अनूठी विभूतियों में से हैं - जो आई० सी० एस० होने के साथ-साथ, वनस्पतिज्ञ, कला-मर्मज्ञ और लेखक भी हैं। किसी वनस्पतिज्ञ ने विज्ञान के साथ-साथ काव्य और कला-प्रेमी हृदय पाया हो, तभी उसके मन में पुष्पों से लदे वृक्षों को देखकर उनकी शास्त्रीय गूढ़ताओं के साथ-साथ कालिदास, उमर खय्याम और देहातों तथा जनजातियों में बिखरे लोकगीत उभर सकते हैं और तभी वह 'सुहावने उद्यान' जैसी पुस्तक रच सकता है। अनुवाद में मूल पुस्तक का आनंद सुरक्षित रहा है, यह निस्संदेह एक उपलब्धि है, क्योंकि वैज्ञानिक तथ्यों के अनुवाद से कहीं ज्यादा कठिन है काव्य और कला-संदर्भों से ओतप्रोत वैज्ञानिक उक्तियों का अनुवाद।

डॉ० जसवंत सिहं कंवर और डॉ० अम्बिका सिहं जैसे अनेक भारतीय मृदा विज्ञानियों द्वारा मिट्टी की रचना, उसके पोषक तत्व, पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उर्वरकों के उपयोग आदि विषयों पर अलग-अलग अध्यायों में प्रकाश डाला गया है - 'उर्वरक और खाद' में। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा इसी वर्ष प्रकाशित यह पुस्तक कृषि विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए अपरिहार्य संदर्भ ग्रंथ है।

संयोग की बात है कि प्रेंटिस हाल आफ इंडिया जैसी नामी संस्था ने आर०वी०ताम्हणे, डी०पी० मोती रमानी, वाई०पी० बाली और डोनाहू की

मृदा विज्ञान पर सुप्रसिद्ध पुस्तक 'साइल्स, केयर कैमिस्ट्री एंड फर्टिलिटी इन ट्रापीकल एशिया' इसी वर्ष प्रकाशित की है। श्री टी० पी० पाठक द्वारा अनूदित और फोटो आफसेट प्रणाली से मुद्रित यह ग्रंथ छपाई-सफाई में अंग्रेजी संस्करण के समकक्ष माना जाएगा। अठारह अध्यायों की विषय-सूची में मिट्टी के सभी पक्षों का वर्णन किया गया है। इसमें रोचकता खोजने वालों को निराश होना पड़ेगा, क्योंकि यह एम० एस-सी० (कृषि) की पाठ्य-पुस्तक है ललित विज्ञान की रचना नहीं। कहीं-कहीं वाक्य रचना अंग्रेजी वाक्य विन्यास को हूबहू हिन्दी में उतारने के प्रयास में जटिल हो गई है। सभी अध्यायों में स्थान और सादे चित्रों तथा रेखा चित्रों और सारणियों द्वारा इस जटिल विषय को बोधगम्य बनाने की चेष्टा की गई है। अनुवादक स्वयं कृषि वैज्ञानिक है, अतः अर्थ का समर्थ निर्वाह हुआ है।

विश्व के पचास महान वैज्ञानिकों के कृतित्व और व्यक्तितत्व का परिचय प्रो० लाजपत राय द्वारा अनूदित 'विश्व के महान वैज्ञानिक' पुस्तक में दिया गया है, इसे 'राजपाल' ने प्रकाशित किया है।

पत्रिकाओं में विज्ञान

नवभारत टाइम्स में श्री हरीश अग्रवाल द्वारा प्रति शुक्रवार लिखित विज्ञान-स्तम्भ 'जीवन और विज्ञान' इस वर्ष भी लोकप्रिय रहा। इस वर्ष इस स्तम्भ में एक नई बात यह हुई है कि केवल वैज्ञानिक तथ्यों की चर्चा न करके वैज्ञानिक अनुसन्धान की रीति-नीति का भी विवेचन किया गया। थोथी दलीलों और कागजी योजनाओं की बखिया भी उधेड़ी गई। श्री रमेश वर्मा के निधन के फलस्वरूप 'दिनमान' के विज्ञान-स्तम्भ अब फीके हो गए हैं। 'नवनीत' में केजिता (श्री कृष्ण कुमार गुप्ता) का विज्ञान-स्तम्भ 'नई दिशाएँ-नए आयाम' सीधे जीवन से जुड़ी वैज्ञानिक खोजों को बड़ी प्रवाह-पूर्ण शैली में प्रस्तुत करने के लिए इस वर्ष भी मानक बना रहा। कम लोग जानते होंगे कि 'नवनीत' के सम्पादक 'नारायण दत्त' बंगलूर के निवासी और कन्नड़ भाषी हैं। गुरुकुल कांगड़ी के इस स्नातक को 'नवनीत' के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठतम सामग्री वितरित करने, हिन्दी में खोज-खोज कर नए विज्ञान लेखक बनाने और उनकी भाषा-शैली को मांजने का श्रेय प्राप्त है। 'कादम्बिनी' को शायद अभी सजने-संवरने से फुर्सत नहीं है कि विज्ञान की ओर नज़र उठाए।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'धर्मयुग' के 'विज्ञान-स्तम्भों' की तुलना करें तो निश्चय ही 'साप्ताहिक' के विज्ञान-स्तम्भों में अधिक रोचक और जानकारी भरी सामग्री इस वर्ष प्रकाशित हुई है। धर्मयुग में डा० सांकलिया की पुरातत्व सम्बन्धी लेख मालाएं अवश्य इस वर्ष की उपलब्धि मानी जाएँगी। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने किसी एक-प्रायः अछूते-विषय पर वैज्ञानिक लेख मालाएं देकर यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी का पाठक गम्भीर साहित्य को पचाने की क्षमता रखता है। उधर 'धर्मयुग' में हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बम्बई के सौजन्य से प्राप्त अधिकतर लेख 'किताबी' रहे और उनसे विज्ञान की किसी नई दिशा का उद्घाटन नहीं हुआ।

बम्बई के भाभा परमाणु अनुसन्धान संस्थान में संगठित युवा विज्ञान-लेखन संस्था ने 'वैज्ञानिक' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका निकाल कर सराहनीय कार्य किया है। सीमित साधनों के बावजूद यह पत्रिका अच्छी निकल रही है। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों को संकलित कर भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनी पर एक पुस्तक इस संस्था ने इसी वर्ष प्रकाशित की है।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, जापानी, पुर्तगाली, रूसी तथा स्पेनी संस्करणों के अलावा अपनी मासिक मुख पत्रिका 'वर्ल्ड हैल्थ' का 'विश्व स्वास्थ्य' नाम से हिन्दी में त्रैमासिक संस्करण इस वर्ष प्रकाशित किया है। 'यूनेस्को कूरियर' की भांति यह पत्रिका भी हिंदी की उपलब्धि है। 15 अगस्त, 1970 को प्रकाशित इसके प्रवेशांक में दक्षिण पूर्व एशिया क्षेत्र के क्षेत्रीय निदेशक डा० वी० टी० एच० गुणरत्ने ने हिन्दी पाठकों को यह पत्रिका समर्पित करते हुए लिखा है – 'आप उन 13 करोड़ व्यक्तियों में से एक हैं, जो एशिया की इस महत्वपूर्ण भाषा से सुपरिचित हैं।' खेद की बात है कि हिन्दी भाषियों को इस बात की याद श्रीलंका के डा० गुणरत्ने को दिलानी पड़ी। 'विश्व स्वास्थ्य' का प्रकाशन धनकुबेर श्री नवल टाटा के दान के कारण सम्भव हुआ है।

इस वर्ष के अन्त में दिसम्बर और जनवरी के संयुक्तांक के रूप में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् ने 'खाद्य और पोषण' पर 'विज्ञान प्रगति' का उल्लेखनीय अंक प्रकाशित किया है। पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय से इसी वर्ष 'किसान भारती' मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई है, जो आस-पास के प्रगतिशील किसानों में काफी लोकप्रिय है। भारतीय

कृषि अनुसंधान परिषद् की मासिक पत्रिका 'खेती' ने अपने तेवर बदले हैं और इस वर्ष से हर अंक में किसी एक समस्या को केन्द्र बनाकर विशेष सामग्री देना प्रारम्भ किया है। प्रयाग की विज्ञान परिषद् से 'विज्ञान' मासिक के प्रकाशन का भार अब भी डा० शिव गोपाल मिश्र ढो रहे हैं, हालांकि 'वैल्थ आफ इण्डिया' के बृहत् खण्डों के हिन्दी संस्करण दिल्ली से निकालने के लिए वे यहां पहुंच गए हैं। परिषद् की त्रैमासिक पत्रिका 'अनुसन्धान पत्रिका' प्रकाशित हो रही है। हिन्दी में विज्ञान-साहित्य के जनक और विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्राण डा० सत्य प्रकाश यद्यपि अब स्वामी सत्य प्रकाशानन्द हो गए हैं तथापि कर्मक्षेत्र से भागे नहीं हैं। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी डा० बाबूराम सक्सेना इन दिनों विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष हैं।

हिन्दी ग्रन्थ अकादमियां हर प्रदेश में काम तो करने लगी हैं पर कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ हो, यह लेखक के देखने-सुनने में नहीं आया। दिल्ली विश्वविद्यालय के अनुवाद निदेशालय ने इस वर्ष भी प्राणि-विज्ञान की एक मानक पुस्तक प्रकाशित की है और कई पुस्तकें मुद्रण के विविध चरणों में हैं।

यहां, यह बता देना असंगत न होगा कि अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान-साहित्य के सृजन और प्रकाशन का कार्य जिस तेजी से चल रहा है, उसे देखते हुए कल अगर हिन्दी को ये भाषाएं विज्ञान-वाङ्मय की दृष्टि से बहुत पीछे छोड़ जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

●

श्रेष्ठ कृतियाँ

*हारे को हरिनाम

- विष्णुकान्त शास्त्री

दिनकर जी मूलतः भावावेगों के कवि हैं। बौद्धिक विचारणा द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के स्थान पर भावावेग द्वारा संकेतित दिशा के समर्थन में ही वे बुद्धि का उपयोग करते रहे हैं। वैयक्तिक एवं सामूहिक अनुभवों को आवेशयुक्त वाणी देने की क्षमता पर उनका यश अवलम्बित है। कविता क्रोधवती हो ('हुंकार', 'परशुराम की प्रतिज्ञा' आदि) या अनुरागवती ('रसवन्ती', 'उर्वशी' आदि) अथवा युद्ध और कौलीन्य के औचित्य पर

---

*लेखक : रामधारी सिंह 'दिनकर' ; प्रकाशक : उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना- 16 , मूल्य : 8.00 रुपए।

विक्षुब्ध शंका से ओत-प्रोत (कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि) दिनकर जी हृदय की भाषा में ही बोलते रहे हैं। यह स्वच्छन्द प्रवृत्ति नए कवियों में आज समादृत नहीं है, न हो, किन्तु जीवन्त सर्जना तो अपने अनुभवों के प्रति ईमानदारी बरतने पर ही हो सकती है, अपने स्वभाव के अनुरूप लिखने पर ही सम्भव है। 'नया' बनने के चक्कर में नकली बनने से अच्छा है कि अपने भावात्मक एवं वैचारिक उन्मेषों को सहज होकर अकुंठित रूप से वाणी दी जाए। 'हारे को हरिनाम' में दिनकर ने यही किया है। रोमानी अन्दाज में उनका निवेदन है कि 'कविता मेरे बस में नहीं है, मैं ही उसके अधीन हूं। पहले उस तरह की कविता आती थी, तब वैसी लिखता था, अब इस तरह की आ रही है, इसीलिए ऐसी लिखता हूं।' यह कथन मुझे इसलिए अच्छा लगा कि देखा-देखी रहस्यवाद का मजा चखने या नए कवियों का पिछलगुआ बनने की कभी-कभी उभर आने वाली अपनी दुर्बल प्रवृति से ऊपर उठकर इन कविताओं में अपनी सहज भूमिका में आने का संकेत उन्होंने दिया है।. पर एक बात मुझे खटकी भी है। 'निवेदन' में दिनकर के स्वर में सफाई देने का सा दीनभाव है। यह दीनता अंशतः हारे हुए व्यक्ति की है और अंशतः इस बोध से आक्रान्त चेतना की भी कि आज के युग में जब आस्तिकता ही तिरस्कृत है, तब भक्ति तो तथाकथित बुद्धिवादी विचारकों, कवियों और उच्चवर्गीय आधुनिकों में बहुतों के लिए उपहासास्पद होगी। इससे यही पता चलता है कि 'और न कर अब अधिक मार्ग-सन्धान सिद्धि का, दैहिक जय का' कहने के बावजूद दिनकर के मन में लोकेषणा बनी हुई है। 'रक्षा करो देवता' में वे इसको स्वीकारते भी हैं। काश, वे निराला की तरह अपनी भक्तिमूलक कविताओं के सम्बन्ध में कह सकते, कि इनका '--- अन्तरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के पर-लोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहां सम्मति का फल निष्काम में ही होगा।' (सत्योक्ति, अर्चना, पृ० क़)। निराला ने मीरा की तरह, 'लोक लाज' और (आधुनिक कवि) 'कुल श्रृंखला' को त्याग कर भक्ति के गीत लिखे थे अतः वे प्रभु के प्रति दीन होते हुए भी लोकप्रियता एवं लोक सम्मति के प्रति निष्काम थे। दिनकर की इन कविताओं में पराजित मनुष्य की दीनता के साथ साथ यह लालसा भी ध्वनित है कि ऐसा भी तो हो सकता है कि जिसे दूसरे (और वे स्वयं भी) थकान मानते हैं, वह ताजगी साबित हो। काल के गाल में समाने से उनकी 'सभी कृतियों के बीच समर्पण का कोई एक पद,/ जो आज उपेक्षित है/ शायद वही पंक्ति/ अथवा कोई छप्पय/ या दोहा बचे।

(कीर्ति, पृ० 69) इसका अर्थ यही है कि अभी तक उनकी खोज पाने की ही है, खोने की नहीं ।

जो हो, क्या ये कविताएं इसलिए अनाधुनिक अतः तिरस्करणीय हैं कि इनमें आस्तिकता और भक्ति की भावना झलकी है ? मैं ऐसा नहीं मानता। जिन्होंने ईश्वर की लाश बरामद कर ली है, उनकी बात वे ही जानें, मैं तो मानता हूं कि आस्तिकता और नास्तिकता दोनों सार्वकालिक प्रवृत्तियां हैं । कभी किसी की प्रधानता हो सकती है, कभी किसी की । आज भी आस्तिकता और भक्ति की भावना किसी का मंगलमय विकास कर सकती है । संगत प्रश्न ये ही हो सकते हैं, क्या यह भावना सच्ची है, क्या इसके द्‌वारा आधुनिक समस्याओं को झेलने का — सुलझाने का प्रयास परिलक्षित होता है और साहित्य के स्तर पर यह भी कि क्या कवि अपनी अनुभूति को सफलतापूर्वक सम्प्रेषित कर सका है ? देखा-देखी आस्तिकता की रामनामी ओढ़ना जैसे पाखण्ड है, वैसे ही अपांक्तेय हो जाने के भय से अपनी सहज सच्ची भावना को नकारना कायरता है । मुझे इस बात की खुशी है कि दिनकर में आज भी यह साहस है कि भौतिक स्तर पर अपने को पराजित अनुभव करने के बाद जिसकी शरण उन्होंने ली, उसके सम्बन्ध में अपनी भावनाओं को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करने में वे कुंठित नहीं हुए । अनुभूति की सच्चाई की एक कसौटी में रचना की मर्मस्पर्शिता को भी मानता हूं । इस संकलन की कुछ कविताएं सचमुच मर्मस्पर्शी हैं । ये वे ही कविताएं हैं जिनमें प्रिय के द्‌वारा तोड़े गये विश्वास की पीड़ा से तिलमिलाया हुआ कवि प्रभु की शरण में जा कर उनकी करुणा से अपने अभावों को भर लेना चाहता है । इस संग्रह की अन्तिम कविता 'हारे को हरिनाम' इस दृष्टि से बहुत सफल है । उसका प्रथम छन्द है :

'बहक उठे जो अंगारे बन गये,
कुसुम कोमल सपने थे ।
अन्तर में जो गांस मार कर गये,
अधिक सबसे अपने थे ।
अब चल उसके द्‌वार सहज जिसकी करुणा है ।
और कहां किसका आंसू कब थमा ?
हृदय आकुल मत होना ।"

इन आर्त्तक्षणों में भी कवि मन को प्रबोध देना नहीं भूलता कि 'सुख निद्रा की निशा है तो विपत्ति प्रातः का जागरण है। सुख-दुख में प्रभु की लीला ही झलकती है अतः जो दिग्दिगन्त में रमा है उसी में ओ हृदय, अकातर भाव से तू भी रम।' इसी तरह पहली कविता 'राम तुम्हारा नाम' में दुःखों को प्रभु का दान समझ कर सहने की और उनके संकेत पर सब कुछ न्यौछावर कर देने की क्षमता की ही याचना की गयी है; दुःखों से त्राण की नहीं, अमरता की भी नहीं। यह ठीक है कि इन कविताओं की रचनाभंगिमा कहीं तुलसी की और कहीं रवीन्द्र की याद दिलाती है किन्तु इन में ज्ञात अनुकरण से कहीं अधिक आत्मसात् कर ली गई पूर्व सूफियों की वाणियों का सहज प्रतिफलन है। उपनिषद्, तुलसीदास, रामकृष्ण, विवेकानन्द, रमण महर्षि, रवीन्द्र और गांधी के अनुशीलन से कवि ने जिस जीवनदृष्टि का विकास किया है, उसकी झलक कई कविताओं में मिलती है। शिकायत यही है कि अनुभूति की सान्द्रता से दीप्त कविताओं की संख्या, अपेक्षाकृत कम है। ऐसी कविताओं में 'सम्पाती', 'ज्ञान का रास्ता', 'आराधना' जैसी कविताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यह भी नहीं है कि इस संग्रह की सभी कविताएं भक्तिपरक ही हैं। 'वियोग', 'सिन्दूरघोरे का कैदी', 'मुक्त', 'कृतज्ञता ज्ञापन आदि कई कविताओं में लौकिक प्रेम की पीड़ा ही मुखरित है। बल्कि आभास यही मिलता है कि प्रिया के द्वारा अस्वीकृत या परित्यक्त होकर ही कवि ने 'काम' का उदात्तीकरण भक्ति में करना चाहा है। 'कविता और काम' में दिनकर ने कहा है 'और मर्द जब भभूत रमाकर/समाधि में बैठेगा,/ तुम समझ जाओगे कि/भीतर से वह तड़प रहा है,/क्योंकि मूर्ति मन्दिर में रह गयी है/असल में कोई नारी उसके प्राण हैं।' औरों के लिए यह बात सच हो या न हो, दिनकर के लिए जरूर सच लगती है। प्रिया के छोड़ के चले जाने पर अपने को निर्जीव सा मान कर उन्होंने लिखा है: 'मुर्दा न तो वियोग से डरता है न चुम्बन के लिए ललचाता है,' किन्तु उन्हें यह भी लगता है कि मोहिनी से मुक्त होकर 'मैंने फिर से अपने आपको पा लिया है।' प्रतीत होता है कि इस बोध में कहीं इस स्थिति का भी कुछ योगदान है कि प्रिया उन पर एकाधिकार चाहती थी जो उन्हें स्वीकार नहीं था। पुरुष की स्वच्छन्दता के विशेषाधिकार के समर्थक दिनकर ने मान भरे अभियोग के स्वर में पूछा है, 'मर्द को सिन्दूरघोरे में बन्द करना/क्या कोई अच्छा नेम है ? या उसे अंचल की गिरह में बांध

कर/पीठ पर फेंक देना क्या प्रेम है ?' कोई भी स्वाभिमानिनी पलट कर उनसे पूछ सकती है :'तो क्या पुरुष का स्वच्छन्द विचरण एवं नारी का एकान्त समर्पण प्रेम है ?'

दिनकर ने परम्परा और क्रान्ति का, रहस्य और विज्ञान का, दैव और पुरुषार्थ का समन्वय भी करना चाहा है। वे यह भी मानते हैं कि 'सन्तुलित समाज' के लिये 'लाजिम यह है/कि हर औरत जरा मर्द/और हर मर्द जरा नारी हो।' (पृ० 127) बच्चन जी को भी यह सलाह बहुत पसन्द आयी है, पर मर्दों द्वारा मानी जाएगी, इसमें मुझे शंका है। अपने चिन्तन, मनन एवं संस्कारजन्य विश्वासों की अभिव्यंजना उन्होंने इतने सहज रूप में की है कि कुछ पंक्तियां नये सुभाषितों सी लगती हैं। कुछ अच्छी सुक्तियां उद्धृत करना चाहता हूं। 'वसन्त यानी मौसम और मिजाज के बीच समरसता' (आन्तरिक ऋतु); 'सभ्यता विधि और निषेध के बीच समझौते का नाम है' (सभ्यता), 'जीवन मौज है, व शरीर केले का पत्ता है'; 'चिन्ता की शक्ति जीवन का ज्वर है' (बेफिक्र); 'परम्परा चीनी नहीं, मधु है' (परम्परा); 'हर पापी का भविष्य है, जैसे हर सन्त का अतीत होता है।' (उपदेशक) आदि, किन्तु खेद के साथ यह भी कहना चाहता हूं कि कई रचनाएं महज वक्तव्य सी लगती हैं।

इस संग्रह की विचार प्रधान कविताओं में मैं 'परम्परा' को सर्वाधिक प्रभावशाली मानता हूं। कवि की दृष्टि में परम्परा और क्रान्ति के संघर्ष में सूखी टहनियां जल जाएं तो कोई आपत्ति नहीं किन्तु कच्ची और हरी टहनियां निश्चय ही ध्वंस से बचा रखने के लायक हैं। क्रान्ति और परम्परा के कार्यों की ओर रूपकात्मक निर्देश करते हुए दिनकर ने लिखा है, 'पानी का छिछला होकर/समतल में दौड़ना,/यह क्रान्ति का नाम है,/लेकिन घाट बाँध कर/पानी को गहरा बनाना/यह परम्परा का काम है।' एक ओर जहां उन्होंने समसामयिक जीवन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 'परम्परा जब लुप्त होती है,/सभ्यता अकेलेपन के/दर्द से भरती है।' वहीं दूसरी ओर उन्होंने परम्परा के वर्जनशील, अन्ध अनुकरणशील रूप का तिरस्कार भी किया है। उसके ग्रहणशील एवं विकासशील रूप का समर्थन करते हुए उन्होंने नयी पीढ़ी से अनुरोध किया है : 'कलमें लगाना जानते हो/तो जरूर लगाओ,/मगर ऐसे, कि फलों में/अपनी मिट्टी का स्वाद रहे।' अन्यत्र भी उन्होंने कहा है,

'परम्परा की पूजा नहीं करना पानी के बिना प्यास से मरना है/और परम्परा की नकल करना अपने गले पर शोणित कृपाण धरना है।'

(तुलसीदास)

इन कविताओं की भाषा की सादगी पर नयी कविता की छाप है। दिनकर ने अतिशय अलंकृत भाषा कभी नहीं अपनायी थी। जिस तरह द्विवेदी युग की प्रबन्ध एवं निबन्ध काव्य शैली उन्हें प्रिय रही उसी तरह उसकी प्रसाद गुण से युक्त भाषा भी उन्होंने कुछ छायावादी विशेषताओं के साथ स्वीकार की। उनकी कविता में वक्तृत्व शैली का प्रभाव स्पष्ट रहा है। अब वक्तृता बातचीत में बदल गयी है, स्वभावतः भाषा बोलचाल के करीब आ गयी है। कोशों पर आश्रित न रह कर संवेगों के साथ आने वाली जीवन्त भाषा कविता का माध्यम बने, यही अभीष्ट है। विशेषतः बातचीत की शैली अपनाने वाली कविता के लिए तो यह अनिवार्य है। इसी समीक्षा में उद्धृत पंक्तियां इस कथन का प्रमाण हैं कि दिनकर को इस शिल्प में पर्याप्त सफलता मिली है। एक उदाहरण और देखिये: 'तुम्हारी करुणा और क्रीड़ा का/ जवाब नहीं/ मरहम वहां लगाते हो,/जहां घाव नहीं।' (वैद्य) नाम धातुओं के बढ़ते हुए प्रयोग का भी नमूना 'नाम जितना ही उजलता है' (आराधना) में देखा जा सकता है। फिर भी पुराने संस्कार कभी-कभी जोर मारते ही हैं। कोई भी नया कवि नीचे उद्धृत पंक्तियों में 'निस्तैल' का प्रयोग नहीं करता – 'करम खुदा का बन्दे, तुझे क्या गम है ? तेल की हांडी निस्तैल होकर फूटे/यह क्या कम है ?' इसी तरह शोणित कृपाण का प्रयोग भी अटपटा लगता है। ऐसे कुछ अपवादों के बावजूद इन कविताओं की भाषा में अद्भुत सफाई है।

बुढ़ापे से लड़ते रहने पर भी दिनकर अब बुजुर्ग हो चले हैं। यह सचमुच सन्तोष की बात है कि कोरा उपदेश देने का वे अब भी विरोध करते हैं। नयी पीढ़ी को कोसने के स्थान पर आश्वस्त करने की उनकी भूमिका प्रीतिकर है। 'संस्वीकृति' (कनफेशन) के लहजे में लिखी उनकी अनेक कविताएं उनके मानवीय रूप को उजागर करती हैं। अपने को दुहराने के स्थान पर अपनी वर्तमान मनःस्थिति को ईमानदारी से कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करना इस बात का

प्रमाण है कि उनका आत्मदान रुका नहीं है, कि 'कविता कवि की सार्थकता है, उसके जीवित रहने का आधार है।' मेरी शुभकामना है कि दिनकर शतायु हों और उनका यह आधार अन्त तक बना रहे।

['समीक्षा' से साभार]

अज्ञेय के दो कविता-संग्रह

– विनय

(1) सागर मुद्रा*

'सागर मुद्रा' अज्ञेय की सन् 1967-69 में रची कविताओं का संकलन है, जिनका प्रकाशन 1970 में हुआ। एक परिचित कवि की नई कविताओं का संकलन जब सामने आता है तो स्वाभाविक होता है कि हम उसे उसके सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व के प्रकाश में देख कर कवि की गतिमान चेतना को समझने की कोशिश करें। वर्षों से हम अज्ञेय की कविता पढ़ते आये हैं और उन पर विचार करते हुए अनेक बार अनेक मुखों से कहा गया है कि अज्ञेय ने कविता के परम्परित मुहावरे को बदल कर नये बिम्बों, विषयों, रूपों से समृद्ध किया है। उनकी काव्यगत उपलब्धियों के विषय में कई मत हो सकते हैं - मानने के लिये, यह भी माना जा सकता है कि अज्ञेय मूलत: व्यक्तिवादी चिंतन (नारी सापेक्षता में फलीभूत होने वाला व्यक्तिवाद) के कवि हैं, जिसके काव्यानुभव का निर्माण द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त पनपने वाली सामाजिक, राजनैतिक और मानवीय परिस्थितियों द्वारा हुआ है। यह काव्यानुभव एक

---

* लेखक : अज्ञेय ; प्रकाशक : राजपाल एन्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, मूल्य 7.00 ।

ऐसे जटिल व्यक्ति का अनुभव है जिसकी संवेदनाएं उलझी हुई हैं। लेकिन यह बात कवि की प्रारम्भिक रचनाओं के लिये जितनी सटीक बैठती है उतनी अब की रचनाओं के लिए नहीं। कारण, कवि ने जिन स्थितियों से प्रभावित होकर रचना प्रारम्भ की थी परिवर्तन उन स्थितियों में ही नहीं आया, अपितु, स्वयं कवि के जीवनानुभवों में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अतः जिन नए आयामों में ये कविताएं रची गई हैं उन पर नई दृष्टि से विचारना ही तर्क संगत हो सकता है।

यह निश्चित है कि 'सागर मुद्रा' तक कवि एक लम्बे काव्य-संसार को पार कर चुका है। अब न तो विचार की दृष्टि से और न शिल्प की दृष्टि से उसे कुछ पाना बचा है। अब केवल इतना भर शेष है कि एक सिद्ध कवि किस प्रकार अपने मूल चिंतन से जुड़ता हुआ नए जीवनानुभावों की अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि कवि की खोज अन्त तक जारी रहती है किन्तु एक समय आने पर वह खोज में रत होता हुआ भी एक गहरे आत्म विश्वास से युक्त होता है। 'सागर मुद्रा' इसी रूप में एक समर्थ और सिद्ध कवि की रास्तों में मुड़ते हुए रोमान्टिक फ़ेजों और रहस्य की खोज की रचनाओं का संकलन है। 'सागर मुद्रा' की लगभग सभी कविताओं का एकभूत प्रभाव कवि के द्वारा स्वयं व्यक्त किया गया है :-

> और तुम क्यों नहीं हो सागर
> जिसके मैं निकटतर
> आना चाहता हूं ?

यह बात कुछ विचित्र लगती है कि प्रयोग से काव्य यात्रा प्रारम्भ करने वाला कवि पुराने रहस्यवादियों की तरह अज्ञात, अनाम सम्बोधन पर उतर कर एब्सट्रैक्ट संज्ञाओं में बात करता है। यदि उसे आज अपनी कविता पर पहले की तरह कुछ कहना हो तो वह कहेगा - मेरी उत्तरवर्ती रचनाओं को भारतीय रहस्यवाद से जोड़ा जाना चाहिये क्योंकि इस काल की संकट ग्रस्त स्थिति से उबरने के लिये शायद यह आत्म-निष्ठता ही अपेक्षित है। यह सम्भावित वक्तव्य इसलिये कि अपनी पहली रचनाओं को अज्ञेय ने महायुद्ध के बाद की परिस्थितियों से जोड़ने की अपील की थी - फर्क सिर्फ इतना हुआ है कि पहले कविता को कुछ स्थूल आधारों पर जोड़ने की बात थी और अब वह आधार सूक्ष्म हो गया है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय की रचनाओं में व्यक्त इलियट की प्रतीकात्मकता, लारेंस की क्षणवादिता, ब्राउनिंग की बौद्धिकता,

सार्त्र का अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण अब विशेष रूप से 'सागर मुद्रा' की कविताओं में - 'भारतीय नव-रहस्यवाद' के रूप में व्यक्त हो रहा है। लेकिन मुझे लगता है कि जिस तरह से अज्ञेय की पूर्ववर्ती खोज अधूरी रही, उसी तरह से यह खोज भी निरर्थक होगी, क्योंकि 'सागर मुद्रा' की मुद्रा उनके जीवनानुभवों से मेल खाती प्रतीत नहीं होती। 'सागर मुद्रा' की 'मैंने ही पुकारा था', 'बेलं सी वह मेरे भीतर', 'प्रेमोपनिषद्', 'मरण के द्वार पर' और 'सागर मुद्रा' शीर्षक से लिखी अन्य ग्यारह कविताएं एक आरोपित रहस्य चेतना की कविताएं बन पड़ी हैं। यदि अपने आप को भारतीय सिद्ध करने के लिए अज्ञात, अनाम के सम्बोधन से युक्त कविताएं आवश्यक हैं या रहस्य-वाद की अभिव्यक्ति जरूरी है - तब तो इस भ्रम से कोई छुटकारा नहीं अन्यथा ये कवितायें बेमानी और जटिल हैं, इस रहस्य मुद्रा तक पहुंचने के लिये अज्ञेय को बौद्धिकता का आश्रय छोड़ कर रोमान्टिक एटीच्यूड को और गहरे में स्वीकारना पड़ा - और यहीं आकर कवि नये शब्दों में छायावादी चेतना का शिकार बनने पर मजबूर होता दिखता है :-

देखो न, सागर बड़ा है, चौड़ा है,
जहां तक दीठ जाती है फैला है,
मुझे घेरता है, धरता है, सहता है, धारता है, भरता है
मुक्त मुक्त मुक्त करता है!

ऐसा लगता है जैसे अब तक की जुड़ी हुई खिन्नता, उलझन, जटिलता अनायास एक काल्पनिक मुक्ति में परिवर्तित हो गई। यह बात साफ है कि अज्ञेय 'सागर मुद्रा' में चेतना के विभिन्न स्तरों को खोजने में व्यस्त दिखाई देते हैं, लेकिन यह खोज और इन कविताओं में व्यक्त अदम्य आस्था, यथार्थ की तरफ से मुंदी आंखों में उभरे अंधकार की चमक जैसी भ्रमपूर्ण स्थिति की परिचायक है। यह बिल्कुल ऐसी ही स्थिति है कि आप कुछ देर के लिये आंखें बन्द कर लीजिये तो अन्दर एक विस्तृत प्रकाश की चौंध दिखाई देगी - लेकिन इस चौंध से उस व्यक्त संसार की तपन को समझना बिल्कुल मुश्किल है जो हमारे सामने अपनी भयंकरता में उपस्थित है। शायद विचार और भावना के इस बिखराव के कारण 'सागर मुद्रा' की आठवीं रचना अनेक खण्ड बिम्बों के असम्बद्ध सम्बन्धों की अभिव्यक्ति में शिल्पगत प्रभाव भी खो बैठती है :

यों मत छोड़ दो मुझे, सागर,
कहीं मुझे तोड़ दो, सागर,
कहीं मुझे तोड़ दो।
मेरी दीठ को और मेरे हिये को,
मेरी वासना को और मेरे मन को,
मेरे कर्म को और मेरे मर्म को,
मेरे चाहे को और मेरे जिये को
मुझ को और मुझ को और मुझ को
कहीं मुझ से जोड़ दो।
यों मत छोड़ दो मुझे, सागर,
यों मत छोड़ दो।

इस आठवीं कविता में स्व को स्व से तोड़ने और जोड़ने वाली शक्ति के रूप में सागर (चेतना का प्रतीक) किस प्रकार बनने में समर्थ है, यह स्पष्ट नहीं है। यह सत्य है कि तोड़ने वाली शक्ति शायद जोड़ भी सकती है, लेकिन आप तो एक मुद्रा की मांग कीजिये - या तो टूटने की या जुड़ने की। इस द्वयर्थक मांग में स्पष्ट दिखता है कि कवि न तो परम्परा से जुड़ा हुआ है न टूटा हुआ। वह अभी उसे सही मायनों में स्वीकारने की स्थिति में नहीं आ पाया है।

'सागर मुद्रा' की कुछ अन्य कविताएं जीवन की सहज पोजिटिव एप्रोच की कविताएं हैं। 'जो औचक कहा गया' एक रोमान्टिक भाव बोध की कविता है और 'गाड़ी चल पड़ी' जीवन को एक चलती हुई गाड़ी के रूप में व्यक्त करती है। जीवन एक गाड़ी है, जिसमें चलना मनुष्य की नियति है और काल जो प्रश्न हमारे सामने लाता है, उनका कोई भी उत्तर हमारे पास नहीं है।

काल के सवालों का
नहीं है मेरे पास कोई जवाब,
जो उसे - या किसी को - दे सकूं।

यह कविता अपने आप में एक निरन्तर खोज का संकेत देती है। वस्तुतः खोज ही मनुष्य की यात्रा का चरम लक्ष्य है। वह फिर फिर कर उसी खोज पर आता है। 'कन्हाई ने प्यार किया' कविता में यह बात अधिक समर्थ और सटीक रूप में व्यक्त है :

कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार।
पर उड़ेलते रहे अपना दुलार
उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं -
जो कभी हाथ आया नहीं।
कभी किसी प्रेयसि में उसी को पा लिया होता -
तो दुबारा किसी को प्यार क्यों किया होता ?

यहां विचार के धरातल पर अज्ञेय ने बहुत बड़ी बात कह दी है। इसका विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है कि 'एक व्यक्ति अपने आधार को इसलिये बदलता है कि वह अपने आपको अपूर्ण पाता है और पूर्णता पाने के लिए कई मार्ग परिवर्तित करता है।' जीवन के अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं और इसीलिए कवि बार बार एक ही विषय को अपनी अनेक रचनाओं में विस्तार देता है। यदि एक गीत में वह उस सत्य को पा जाए तो दूसरा गीत क्यों लिखे ? महान सत्य वह है जिसे हम शायद नहीं पा सकते पर उसकी सम्भावना से अपने आपको सन्तुष्ट कर सकते हैं।

अन्य कविताओं में 'बड़े शहर का एक साक्षात्कार', 'जन्मशती' और 'मुझे आज हँसना चाहिए' - ये तीन कविताएं व्यक्ति के प्रति समय की उपेक्षा का यथार्थ चित्रांकन करती हैं। इनमें अज्ञेय एक व्यापक धरातल पर ऐसे सत्य का उद्घाटन करते हैं जो नितान्त कटु है लेकिन आत्मालोचन की स्थिति के लिए नितान्त अपरिहार्य।

'सागर मुद्रा' में अज्ञेय की मुद्रा एक झटके के साथ नहीं बदली है। इसका पूर्वाभास 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'कितनी नावों में कितनी बार' में होने लगा था। जहां तक भारतीय मनस् शक्ति की बात है वह अपने को पहचानने पर अधिक बल देती है - 'सागर मुद्रा' का कवि भी 'अपने को पहचानने' के रास्ते पर है। अपने को पहचानना उचित हो सकता है - लेकिन एक बुद्धिवादी काव्यान्दोलन जो 'अपने प्रति आसक्ति' के विरोध में जन्म लेने की ऐतिहासिक घटना बन चुका था - एक वायवी अहं की सूक्ष्म भाववत्ता के प्रति विरोध करने में पंख खोल रहा था - उस काव्यान्दोलन के प्रति, उस धारा के प्रतिष्ठित कवि का यह विश्वासघात कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? और इसे सच भी कैसे माना जा सकता है ? हो सकता है, इसमें कवि को 'भव्यता का बोध हो', एक तुष्टि मिले, विराट सौन्दर्य की पहचान हो - (यह सब कुछ तो छायावादी कवि अधिक सामर्थ्य से कर चुके हैं) लेकिन इससे यह भी जाहिर है कि नव

रहस्यवाद के नाम पर अज्ञेय ने कुछ मित्रों के साथ मिल कर जो नई पीढ़ी को गुमराह करना चाहा था - नई पीढ़ी तो उससे बच गई लेकिन अज्ञेय नव रहस्यवाद में उलझ कर रह गए।

प्रस्तुत संग्रह में 'देलोस से एक नाव' शीर्षक के अन्तर्गत अज्ञेय ने कुछ ग्रीक कविताओं का अनुवाद किया है। इन कविताओं में ग्रीक कथाओं के आधार पर उस देश की मोहक भाव धारा की अभिव्यक्ति मिलती है। अनुवाद की सीमाओं के विषय में भूमिका में पर्याप्त स्पष्टीकरण दे दिया गया है। क्योंकि अनुवाद मूल से किया गया है अतः मूल भावना के अनुकूल ही होगा।

समग्रतः अज्ञेय की 'सागर मुद्रा' उनके काव्य के मध्यकाल में उभरी रहस्य चेतना की मुखर अभिव्यक्ति है। कवि ने अपने पहले के आसनों को बखूबी बदला है। यह बात विवादास्पद हो सकती है कि ये बदले हुए आसन उसकी काव्य-प्रतिभा का उज्जवल पक्ष सामने लाते हैं या उसकी ह्रासोन्मुखता का प्रदर्शन करते हैं।

जहां तक शिल्प का सवाल है, कथ्य की कोमलता के साथ उसकी तेजी भी ह्रास की ओर अग्रसर हुई है। अधिकांश कविताएं बहुत सामान्य रूप से सपाटता को उजागर करती हैं। शब्द चयन में तो कवि शायद छायावादी शब्द भण्डार के तत्सम शब्दों को ही तद्‌भव बनाने में समर्थ हुआ है। छोटी कविताओं के बिम्ब अधिक सटीक बन पड़े हैं, किन्तु बड़ी कविताओं के बिम्ब खण्ड-खण्ड होकर प्रभावहीन हो जाते हैं और रह जाती है एक कहानी जो कुछ शब्दों में स्पष्ट, कुछ में जटिल और कुछ में बहुत सामान्य होकर सामने आती है।

> बारबार हम आते हैं
> और रेती में लिख जाते हैं
> अपने सुख चैन की कहानी :
> प्यार में दिए हुए वचन
> या निहोरे पर किये हुए बैर के इरादे।

यह मुक्त छन्दता भी एक खास किस्म की प्रगीतात्मकता से बंधी लगती है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :-

नाव तो तिर सकती है
मेरे बिना भी
मैं बिना नाव भी
डूब सकूंगा ।
मुझे रहने दो
अगर मैं छोड़ पतवार
निस्सीम पारावार
तकता हूं,
खोल दो नाव
जिधर बहती है
बहने दो ।

इस विषय में कोनरॅड ऐकन (Conrad Aiken) ने इलियट के लिए जो कुछ लिखा वह अज्ञेय पर भी कुछ अंशों में लागू होता है :-

"Eliot's rhymed free verse, which was not really free verse at all but a highly controlled and very subtly modulated medium, was probably the best sign-post available as to the direction in which the form and tone of poetry most adventurously go."

इलियट के लिए कही गई बातों के सभी गुण-दोष अज्ञेय पर चरितार्थ होते हैं। 'सागर मुद्रा' से लगता है - यदि 'चिन्ता' से कई अर्थों में जोड़ कर देखें - कि अज्ञेय पूर्वार्द्ध में नितान्त रोमान्टिक एटीच्यूड के कवि रहे और जैसे कि अधिकांश श्रृंगारी कवियों की परिणति रहस्य भावना में हुई - अज्ञेय का रोमान्टिसिज़्म भी नवरहस्यवाद के भ्रम में कोई रास्ता निकालने की कोशिश में व्यस्त है।

(2) क्योंकि मैं उसे जानता हूं*

अज्ञेय की इधर की रचनाओं के अध्ययन से एक बात साफ जाहिर होती है कि अब कवि साहित्यिक आंदोलनों से इतर आत्मज्ञान, आत्मविकास और स्व की पहचान के स्वरों में बोल रहा है। इसे अवस्था की अनिवार्य परिणति

* लेखक : अज्ञेय ; प्रकाशक : ज्ञानपीठ प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली- 7; मूल्य : 5 रुपए ।

कहिए या जीवन के प्रति गहन अध्ययन, मनन, व्यावहारिक उपचर्या और विश्वगत, संघर्षरत शताब्दी को शान्ति की ओर ले जाने की प्रक्रिया से उद्भूत एक आत्म विश्वासमयी वैयक्तिक उन्नयन की साधना, लेकिन यह निश्चित है कि कवि का मूड कुछ प्राप्त कर पाने के विश्वास की अभिव्यक्ति करता हुआ दिखता है। सामान्यतः कोई भी काव्यान्दोलन एक जड़ व्यवस्था का विरोध करता हुआ अपने आक्रोशात्मक स्वर की अभिव्यक्ति करता है, उसमें भी एक व्यवस्था को समाप्त करके केवल वैक्यूम लाने की भावना न होकर, दरअसल उसे अपने रूप में भरने की इच्छा भी निहित होती है। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' कविता संकलन की अधिकांश रचनाएं अपने पृथक् रूप में व्यक्ति के दर्द के विविध संदर्भों को अभिव्यक्त करती हैं – लेकिन यह दर्द ऐसा है जिसे अपना समझने की स्थिति का सुख पाठक स्वतः अनुभव कर लेता है।

'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' में सन् 1965 से 68 तक की ऐसी कविताएं संकलित हैं जो अलग-अलग स्थितियों को एक गहरी अर्थवत्ता देते हुए समग्रतः अज्ञेय की जीवन के प्रति एक नई पहचान के केन्द्रीय भाव से संयुक्त हैं। बहुत कुछ इसी समय की कविताओं के सँकलन 'सागर मुद्रा' की तरह इनमें एक अन्तहीन खोज की मुद्रा न होकर .... सामयिक यथार्थ की कटुता से सतर्क नई राजनीति, नए मानव और नए समाज के विविध संदर्भों की सच्ची अनुभूतियां हैं। यद्यपि इस बदले हुए स्वर में एक स्वर वह भी है जिसकी शुरूआत 'हरी घास पर क्षण भर' से प्रारम्भ हो चुकी थी।

इस संग्रह में तीन खण्ड हैं : 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं', 'गूंजेगी आवाज़' और 'प्रार्थना का एक स्वर'। पहले खण्ड में अपने से अलग लेकिन अपने में व्याप्त किसी सत्य के जानने का विश्वास मूल रूप से व्यक्त हुआ है। वैसे कवि जीवन में किसी भी विश्वास को अपने दर्द के माध्यम से पाता है। पर वह उसका अपना दर्द सार्वजनीन, सार्वकालिक होता है और यहीं पर वह अपनी कला में न स्वयं अपने को अपितु सबको अभिव्यक्ति देता है। 'मोड़ पर का गीत', 'ध्रुपद:शं', 'एक दिन' कविताओं में अज्ञेय ने व्यक्ति चेतना के उन स्तरों को वाणी दी है जिनसे वह जीवन की वास्तविकता को सोचने समझने की कोशिश करता है :

> यह गीत है जो मरेगा नहीं।
> इसमें कहीं कोई दावा नहीं,

न मेरे बारे में, न तुम्हारे बारे में,
दावा है तो एक सम्बन्ध के बारे में
जो दोनों के बीच है, पर जिसके बीच होने
या न होने का भी कोई दिखावा नहीं ।

यहां अज्ञेय ने तमाम स्थूल, सांसारिक, विश्वगत स्थितियों की यथार्थता से आंखें मूंद कर - या उनके उसी रूप में होने की अनिवार्यता से हार कर - अपने और उसके - 'मेरे और तुम्हारे' बीच होने - कुछ होने की स्थिति को वैयक्तिक साधना के स्तर पर व्यक्त किया है । यह स्वर सामयिक कविता के स्वर से भिन्न नहीं । वह तो स्वयं अन्य युग की उस कविता के स्वर से भी अलग है जिसकी प्रतिष्ठा करने का अज्ञेय ने दावा किया था ।

ऐसा लगता है जैसे अज्ञेय अपने द्वारा प्रचारित प्रारम्भ के व्यक्ति-इतर नारों की अर्थहीनता को समझ कर एक परम्परागत जीवन की शाश्वतता को समझने लगे हैं । इसीलिए उनका विश्वास है :-

पर वह आयेगा
यह सोच भी तो मेरे रोम उमगाती है :
यही आस्था मेरी कल्पना जगाती है,
मेरी उंगलियों को कंपाती है :
मैं नहीं गाता, गीत मुझ में गाया जाता है ।

यही नहीं वह उसके हर तार को अपनी शिरा मानता हुआ, उस चरम संगीत को रोम-रोम से सुनता है ।

'एक दिन' स्पष्ट रूप से उस 'वह' की खोज की कविता है जिस का स्वर अज्ञेय के पूर्ववर्ती कवियों की रहस्यवादी भावना से अभिन्न है । उसे जानते हुए भी अनजान होने की स्थिति बराबर बनी रहती है ।

कौन है, क्या है वह, कहां से आया है
जो ऐसे में मुझे रखता है
परिचिति के घेरे में आलोक से विभोर?

इस खण्ड की कविताओं से अधिक तेज़ और प्रभाव डालने वाली रचनाएं दूसरे खण्ड में 'गूंजेगी आवाज' शीर्षक से दी गई हैं । लगता है कि

एक आवाज़ जिसमें दम्भ है—अपने को, अपने परिवेश की धुंधली आकृति और भविष्य के चमकते रास्तों को तेजी से काटती गूंजती है। इस आवाज का पहला संघर्ष यह है कि परम्परा एक जड़ पत्थर के घोड़े के समान है — अर्थात् उसमें गति का भ्रम होता है वह वास्तविक रूप से गति नहीं है। ... इस खण्ड में अज्ञेय की अनुभूति वैयक्तिक स्तर से बाहर देश काल के व्यापक सन्दर्भों से जुड़ जाती है। निश्चित ही — 'आजादी के बीस बरस', 'दिया हुआ : न पाया हुआ', 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्', 'क्योंकि मैं हथौड़ा', 'अभी रहने दो' आदि रचनाएं अत्यन्त सशक्त हैं और यह विश्वास दिलाती हैं कि 'अपने' और 'उसके' से आगे एक तीसरी आंख भी है जो मात्र रहस्यवादी भावना में ही नहीं मुंद जाती अपितु भूमि की यथार्थ तपन को भी महसूस करती है। इतना ही नहीं उसके प्रति उपेक्षित भाव का संशोधन भी करती है। 'आजादी के बीस बरस' एक तरह से आत्मालोचन की मुद्रा में लिखी कविता है। इसका व्यंग जितना कचोट देने वाला है उससे ज्यादा उसका दर्द-पीड़ा पहुंचाने वाला है :

> चलो ठीक है कि आज़ादी के बीस बरस से
> तुम्हें कुछ नहीं मिला,
> पर तुम्हारे बीस बरस से आज़ादी को
> (या तुमसे बीस बरस की आज़ादी को)
> क्या मिला ?

बहुत हल्के और सामान्य शब्दों का चयन और इतनी गहरी सच्चाई से भरी बात ---- यह कविता अज्ञेय की बहुत अच्छी कविताओं में गिनी जानी चाहिए। इसके आगे 'दिया हुआ : न पाया हुआ' कविता व्यापक सन्दर्भ में व्यक्ति स्वातन्त्र्य पर व्यंग करती हुई राजनैतिक, सामाजिक विघटन को उजागर करती हुई उसकी शक्ति हीनता (helplessness) और एक खोखले अहं के माध्यम से उसकी विवशता का यथार्थ अंकन करती है :-

> कि मैं बहुत कम जानता हूं और बहुत कुछ
> बेवजह मानता हूं
> सिवा इसके कि यही नहीं मान पाता
> कि मुझे कुछ नहीं आता,

बात यहीं समाप्त नहीं होती, अज्ञेय अपने चिर परिचित मूड में यह स्थापित करते हैं कि आज का मानव जो कुछ उसने पहले से पाया है, से अपना सम्बन्ध काटता जा रहा है जो कुछ उसने नहीं पाया, उसे पाने के लिए संघर्षरत है। यहां पर कवि की मानव की जीवन्त शक्ति में आस्था व्यक्त होती है — यही आस्था उसके वैयक्तिक और सामूहिक उन्नयन के लिए सेतु है।

अज्ञेय की वे कविताएं जिनमें उन्होंने रहस्य मुद्रा के 'वह' और 'तुम' को छोड़ कर व्यापक संदर्भ में सीधी सच्ची भाषा और सरल बिम्बों में जीवन के व्यक्ति से इतर पक्षों को उभारा है (हालांकि उनका भी व्यक्ति से सम्बन्ध है) अधिक सशक्त और पाठक के नज़दीक हो गई है। वहां पाठक अपने आपको कवि की अनुभूति से अलग नहीं पाता बल्कि उसका भाग बन जाता है। यहां पर कवि का जानना और पहचानना पूरी तरह से सार्थक है। 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्' भी एक ऐसे दर्द की अभिव्यक्ति है जो अपने घेरे में 'एक राष्ट्र भावना रहित' जन समूह के बिखराव को उपस्थित करती है। कितना बड़ा दर्द है :-

> यों सब आ गए, मेला जुट गया।
> यही मैं नहीं जान पाया कि इस पचमेल भीड़ में
> वह एक समाज कहां छूट गया ?
> और जिसमें पहचानना था देश का चेहरा
> वह आईना कहां लुट गया ?

इन व्यापक सन्दर्भों में अपने स्वत्व को पाने और अपने को पहचानने की बात कितनी अर्थवान लगती है :-

> हथौड़ा अभी रहने दो :
> आओ, हमारे साथ वह आग जलाओ
> जिसमें से हम फिर अपनी अस्थियां बीन कर लाएंगे,
> तभी हम वह अस्त्र बना पाएंगे
> जिसके सहारे
> हम अपना स्वत्व — बल्कि अपने को पाएंगे।

इन रचनाओं में अज्ञेय ने निश्चित ही एक बड़ी दुनिया को अपने दर्द में समेट कर व्यक्त किया है। एक समर्थ कवि का सामयिक ज्वलन्त प्रश्नों - समस्याओं पर इस तरह का रियेक्शन जहां उसकी जीवन्तता को सामने लाता है वहां उस कलानुभव को भी सार्थक करता है जो केवल 'स्व' के दर्द से 'स्व' की पहचान तक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर न होकर स्थूल चिन्तन की अनिवार्यता को भी उपस्थित करता है।

तीसरे खण्ड 'प्रार्थना का एक प्रकार' में अपेक्षाकृत पहले दो खण्डोंकी रचनाओं से सूक्ष्मता अधिक है। मानवीय संवेदना में कभी-कभी ऐसा रूप उभरता है जहां भयानक राजनैतिक विस्फोट एक झरते हुए फूल से ज्यादा दर्द नहीं दे पाता या कभी-कभी एक डाली का टूटना इतनी पीड़ा एकत्रित कर देता है जितनी भू भागों का विघटन भी नहीं कर पाता। 'कच्चा अनार: बच्चा बुल-बुल', 'कहीं राह चलते चलते', 'तुम्हें क्या', 'आश्वस्ति', 'सपना', 'वैध्य' और 'ओ तुम' आदि कविताओं में कवि की अनुभूति अत्यन्त ऋजु और सीधा प्रहार करती हुई मानवीय संवेदना के विविध रूप उजागर करती है:

रोज सबेरे मैं थोड़ा-सा अतीत में जी लेता हूं
क्योंकि रोज शाम को मैं थोड़ा-सा भविष्य में मर जाता हूं।

यह सत्यानुभूति जहां जिन्दगी के अज्ञ रोटीन को गहरी पीड़ा के साथ उपस्थित करती है वहां 'देना पाना' में अस्तित्व की आस्था अत्यन्त बलवती होकर चित्रित हुई है:-

दो? हां, दो,
बड़ा सुख है देना।
देने में
अस्ति का भवन नींव तक हिल जाएगा -
पर गिरेगा नहीं,

कवि संघर्ष की भूमिका से हट कर विश्वास की भूमि तक यात्रा कर चुका है। इस यात्रा में जीवन की उपलब्धियों को सहज स्वीकारने की मुद्रा है -- उनसे परे हटकर आलोक-भ्रान्त रहस्य चिंतन की सागरीय मुद्रा नहीं। लगता है कि इस यात्रा में उसने कमल की कलियों, डालियों, पत्तों और राजनैतिक घटनाओं को समानान्तर देखा है। इनमें अभेद करके जीवन जिया है। लेकिन यह वस्तु निरपेक्षता या संदर्भमुक्त सापेक्षता भी उसे वैयक्तिक उन्नयन की चरम

सिद्धि पर नहीं पहुँचा पाई, रास्तों के भटकाव रचनाओं में यदाकदा स्पष्ट हो जाते हैं - वह जो पाना चाहता है अभी सम्भव नहीं और जिसे उसने पाने की घोषणा की वह काफी पीछे छूट गया है।

इस पर भी "क्योंकि उसे जानता हूँ" के बिम्ब, प्रतीक और उसकी अभिव्यक्तियाँ उलझी हुई अथवा जटिल नहीं हैं। वे काफी सरल और साफ है। वह संकेतों का संसार छोड़ कर सीधी भाषा में गहरे तनाव को अभिव्यक्त कर सका है - लेकिन ये सारी रचनाएँ तनाव से परे तनाव को झेलने के बाद की स्थितियों के विविध संदर्भ हैं। यदि इनमें कहीं तनाव है तो वह सम्बन्धों की स्मृति का है, कहीं उलझन है तो और आगे जाने की प्रक्रिया की है और जितनी मात्रा में आज के मानव का तनावहीन होना सत्य है, उतनी ही मात्रा में "क्योंकि मैं उसे जानता हूँ" कि कविताएँ पाठक को प्रभावित करती हैं।

*इतिहासहन्ता

– बदरीदत्त पांडे

यह युग ही इतिहासहंता है, ऐसी मेरी प्रतीति है । जगदीश चतुर्वेदी के इस काव्य-संग्रह में इस प्रतीति का एक पक्ष स्पष्ट रूप से सामने आया है, इसमें संदेह नहीं । मेरी यह धारणा व्यक्तिगत हो सकती है क्योंकि मैं श्री चतुर्वेदी और उनके सृजन-प्रयत्नों से व्यक्तिगतरूप से परिचित हूं, साथ ही उनके खीझ भरे उद्‌गारों से भी जो अपने आलोचकों के प्रति वे लिखित या अलिखित रूप में व्यक्त करते रहते हैं । ये उद्‌गार सटीक भले ही हों पर उनसे उनकी कविता का स्वरूप स्पष्ट होने के स्थान पर छिप जाता है । इसका प्रमाण उनका यह काव्य-संग्रह है जो गंभीर अध्ययन की अपेक्षा रखता है । श्री चतुर्वेदी की शैली प्रतीक-मूलक है और वे बिम्ब-रचना के धनी हैं । इस शैली की अभिनवता से त्रस्त होकर दो-चार व्यंग्य-वाक्यों के प्रहार से उसे धूलिसात् नहीं किया जा सकता।

श्री चतुर्वेदी कविता को 'घोर वैयक्तिक रचना प्रक्रिया' मानते हैं । पर उनकी वैयक्तिकता इतनी तटस्थ और अनासक्त है कि निर्वेद के धरातल पर जा

---

* लेखक : जगदीश चतुर्वेदी ; प्रकाशक : ज्ञान भारती प्रकाशन, 174-ई, कमलानगर, नई दिल्ली ; मूल्य : 6 रुपए ।

टिकती है। जीवन की इस 'कॉमेडी' या यों कहें कि 'ट्रेजेडी' को उन्होंने एक अनासक्त करुणा के साथ देखा है, जिसमें सस्ती भावुकता का स्पर्श भी नहीं है। यह आश्चर्यजनक इसलिए भी है कि श्री चतुर्वेदी चिंतन के कवि नहीं हैं, संवेदना और भाव-प्रवणता के कवि हैं। उन्होंने हर अनुभव को हृदय से ग्रहण किया है (उसने भेजे को त्याग दिया, इस बाईं ओर की टिकटिक को न छोड़ सका)। आज के युग का मात्र भाव-ग्रहण कोई कर सकता है, यह एक दूसरा प्रश्न है। परन्तु भाव द्वारा ग्रहण करके भी, जैसा मैंने ऊपर कहा है, 'एक पक्ष' प्रस्तुत करने में कवि सफल हुआ यह अपने में एक बड़ी उपलब्धि है।

इस युग की चुनौती बहुत बड़ी है और उसे व्यक्तित्व के सभी अंगों से ग्रहण और प्रदान कर सकना कठिन है। युग के अनुरूप ही व्यक्ति की सीमाएं भी दुर्निवार हैं, अतः इस दृष्टि से मैं श्री चतुर्वेदी के काव्य-संग्रह को नहीं परखना चाहता।

कवि की उक्त विशेषता के कारण वह जहां जीवन को स्पर्श कर रहा है, भोग रहा है, वहीं वह उसके हाथों में फूल की तरह मुरझा जाता है; जिस सुख का कवि आलिंगन कर रहा है वह शून्य है, अतः शून्य को छाती से लगाने से हृदय में जो खलिश होती है वही उसके हाथ आ रही है। इससे घबड़ा कर वह उससे पलायन भी करता है: 'प्रेमिकाओं के शवों को ट्रेन के डिब्बे में छिपा दिया है और भाग आया हूं।'[1] सभी अनुभवों के बाद अन्त में उनकी सारहीनता ही कवि ग्रहण कर पा रहा है और इस सारहीन अनुभव के बाद वह अपने भीतर लौट जाता है। यह चतुर्वेदी के काव्य की सीमा भी है और विशेषता भी। वह भुतहा एकान्त इसीलिए चाह रहा है कि उसमें जीवन के सभी खंडित अनुभवों को भूलकर वह अपनी मानसिक स्वस्थता कायम रख सके।

उसके लिए मर्यादाओं से बंधा जीवन अभिशाप है, वह इस कदर ढोंग, निरर्थक जीने और बोरियत से भरा है कि वह कलाकार को प्रेरित करने में असमर्थ है। विवाहित जीवन का भोंडापन, नैतिक और धार्मिक जीवन और उसकी म्रियमाण जिज्ञासा का फूहड़पन, अतीत के प्रति अज्ञान भरा मोह और कलाप्रियता का दंभ इस सभी से कवि को विरक्ति है, और इसी कारण उसमें विद्रोह का स्वर है:

(1) कुचिपुडि की मुद्रा को लोग कलात्मक रुचि के लिए नहीं अपने व्यसन आसनों की तुष्टि के लिए सहज मान रहे हैं। धार्मिक स्थानों में जाकर मर्दुमी का इजहार कर रहे हैं।

— निर्कृति, पृष्ठ 17

(2) ओ कर्मकांडी भारत
मुझे तुमसे, तुम्हारे सांस्कृतिक वैभव और यश से
बू आती है।
... ...
मुझे तुम्हारे ऋषियों द्वारा परिपोषित काम
शास्त्र की ठंडी नापाक हरकतों में नहीं उलझना
तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम मुझे उसी जाजम से ले जा रहे हो
जहां मुगलिया दरबार के वैभव की पैवंदें लगी हैं।

– अपने देश के लिए, पृष्ठ 56

(3) देह के गरिष्ठ वंधनों में आग लगाने
और नगरों और महिलाओं की गरिमा का इतिहासांत
करने की बलवती इच्छा
मुझमें जनमती है। – प्रतिशोध, पृष्ठ 45

कवि में एक विचित्र अनासक्ति का भाव उदय हो गया है। अतीत को उसने बेदर्दी के साथ काट दिया है। पर उसके लिए उसे बड़ी लंबी आंतरिक यात्रा करनी पड़ी है। वह इन सबसे पलायन कर रहा है, अनेक स्थलों पर वह भाग निकलने की बात कर रहा है, जिजीविषा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए; अन्यथा इस आंतरिक यात्रा की, प्रलोभनों से पलायन की, सार्थकता क्या है ?

मैं लौटा हूं एक लंबी यात्रा से वापिस और मैंने प्रेमिकाओं के शवों को ट्रेन के डिब्बों में छिपा दिया है और भाग आया हूं।

– अनासक्ति, पृष्ठ 1

'प्रायश्चित', 'मुक्ति', 'आत्म-विघटन', 'अवस्थित', 'आत्म-स्वीकृति', 'अपने देश के लिए' तथा 'मैं गरुड़ हूं' आदि इस संग्रह की सशक्त और अर्थगर्भित कविताएं हैं, जिनमें कवि जिस भाव-भूमि पर विचरा है वह उसकी अपनी, अभिनव है। कवि का बोध स्पष्ट और तीव्र है। वह जिन परिस्थितियों से परिचित एवं पीड़ित है उनसे मुक्ति भी चाहता है। उनसे भावात्मक संबंध रखना उसके लिए घातक होगा :

'इन कीड़ों से मानव पिंडों के लिए मेरे मन में कोई दया नहीं।' अतः वह 'अनायास पा गया एकांत' चाहता है क्योंकि वह जाने-अनजाने इनसे छूटकर अपने भीतर सिमटना चाहता है। पर यह आंतरिक विश्लेषण

का जीवन एकाकी और अवसादपूर्ण होता है क्योंकि जिस युग-युग के अंधकार से यह मन निर्मित हुआ है उसके विश्लेषण से हाथ लगेगा भी क्या ? वह तो चेतना को सीमित कर देता है :

अपने छोटे से मकान में कैद एक भूत की मानिंद जियूंगा मैं ,
अपने एकरस जीवन को महानगर की कड़वी हवा से
नहीं करूंगा विषाक्त
प्रेम के प्रत्येक आकर्षण को मिटा दूंगा अपने मानसिक
धरातल पर कोई अक्स न छोड़ जाने के लिए ।

– प्रायश्चित , पृष्ठ 15

कवि उन स्मृतियों से मुक्ति चाहता है । ये स्मृतियां उसे अतीत के साथ सम्बद्ध कर रही हैं । अवसादजनक स्मृतिभार उसे स्वीकार नहीं और वह उसे भी निकाल फेंक कर अतीत से मुक्त नया जीवन जीना चाहता है :

उन स्मृतियों को
जिन्हें तुम्हें लौटा कर मैं मुक्ति ले लूंगा ,
सच मानना वह मेरा पुनर्जन्म होगा ।

– प्रायश्चित, पृष्ठ 16

देश को संबोधित जो पंक्तियां कवि की हैं उनमें भी उसने इस परिवेश से मुक्ति चाही है । यह सारा परिवेश इतिहास की मृत स्मृतियों का श्मशान है । उसका स्वर सशक्त द्रष्टा के ज्योतिर्मय दर्शन से उद्भूत नहीं है, पर कवि के बोध का आयाम दूसरा ही है । उसकी पुकार वास्तव में एक खीझ है , क्रोध है , इतिहास की विकृत छाया के विरुद्ध :

हिन्दुस्तान तुम्हारा शरीर सदियों के कोढ़ से बिंधा है
हट जाओ मेरे सामने से पिचके कपाल
मैं तुम्हें देखकर शर्म से झुक जाता हूं !

– अपने देश के लिए , पृष्ठ 55

संग्रह की सभी कविताओं को पढ़ने से प्रतीत होता है कि अनुभव की अनेक गलियों से गुजर कर और भावबोध के अनेक स्तरों को छूकर कवि अंत में जीवन के प्रति एक नई आस्था प्राप्त कर रहा है । वह अपने अहं को जैसे विस्तृत कर रहा है और उसके भीतर मानव को खींच लेना चाहता है । उसके

अनुभव इसीलिए वैश्व हैं -'मुझे पता नहीं मैं क्या करना चाहता हूं।' उसका 'कोई नाम नहीं न कोई आदर्श है, मात्र घोंघे की तरह अपनी खोल में बन्द कराह रहा है' पर एक आंतरिक शांति, एक एकांत की ओर बढ़ रहा है :

वात्याचक्र में ढूंढ़ लूंगा
अपना एकांतिक सुख
तमाम रिश्तों के बीच
एक अस्त्र बनकर
काटूंगा नहीं शान्ति।

- प्रायश्चित, पृष्ठ 16

यही कवि की आस्था है। वह कवि-गरुड़ है, उसे कोई मार नहीं सकता क्योंकि अंत में वह अपनी आस्था के सहारे अपने देश लौट आएगा :

मुझे मारो मत
मुझ से स्नेह करो
मैं गरुड़ हूं
(तुम्हारा देशज हूं)
आज अपने देश लौट आया हूं।

- मैं गरुड़ हूं, पृष्ठ 19

यही उसका देश है, वह नहीं जिसे देखकर शर्म से उसका मस्तक झुक जाता है।

संग्रह में कुछ लघु कविताएं भी हैं, जिनमें कुछ कुशलता से तराशे हीरों की तरह पानीदार हैं और कुछ शायद चेतना को 'शॉक' पहुंचाने के लिए लिखी गई हैं। कुछ पौराणिक संदर्भों की भूलें भी हैं, पर इन सब पर यहां विचार नहीं करूंगा।

मैं अन्त में यही कहूंगा कि कविता के क्षेत्र में यह संग्रह 1970 की उपलब्धि है, जिसमें अनास्था से आस्था तक एक सम्पूर्ण वृत्त खींचने में कवि सफल हो सका है, यद्यपि यह उसकी 'परगेटरी' है 'डिवायन कॉमेडी' नहीं।

●

*दर्शक दीर्घा से

—राजीव सक्सेना

कवि स्वयं आज अपनी कविता का नायक है। छोटी-छोटी कविताओं में खण्ड-खण्ड बिखरा हुआ उसका व्यक्तित्व महाकाव्यों के नायकों-खलनायकों की शास्त्रीय परिभाषा में नहीं आता। वह किसी महान यशोगाथा का गायक नहीं, मात्र अपनी पहचान का अन्वेषक बन जाता है। यह पहचान कोई काल-स्थान-निरपेक्ष व्यक्ति का आध्यात्मिक, ब्रह्मवादी आत्म-साक्षात्कार नहीं है। उसकी रेखाएं भौतिक परिवेश के संवेदनशील अनुभवों के रंगों से निर्मित होती हैं। किन्तु यह पहचान कवि को परिवेश में आबद्ध, निष्क्रिय नहीं छोड़ती। संवेदनशीलता जितनी गहन होती है, उतनी ही अधिक प्रेरणा उसे परिवेश तोड़ने के लिए मिलती है और यहीं से आज की कविता की विद्रोही प्रवृत्ति आरम्भ होती है।

दुर्भाग्य से, विदेशों के प्रस्थापित आन्दोलनों के प्रभाव से कुछ मुखौटे लगाकर अपने को आधुनिक बनाने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी है और भारतीय मिट्टी के आदमी की पहचान खोती जा रही है। यह प्रसन्नता का विषय है कि

---

*लेखक: बलदेव वंशी; प्रकाशक: प्रसाद पुस्तक मंदिर, 1405, कृष्णमूर्तिपुरम, मैसूर-4; मूल्य: 6 रुपए।

युवा कवि बलदेव वंशी इस प्रवृत्ति से मुक्त हैं । सातवें दशक में रचित उनकी कविताएं समसामयिक भारतीय युवक का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती हैं:

'उम्र को पकड़ने के लिए/मैं दूसरों की जेबों में कैद हूं/राशन-खातों में/बिछी मेरी अहमियत/मेरा सही अता-पता है/घोषित/अपराधी के हक में दी गयी/गवाही हूं - मैं ।' (पृ० 23)

'अपने बारे में/सोचता हूं तो इतना/कि रेगिस्तान में एक पांच फुट साढ़े सात इंच लम्बी लकीर है । बस/यही है मेरा नखलिस्थान/घर के/आगे एक नग्न पेड़ ....' (पृ० 19-20)

प्रेमचन्द जिसे महाजनी सभ्यता कहते थे, उसने आज विस्तार पा लिया है और मनुष्य का अमानवीकरण कर दिया है । इस सभ्यता के प्रभुत्वशील लोगों को बलदेव वंशी ने स्पष्ट परिलक्षित किया और 'आप', 'तुम' या 'वे' कह कर सम्बोधित किया है :

'जरा बही देख कर आप बतायेंगे/अपना हिसाब ?/ इन एकदम हाथ-पांव हो गये लोगों को/ आप किस जिन्स में गिनते हैं ? / कुर्सी ? / कपड़ा ?/ कोठी ?' (पृ० 93)

'वे लोग/ बहुत हैं - मूर्ख और धूर्त/ जो मुझे, मेरी जड़ों को/ बराबर नंगा किये जाते हैं ।' (पृ० 21)

संग्रह का नामकरण 'दर्शक दीर्घा से' शीर्षक जिस कविता पर किया गया है, उसमें इसी अमानवीय व्यवस्था के कर्णधारों पर चोट की गयी है जिनके निकट पेट भरने के लिए यातना सहने वाले लोग एक तमाशा मात्र हैं :

'वह कौन सा खेल है/ कि बच्चे की जिह्वा काट दिये जाने पर/ पुलकित हो दर्शक तालियां बजाते हैं / और तुम तालियां पीटते / कब तक मापते रहोगे मेरी यातना ?' (पृ० 13-14)

इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह किए बिना मानव-मूल्यों के लिए संघर्ष नहीं किया जा सकता । स्पष्ट ही, इस विद्रोह में आड़े आता है-'पेट' और उसकी सीमाओं का अतिक्रमण करने की स्वीकृति ही आज के नायक को जीवन्त रूप देती है :

'संशय और भय के मिले-जुले रंगों में लिपटा / ठिठका खड़ा हूं उल्टा सुल्टा / जिधर से शुरू करूं पेट बीच में पड़ेगा ..../ मैं लांघ जाना चाहता हूं पेट तक सीमित भाषा / सिर्फ पेट हो रहना या सिर / दोनों ओछे पड़ते हैं चलने के लिए .....' (पृ० 11)

'चलते जाने' की अनिवार्यता से आज के कवि का नया सौन्दर्य शास्त्र प्रारम्भ होता है। वह छायावादियों या नयी-कविता-वादियों या रस-सिद्धांतियों की पलायन उन्मुख प्रवृत्तियों से नाता तोड़ता है और यथार्थोन्मुख होता है। कवि बलदेव वंशी इन शब्दों में अपना कविता-शास्त्र प्रस्तुत करते हैं :

'आज सौन्दर्यवादी होना / समयवादी होने से कम साबित नहीं हो रहा/ अन्यथा वियतनाम या चेकोस्लोवाकिया या भारत क्या किन्हीं पेड़ों के नाम हैं ?' (पृ० 38)

पेड़ यहां रूमानी प्रवृत्तियों का प्रतीक है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रकृति कविता से बहिष्कृत हैं। ऊपर एक उद्धरण में वे स्वयं अपने को 'नग्न पेड़' कह चुके हैं जिसकी 'ऋतु स्थगित पड़ी है' (पृ० 22)। वे अधीरता से वसन्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं :

'उफ, नग्न खड़े पेड़ का दर्द आंखों में लिए / कब तक करनी होगी प्रतीक्षा / इस स्थगित वसन्त की।' (पृ० 20)

बलदेव वंशी में प्रकृति के प्रति एक नयी संवेदनशीलता है जिसकी चित्रात्मकता से पिछली कविता-धाराएं सहज ईर्ष्या कर सकती हैं :

'उड़-उड़ कर पुनः/बैठ जाती है हवा/पेड़ पर/और वह फुरहरी झाड/ हिलने लगता है/एक लय में/----ओस हमेशा खीझ की तरह टपकती है : दहलती।' ओस का खीझ की तरह टपकना आज का खीझा हुआ कवि ही लिख सकता है। इस तरह के अनेक नये और अछूते बिम्ब बलदेव वंशी की कविता में मिलते हैं। स्पष्ट ही, नये बिम्ब समसामयिक यथार्थ से और उसके प्रति नयी दृष्टि से नये मुहावरे मिलते हैं। उदाहरण के लिए, विद्रोह की मुद्रा से 'हाथ धोने' और 'पूजा' जैसे पुराने मुहावरों को नया अर्थ मिला है :

'इन मैल-भरी भरती रेखाओं में / तुम्हारा भविष्य कहीं खो गया है। / तुम हाथ क्यों नहीं धोते।' (पृ० 89)

'यह पूजा का समय है / मेरे राम को रास्ता दो / ऐ अंधे सागर / और याद रखो / धनुष पर चढ़ा तीर / वापस नहीं लौटता ।' (पृ० 94)

'दर्शक दीर्घा से' कवि बलदेव वंशी का पहला कविता-संग्रह है, किन्तु उससे एक नये समर्थ कवि के उदय का परिचय प्राप्त होता है, जिसने अपने समय में खड़े होते हुए भी समसामयिक कविता-रूढ़ियों और प्रचलित फैशनों से मुक्त अपना विशिष्ट कवि-व्यक्तित्व निर्मित करने में सफलता प्राप्त की है ।

*दीमक की भाषा

—केवल गोस्वामी

पिछला दशक कविता के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। पिछला दशक कविता के लिए महत्वपूर्ण रहा है। बात कहीं से भी शुरू की जा सकती है किन्तु जितना काव्य साहित्य (पुस्तकों को छोड़ कर) पिछले दशक में प्रकाशित हुआ या उस पर वाद-विवाद या चर्चा हुई यह अपने आप में एक बहुत बड़ा निर्णय है। 'आज की कविता विद्रोह की कविता है।' यह वाक्य प्राय: हर विद्रोही पत्रिका या कवि के मुंह पर चिपका नजर आता है। यों साठोत्तरी, पैंसठोत्तरी, अकविता और इससे मिलते-जुलते विशेषणों, सम्बोधनों वाली कविताओं में स्वर तीखा जरूर हुआ है। यह बात न्यूनाधिक विभिन्न स्तरों पर विभिन्न लोगों ने स्वीकार की है कि आज की कविता यथार्थ के ज्यादा निकट आई है – भाषा भाव दोनों क्षेत्रों में उसने क्रमश: अपने को कच्ची भावुकता और स्वप्नदर्शिता से मुक्त किया है। नए कवियों ने क्रमश: जीवन के प्रति अधिक वैज्ञानिक व यथार्थपरक दृष्टि अपनाई है। इसका श्लाघनीय प्रभाव इस रूप में पड़ा है कि हमारी स्थिर साहित्यिक पदावली आभिजात्य से निकल कर जनभाषा के क्षेत्र में आ खड़ी हुई

---

* लेखक : श्याम विमल; प्रकाशक : स्वयम् प्रकाशन, 1-बी/22 लाजपतनगर, नई दिल्ली-24; मूल्य : पांच रुपए।

है। डॉ० देवराज जैसे क्लासिकल समालोचन के पक्षधरों ने इस बात को एक परिवर्तित और विशाल कालक्रम के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया है।

इसी कुहासे और शोर से श्याम विमल का आस्थावान स्वर उभर कर हमारे सामने आता है। जहां लेखकों की भीड़ अमानुषिक परम्परा की पक्षधर बनकर स्वतन्त्र अभिव्यक्ति एवं मुक्त जीवन की आड़ में शोषण एवं उत्पीड़न का गुणगान करने में लगी रही, वहीं श्याम विमल ने अभिजातवर्गीय संकुचित दायरे के कुहासे से निकल कर हमें मामूली आदमी की जिन्दगी, उसकी भूख, उसकी घुटन, उसकी यातना, निराशा और उत्पीड़न को अभिव्यक्ति दी है। 'अर्थ शून्यता की ओर बढ़ी जाती आदमी की कविता का आखिरी पैरा मैं अपनी स्याही से छींट कर / मृत्युदण्ड पर फहराता हूं /' इस अनुभूति को नए तथा ताजा मुहावरे के साथ अभिव्यक्त करने की भरसक कोशिश की गई है। श्याम विमल के पास भाषा है, पकड़ है, और उस पकड़ में अनेकानेक रंग और बिम्ब आते हैं। इन्हीं के माध्यम से हम तक कथ्य या विषय पहुंचता है। 'जानवर' कविता में कवि ने क्लर्क जीवन की एकरसता और असहायता को सशक्त ढंग से सम्प्रेषित किया है, इतनी पैनी और तीखी अभिव्यक्ति उसकी अन्य बहुत कम कविताओं में हुई है। किन्तु इस प्रक्रिया को दोहराने का मोह उसकी विलक्षणता को कम असर कर देता है और फिल्मी ढर्रे की तरह वह इस कामयाब फार्मूले का इस्तेमाल कई कविताओं में करता है जैसे 'एक और जानवर', 'पालतू', 'उसने कहा था' आदि आदि में।

कवि जब इस आजमाए हुए नुस्खे से थोड़ा हट कर चलता है तो कविता पुनः जीवित और प्रभावशाली हो उठती है यद्यपि रिआज़ इन कविताओं में भी है किन्तु बेहतरी की ओर है। 'शिलालेख', 'वे लोग क्या करें', 'खत्म नहीं हुआ हूं', 'गल्त धातु', 'समय छाप चेहरा', 'जानवर', 'त्रिकोण', 'कथनीय' कुछ सुन्दर कविताओं के उदाहरण हैं। भाषा और लिपि के झगड़े में जहां देश में कई कुकृत्य हुए, वहां श्याम विमल की दृष्टि बड़े पैने ढंग से इस खोखलेपन को नंगा करती है। 'मेरी जबान पर शासन करता है विधेयक; करे / मैं अपनी भाषा बिस्तर पर छोड़ आया हूं /' इसी प्रकार युद्ध और अहिंसा पर गहरे व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है। वर्ग संघर्ष से उत्पन्न विद्रोह श्याम विमल की कविता के आदमी की विशेषता है 'उनके पास मोटरकार है / उन्हें नहीं मालूम कि मार दिए जाने वाले / आदमी के भीतर एक और आदमी जन्मता है / इसकी सिर्फ उंगलियां होती हैं और उंगलियों के इरादे /' इस तरह साफ इरादों वाली कविताएं यदि श्याम विमल अपने परिवेश को विस्तृत कर निभा लें तो निश्चय ही आज की पीढ़ी का दुर्भाग्य संवर सकता है।

लेकिन उनका मुख्य स्वर शिकायत का है। उपर्युक्त उदाहरणों से कवि की तनावमुद्रा तो सामने आती है किन्तु उसकी ज्यादा अहमियत रोमांटिक अन्दाज में ही है। कई एक कविताओं में तो आज के प्रायः सभी चालू विषयों को अपनाने की कोशिश की गई है। सतही प्रगतिवादी फार्मूला या नारा कहीं-कहीं अजीब ऊब पैदा करता है। बिम्ब विस्तार अथवा आयोजन में जहां ताजगी और नएपन का कवि का दावा है वहां चमत्कार की सीमा तक जब वह पहुंच जाता है तब पाठक की धैर्य परीक्षा जरूर होती है। तृतीय पुरुष 'वह' की विभिन्न हरकतों की सपाट अभिव्यक्ति की बोरियत का प्रभाव अन्य कविताओं पर भी पड़ता है। नए कवि के लिए जहां कुहासे भरे निरर्थक जंगल से निकलना जरूरी है, वहां समसामयिक और पूर्व लिखित साहित्य से परिचय प्राप्त करके चलना भी। क्या लिखा जा चुका है ? क्या लिखना है, श्याम विमल किंचित् इस ओर से लापरवाह रहे हैं। यही कारण है कि उनकी कुछ कविताएं अन्य कविताओं की कमजोर छायानुकृतियां-सी लगती हैं। मसलन 'दीमक की भाषा' शीर्षक कविता सपाट बयानी के कारण अखबारी व्यंग्य होकर रह गई है। इसका कारण दुःख और निजी खीझ से तटस्थ न हो पाना हो सकता है। इसमें न तो निराला की 'सरोज स्मृति' जैसा दर्द उभर सका है न शैली में साहिर जैसा प्रभाव।

सम्भव है किसी अन्य कवि के संग्रह में फैहरिस्तबाजी पर कवि भरपूर व्यंग्य करे, या छठी इन्द्रिय खुलजाने पर समवेत कहकहों में खुलकर हंस सके, किन्तु इस दीन स्थिति से वह स्वयं भी मुक्त नहीं है। 'प्रतिक्रुद्ध' कविता से उदाहरण पेश है, 'साइकल पैदल पर/ स्कूटर टांगे पर/ आटो रिक्शा स्कूटर पर/ बस कार पर/ ट्रक बस पर/ पुलिस की व्हिसल इन सब पर खफा हो रही है / सब खफा हो रहे हैं/' फैहरिस्त और भी लम्बी हो सकती थी किन्तु कागज़ और छपाई की महंगाई के कारण 'स्वयम् प्रकाशन' से शायद यह सम्भव नहीं हुआ। और सड़क पर बज रहे हार्न की ध्वनियों के प्रतीक अगर आप की समझ में नहीं आ रहे या गलत आ रहे हैं तो आप ये पंक्तियां पढ़ लें। 'पीं-पीं - पां-पां - पों-पों/ व्ही व्ही/ सब हैं क्रोध की प्रतीक ध्वनियां/दुत्कारती धिक्कारती/कुचलती निगलती /एक दूसरे को /' और भी कई मज़ेदार उदाहरण हो सकते हैं जहां कवि परिभाषाओं या सूक्तियों के चक्कर में फंस जाता है। वहीं कविता का प्रभाव उससे दूर छिटक जाता है, जैसे 'मर्जी' कविता में कवि को अपने सीमित परिवेश से ऊब होती है वह खिन्न हो उठता है 'वे जो मुझ से सम्पर्क लेना चाहते हैं/ सुनें/ मैं कहता हूं सम्बन्ध आज ब्लेड के रैपर हो गए हैं/ या मेरा जीवन ब्रेक में गिरवी रखा हुआ है/ मैं पराई इच्छा के लिए क्यों उठूं/ मैं आज बाहर नहीं जाऊंगा।'

अब कवि के कहने से तो आप को मान ही लेना चाहिए कि सम्बन्ध क्या से क्या हो गए हैं। उल्टे टाइप लगा कर एक शब्द कागज़ के इस कोने में दूसरा उस कोने में बीच में डेश या खालीपन छोड़ कर कवि क्या अर्थ छोड़ता है मालूम नहीं। एक-एक अक्षर अलग-अलग या नीचे-ऊपर दाएं-बाएं लिख कर कवि शैली के चमत्कार की धाक जमाना चाहता है। यहां अगर आप मात्र मुस्करा कर पृष्ठ उल्ट दें तो कोई विशेष हानि नहीं होगी। हां, अलबत्ता कवि आप पर आधुनिक कविता की पकड़ और सूझबूझ के अभाव का इल्ज़ाम लगा सकता है। आप मुंह-मुंह में च्यूंइंगम चबाने के बदमज़ा स्वाद और प्रक्रिया से बच जाएंगे।

कुल मिला कर श्याम विमल की 'दीमक की भाषा' में जांघों के जंगल से आदमी की सही तस्वीर की ओर मुड़ना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। पश्चिम के विघटित होते सांस्कृतिक परिवेश का अन्धानुकरण उनकी आधुनिकता नहीं है, पिछले दशक के जिन कुछ कवियों में आदमी को उसके सही रूप और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है, श्याम विमल उनमें से एक हस्ताक्षर हैं।

*समीप.....और समीप

– बलदेव वंशी

पिछले दस वर्षों से हिन्दी कविता में अत्यधिक तेजी से जो परिवर्तन हुए हैं, वे परिस्थितिजन्य तो हैं ही साथ ही उन्हें नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। इन वर्षों की कविता ने उन सारे प्रतिमानों को झटककर अलग फैंक दिया है, जो दम घोंटू साबित हो रहे थे। यों पुराने प्रतिमानों से चिपके कवि भी अशेष नहीं हुए और अपने तथा अपनी कविता के जीवित रहने के लिए बे-तरह छटपटाते रहे हैं। वर्तमान की विसंगत, अवमूल्यन ग्रस्त, भ्रममुक्त, क्रूर एवं स्वार्थ-पूर्ण स्थितियों में कविता एक ऐसी विधा रह गयी है, जिसके निरंतर अधिक कटु, तिक्त और हल्की होते जाने का ही भय है। ऐसी स्थितियों में कोई भी व्यक्ति अपने तथा अपने परिवेश में दूर......और दूर ही होता जा सकता है। इनके दुश्चक्र में फंसा व्यक्ति मुक्ति पाने के लिये तड़प भर सकता है, निज़ात नहीं पा सकता। 'समीप – और समीप' के माध्यम से कवि अपनी तथा युगीन मानसिकता की इस छटपटाहट को व्यक्त करने का प्रयास करता जान पड़ता है। यह वह बिंदु है जहां से आगे के लिये, यानी मुक्ति की सहज प्रक्रिया की ओर प्रस्थान किया जा सकता है।

---

* लेखक : रमेश कौशिक; प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०, 2/35, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6; मूल्य: 5 रुपए।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कविताओं में युगीन परिस्थितियों की भयावहता और क्रूरता उभार कर प्रस्तुत नहीं की गई। उनकी हल्की-हल्की आभाएं हैं। लगता है कवि जान बूझ कर हमारी उस दबावपूर्ण कार्य-कारण शृंखला को उद्घाटित नहीं करना चाहता, मात्र संकेत भर कर देना पर्याप्त समझता है। लगभग सभी कविताएं स्थितियों की अलग पहचान न होकर 'आज के आदमी की स्थिति को स्वर देने की कोशिश है।'

आज कविता में जो एक-रंगता दीखती है, उसमें एक प्रकार का जो वैक्यूम उत्पन्न हो गया है, उसके कई कारण हैं, जिनमें मुख्य - अपने परिवेश की सच्ची पहचान से कट जाना और एक खास चाल की काव्य-संरचना की ओर अधिक झुकाव का होना है। कहना न होगा कि रमेश कौशिक की कविताएं इस चलन के चंगुल में नहीं फंसी इसलिए हल्की-फुल्की, सरल और 'भावाकुलता से क्रमशः यथार्थ के सम्पर्क और भ्रमभंग की ओर बढ़ती हुई' (हैं)। इस सम्बन्ध में पुस्तक की भूमिका में डॉ० बच्चन (हरिवंश राय) के शब्दों को उद्धृत करना उपयुक्त होगा, 'सबसे बड़ी और मौलिक बात जो उनकी रचनाओं में मुझे मिली वह यह है कि युग की अनास्था, कुंठा, निराशा, उलझन को जीने में उन्होंने रुग्ण रस लेना आरम्भ नहीं किया।' उनकी एक कविता का उद्धरण भी इस बात की पुष्टि के लिए प्रस्तुत है :-

'सृजन-प्रक्रिया में
मैं नहीं मरा हूं
किसी बहेलिये के बाण से'

यों रमेश कौशिक जीवित और स्वस्थ मानसिकता के कवि के रूप में आये हैं। भले ही वह स्वस्थता आज काव्य-दृष्टि का पिछड़ापन माना जाता हो, और पुरानेपन के निकट कहीं धकेल देने वाला जाना जाता हो। किन्तु इतना सत्य है कि रमेश कौशिक किसी नयेपन की ओढ़े जाने वाली लाचारी से बरी हैं। इतना क्या कम है ?

उनके संग्रह में बहुत-सी अच्छी काव्य-पंक्तियां मिल जायेंगी, जो कलात्मक आग्रहों को पूरा करती हैं और अनुभूति प्रवणता को प्रकट करती हुई आश्वस्त करती हैं। उनसे एक ऐसा कवि उभरता है 'जो आज की बंटी हुई जिन्दगी में निरन्तर अपने को अन-पहचाना और अकेला महसूस करता

है, लेकिन आगे बढ़कर आदमी की तकलीफ में हिस्सा लेता है, इसलिये कहीं उसका स्वर आहत भावुक व्यक्ति का है, तो कहीं तल्ख़ उपहास का।' एक उद्धरण लें :-

'क्या बुरा है
यदि ऐसे ही प्राणों को छला जाए
यों ही सहज, सरल
जीवन क्रम चलता चला जाए।'

वर्ग भेद में जकड़े वर्तमान समाज में कवि की अपनी धारणाएं भी स्थान-स्थान पर व्यक्त हुई हैं। ऊंचे वर्ग की निर्बाध जिन्दगी और आदमियत की मृत्यु के प्रति कवि की अपनी नापसन्दगी इन पक्तियों में देखी जा सकती है :-

'मैं उस ऊंचाई का क्या करूं
जहां पहुंच कर फेफड़ों को हवा भी नहीं मिलती
एक अजीब-सी तिलमिलाहट महसूस होती है।'

कवि विशेष अप्रिय स्थितियों को नकारता हुआ, उन पर व्यंग करता हुआ, युगीन विडम्बना पर प्रहार करता, देशीय चेतना से भी गहरा जुड़ा है और एक विस्तृत युग सत्य से भी :-

'आज दुनिया
हमें पेट की आंखों से देख रही है।'

ये पंक्तियां भारतीय परिप्रेक्ष्य में आध्यात्म मूल्यों को महत्ता देने की उसी चेतन मानसिकता तक ले जाती हैं, जिसकी ओर डॉ० बच्चन ने ऊपर के उद्धरण में संकेत किया है। वैसे भी यह काव्य संग्रह 'कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त को' समर्पित है, इससे भी कवि के पुरातन प्रेम की हल्की-सी झलक मिल जाती है। संग्रह की अन्य अच्छी कविताएं हैं :- कोणार्क, फीनिक्स, मेरा युग : एक परिभाषा, यमुना, समझौता।

*सबहिं नचावत राम गोसाईं

—रणवीर रांप्रा

उपन्यास के नाम के अनुरूप इसके कथानक से ही नहीं, पात्रों के चरित्र विकास से भी यही ध्वनित होता है कि मनुष्य के अपने वश में कुछ नहीं, वह किसी दैवी शक्ति के हाथ का खिलौना है। भगवतीचरण वर्मा के प्रसंग में यह कोई नई बात नहीं। अपने पहले के उपन्यासों में भी इन्होंने बार-बार इसी विश्वास को व्यक्त किया है। चित्रलेखा से लेकर उनके नवीनतम उपन्यास 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तक उनकी सब कृतियां उनके नियतिवादी होने की दुहाई देती हैं। एक भेंटवार्ता के दौरान वर्मा जी ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया था : 'बात कुछ आपको अजीब सी लगेगी लेकिन इधर कुछ दिनों से मैं नियतिवादी बन गया हूं।'

'इधर कुछ दिनों से' क्यों, प्रारम्भ से ही वर्मा जी नियतिवादी रहे हैं। चित्रलेखा में उनकी यह धारणा इस रूप में व्यक्त हुई है : 'मनुष्य अपना स्वामी नहीं, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं, वह

---

* लेखक : भगवतीचरण वर्मा; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य : चौदह रुपये।

केवल साधन है।' 'आखिरी दांव' में भी नायिका चमेली के शब्दों में यही धारणा व्यक्त हुई है : 'अस्वस्थ रहा भी कब तक जा सकता है सेठ ! नियति के विधान के खिलाफ कौन लड़ सकता है, कौन लड़ सका है।' आलोच्य उपन्यास में पात्र भी बार-बार यही कहते हैं। अन्तर केवल इतना है कि इस में नियति का स्थान राम ने ले लिया है, भगवान ने ले लिया है। इस उपन्यास के सबसे सशक्त पात्र रामलोचन को भी पाठक जब इसी अन्धविश्वास का शिकार हुआ देखता है तो उसे धक्का लगता है। रामलोचन का कहना है कि 'सब कुछ भगवान की लीला है, आदमी कुछ नहीं करता, भगवान उस से कराते रहते हैं। अच्छाई और बुराई का संघर्ष चल रहा है, लेकिन अन्त में जीत अच्छाई की ही होती है।' इसमें सन्देह नहीं कि इस उपन्यास में जीत अन्ततः अच्छाई की होती है। परन्तु वर्मा जी के सभी उपन्यासों में अच्छाई की जीत हुई हो, ऐसी बात नहीं। 'आखिरी दांव' के नायक और नायिका दोनों पूरी तरह धन के पिशाच के हाथों बिक जाते हैं और वह उन्हें समूचा निगल जाता है।

यह उपन्यास मुख्यतः तीन पात्रों - राधेश्याम, जबरसिंह और राम-लोचन पाण्डे की कहानी है जिसके माध्यम से लेखक ने आज के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तन्त्र पर बड़ी गहरी व्यंग्यात्मक चोट की है। उपन्यास का एक पात्र कवि झंझावात जो तिकड़म भिड़ा कर साम्यवादी नेता के रूप में रूस की यात्रा भी कर आता है (पर जो वास्तव में न कवि है, न साम्यवादी) उपन्यास के मुख्य पात्र रामलोचन से बड़े मार्के की बात कहता है : 'मेरी सब बातें बनावटी थीं। शायद आज की दुनिया ही बनावटी बातों की है। सच बात तुम कह नहीं सकते, क्योंकि सत्य हमेशा टकराता है। घुलने-मिलने की चीज तो बनावट है। तो माई डियर रामलोचन, बनावट ही जिन्दगी है। सत्य तो मौत है।' उपन्यास में दिये हुए उप-शीर्षकों से ध्वनित होता है कि राधेश्याम मुख्यतः बुद्धि द्वारा संचालित है, जबरसिंह भाग्य द्वारा और रामलोचन भावना द्वारा। राधेश्याम बुद्धि के सहारे अनेकानेक तिकड़म भिड़ा कर देश का सबसे बड़ा उद्योगपति बन जाता है। उसकी सभी योज-नाओं के मूल में स्वार्थ रहता है, पर उन्हें वह रूपाकार ऐसा देता है कि उनमें परमार्थ की झलक मिलती है और वह देश-सेवा के नाम पर राजतन्त्र को अपनी योजनाओं में उलझा कर उससे करोड़ों रुपए ऐंठ लेता है। अदालत के पेशकार से लेकर प्रदेश के मुख्यमन्त्री तक सब उसके हाथ में हैं, क्योंकि धन के बल पर उसने हर किसी को खरीद रखा है।

राधेश्याम से सर्वाधिक प्रभावित है गृह मन्त्री जबरसिंह जो पूरी तरह उसके हाथ में बिक चुका है । उपन्यास में जबरसिंह का चरित्र-विकास दिखाते हुए लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भाग्य के सहारे ही उसका सितारा चमका है और वह एक के बाद एक अनुकूल घटनाओं के बल पर डाकू कुल में जन्म लेकर भी सफलता की सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ता हुआ एक दिन प्रदेश का गृह मंत्री बन बैठा और मुख्यमंत्री बनने के स्वप्न देखने लगा। वह अपने चारित्रिक गुणों के आधार पर उन्नत हुआ है, ऐसा इस उपन्यास से ध्वनित नहीं होता । अन्ततः उसकी टक्कर में ताल ठोंक देता है इस उपन्यास का तीसरा पात्र रामलोचन पाण्डे जो भावना-प्रवण प्राणी है । भावना से वशीभूत होकर ही वह प्रदेश के गृह मन्त्री जबरसिंह से भिड़ जाता है - उसी जबरसिंह से जिसने उसे घूरे से उठा कर पुलिस का बड़ा अफसर यानी राजधानी का शहर कोतवाल बना दिया था । जबरसिंह से, जो दूर से रिश्ते में उसका फूफा लगता था, उपकृत होकर भी और मन से उसका कृतज्ञ होते हुए भी रामलोचन भीतर ही भीतर उसकी कुटिलता और स्वार्थान्धता से नफरत करने लगता है । उसे इस बात का बड़ा दुःख है कि राजतन्त्र का इतना महत्वपूर्ण व्यक्ति उद्योगपति राधेश्याम के हाथों चाँदी के कुछ सिक्कों पर बिक चुका है । रामलोचन मानता है कि उद्योगपति के रूप में पनप रहे देश के सबसे बड़े स्मगलर राधेश्याम को जेल में बन्द करवाना उसका परम कर्त्तव्य है । उसे अपने इस कर्त्तव्य को निभाने की प्रेरणा मिलती है, अपनी बुआ धनवन्तकुंवर से जो गृह मन्त्री जबरसिंह की पत्नी है और इस उपन्यास की बहुत ही सशक्त नारी पात्र है। वास्तव में उपन्यास के यही दो ऐसे पात्र हैं जो धन के पिशाच राधेश्याम के दांत खट्टे कर देते हैं और दुनिया में हर किसी को खरीदने का दावा करने वाले इस उद्योगपति को जता देते हैं कि संसार में अभी कुछ लोग ऐसे भी बचे हुए हैं जिन्हें किसी कीमत पर भी कोई खरीद नहीं सकता । रामलोचन राधेश्याम के विरुद्ध सिर-धड़ की बाज़ी लगा देता है और गृह मन्त्री के सम्पूर्ण संरक्षण के बावजूद अन्ततः उसे जेल में बन्द करवाने में सफल हो जाता है, भले ही इसके परिणामस्वरूप उसे इतनी ऊँची पुलिस की नौकरी से हाथ धोना पड़ा । पर वह हिम्मत नहीं हारता और अगले चुनाव में जबरसिंह के विरुद्ध खड़ा होकर उसे पराजित कर देता है ।

इस प्रकार नाटकीय ढंग से इस उपन्यास का अन्त होता है । पर ऐसा तो होना ही था, क्योंकि उपन्यासकार यही मान कर चला है कि सब भगवान की लीला है, मनुष्य के बस में कुछ नहीं, वह चाहे तो क्षण भर में राजा से

रंक और रंक से राजा बना सकता है। उपन्यासकार के विश्वास की बात अलग रही, पर जहां तक कला का सम्बन्ध है चरित्र-विकास की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत कमजोर रह गया है। हां, कहानी कहने का ढंग भगवतीचरण वर्मा का अपना और बेजोड़ है। वह मुख्यतः 'किस्सा गो' हैं और अपने इसी फन के सहारे पाठकों को बाँध लेते हैं। अपने पूर्वाग्रहों की पुष्टि में वर्माजी मुख्य पात्रों की पिछली तीन-चार पीढ़ियों का जो किस्सा ले बैठे हैं उससे उपन्यास में पात्रों का जमघट हो गया है और बहुधा मुख्य पात्र दृष्टि से ओझल होने लगते हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए कई बार तो पाठक भूल ही जाता है कि वह वर्माजी का कोई नया उपन्यास पढ़ रहा है। उसे लगता है कि वह उन के ख्याति-प्राप्त उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' का ही संशोधित संस्करण पढ़ रहा है।

*भूख

- रामकिशोर शर्मा

'भूख' श्री अमृतलाल नागर का यथार्थवादी उपन्यास है। इसकी कथावस्तु 1943 के बंग-दुर्भिक्ष पर आधारित है। इसका प्रथम संस्करण 1946 में प्रकाशित हुआ था। बंगाल के भयानक अकाल से संबंधित होने के कारण तब लेखक ने इसका नाम 'महाकाल' रखा था। बाद में 1970 में जब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया गया तो समालोचकों के सुझाव पर उपन्यास का नाम 'भूख' रख दिया गया। वस्तुत: उपन्यास का केन्द्र-बिंदु भूख की भयानकता चित्रित करना ही है।

सन् 1943 में बंगाल के भयावह अकाल के रोमांचक दृश्य लेखक ने कलकत्ते जाकर अपनी आंखों से देखे थे अत: उनके चित्रण में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। उपन्यास को आद्योपांत पढ़कर 'भूख' की भयानक विभीषिका साकार हो उठती है। उपन्यास का सारा घटना-क्रम संस्कृत की इस पंक्ति - 'बुभुक्षित: किं न करोति पापम्' अथवा 'बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्' का ही साकार रूप प्रस्तुत करता है। भूख की ज्वाला में मनुष्य की सारी धार्मिक मान्यताएं विगलित हो जाती हैं। उसकी आस्तिकता और उसके अटूट विश्वासों का आधार हिल जाता है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का सारा विवेक भूख की

---

*लेखक : अमृतलाल नागर; प्रकाशक : राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6; मूल्य : 7 रुपए।

दुःसह धारा में बह जाता है। बंगाल के ऐतिहासिक दुर्भिक्ष-काल में 'भूख' का जो वीभत्स तांडव हुआ उसी के रोमांचक चित्र उपन्यास की कथा-वस्तु के मूलाधार हैं।

पांचू गोपाल मुखर्जी मोहनपुर गांव का एक प्रबुद्ध नागरिक है जिसने अपने शुभ संकल्प और दृढ़ अध्यवसाय से गांव में एक ऐंग्लो-बंगाली स्कूल खोला है। वह स्वयं उस स्कूल का हैडमास्टर है। सैकड़ों बच्चों से भरे हुए अपने स्कूल को देखकर उसे अपार संतोष और लोकोत्तर आनंद की प्राप्ति होती है। किंतु उन्हीं दिनों समस्त बंगाल में अकाल की काली छाया फैलने लगती है। अकाल का हेतु प्राकृतिक प्रकोप उतना नहीं था जितना राजनीतिक दुश्चक्र। दूसरा विश्व महायुद्ध चल रहा था। व्यापारी वर्ग ने चावल आदि सामग्री को भंडारों में छिपा लिया था। मजदूर वर्ग भूखों मरने लगा। दूसरी ओर गांव का जमींदार दयालचंद और मोनाई व्यापारी इस अवसर का लाभ उठाने लगे। दो मुट्ठी चावलों के लिए भीषण प्रतियोगिता चल पड़ी। गहने और कपड़े बेचे जाने लगे। घरों की सारी संपत्ति धीरे-धीरे मोनाई की दुकान में इकट्ठी होने लगी। बच्चों का स्कूल जाना बंद होने लगा। अनेक बच्चे भूख की ज्वाला में परलोकवासी हो गए। पांचू हैडमास्टर का स्कूल खाली होने लगा। मासूम बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का जो स्वप्न वह देखा करता था वह टूटने लगा। एक दिन स्कूल में एक भी बच्चा नहीं आया। हैडमास्टर अकेला स्कूल के सुनसान फर्नीचर को देखकर विचारों में खोता चला गया। उसने देखा कि स्कूल की कुर्सी-मेजों को दीमकें चाट रही हैं। उसे निश्चय हो गया कि अब उसका स्कूल बंद होकर रहेगा। आज वह चार दिन से भूखा है। उसके घर बूढ़े मां-बाप, भाई-बहिन और पत्नी सभी भूखे बैठे हैं। पांचू का परिवार कुलीनता की चादर ओढ़कर किसी को सुनाना भी नहीं चाहता कि उसके घर में चावल नहीं है। आबरूदार परिवार इसी मिथ्या अभिमान में घरों में छिपे हुए भूखे बैठे रहते हैं।

स्कूल से लौटते हुए वह दयाल जमींदार से चावल लेने गया। रास्ते में निम्न वर्ग के लोगों की बुरी दशा देखी। किसी का बच्चा भूख से तड़प कर अंतिम सांस ले रहा है। कहीं नर-कंकाल दो मुट्ठी चावल के लिए छीना-झपटी कर रहे हैं। सारा गांव खंडहर-सा बन चुका है। दयाल जमींदार से थोड़े चावल लेकर पांचू घर की ओर चलता है। रास्ते में मोनाई की दुकान पर नर-कंकालों की भीड़ लगी है। सभी अपने घर से कपड़े, बर्तन, लकड़ी और दूसरी संपत्ति को बेचकर मोनाई से चावल लेने आए हैं। भीड़ में सभी को अपनी-अपनी पड़ी है। छीना-झपटी में बूढ़ा मुनीर बढ़ई नीचे गिर जाता है। भीड़ उसे बुरी तरह

कुचल देती है। ठठरियों का ढांचा मुनीर वहीं दम तोड़ देता है। पांचू यह सारा दृश्य देखता है। उसे मुनीर के प्रति सहानुभूति हो जाती है। वह उसकी लाश उठवाकर उसे दफनाने ले जाता है। नूरुद्दीन और अज़ीम की दलीलों के सामने परास्त होकर पांचू अपने सब चावल मुनीर की पत्नी और बच्चों को बांट देता है। शाम हो गई है। खाली हाथ घर कैसे लौटे ? उसे युक्ति सूझती है। वह मोनाई की दुकान पर जाता है और स्कूल का फर्नीचर बेचकर थोड़े चावल लेकर घर आता है। अपने परिश्रम से उसने जिस स्कूल को पाला-पोसा था उसी का फर्नीचर बेचकर वह परिवार की भूख शांत करने के लिए विवश हो जाता है।

भूख की दुर्दान्त तांडव-लीला बढ़ती जा रही है। स्त्रियों के कपड़े बेच दिए गए हैं। घरों के छप्परों की लकड़ियां तक बिक गईं। स्त्रियां घरों में नंगी बैठी हैं। लोग गांव छोड़ कर भाग रहे हैं। मरने वालों की संख्या बढ़ रही है। वृक्षों के पत्ते लोगों की जठराग्नि में आहुत हो चुके। दो मुट्ठी चावलों के लिए स्त्रियां बेची जाने लगीं। मोनाई ने एक बार प्रेत भोज किया। कई दिनों के भूखे ब्राह्मणों ने इतना खाया कि पेट में दर्द हो गया। उलटी होने लगी। भूखे लोग उलटियों को ही चाट रहे थे। भूख की विकरालता यहां तक बढ़ी कि लोगों ने बच्चों को चूल्हे में भूनना प्रारंभ कर दिया। पुजारी ब्राह्मण ने अपने हाथ से गोहत्या कर दी। अपने बच्चों को जहर खिला दिया। पांचू के भाई ने दो मुट्ठी चावलों में अपनी पत्नी और बहिन को अनाथशाला में भेज दिया।

दूसरी ओर दयाल जमींदार अपने शीशमहल में सुरा, सुंदरी और संगीत की त्रिवेणी बहा रहा था। मजदूरों के रक्त को चूसकर मिथ्याभिमान में उन्मत्त होकर वह चिकने घड़े की तरह तटस्थ भाव से विलास की दुनिया में खोया हुआ था। पांचू के भाई-बहिन एक-एक करके भूख की भेंट होते गए। उसे आत्मग्लानि हुई और रात में वह घर-बार छोड़कर निकल पड़ा। एक खंडहर में बच्चे की आवाज सुनाई दी। पांचू ने देखा एक स्त्री ने नवजात शिशु को जन्म देकर संसार से विदा ले ली है। बालक मृतक माता के पैरों पर रो रहा था। पांचू को दया आई। उसका संकल्प बदला। बच्चे की जीवन-रक्षा के उद्देश्य से वह उसे लेकर घर आया। इसी बीच उसके बूढ़े मां-बाप मर चुके थे। पांचू और उसकी पत्नी ने कठोर श्रम करके भूख से संघर्ष करने का संकल्प किया। यहां आकर उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक को पूरी सफलता मिली है। पांचू कुलीन घर का सुसंस्कृत हैडमास्टर है। मानवता के प्रति उसके हृदय में पूरी संवेदना है। वह आदर्शवादी युवक है किंतु भूख की दुर्दमनीय ज्वाला के सामने उसका आदर्श चूर-चूर हो जाता है। वह स्कूल के फर्नीचर को बेचकर अपने परिवार की भूख शांत करता है। मोनाई वणिक् वर्ग का सच्चा प्रतिनिधि है। पैसे के सामने वह सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। स्त्रियों को बेचने का धंधा शुरू कर देता है। उसे आत्म-प्रतिष्ठा की कोई चिंता नहीं है। दयाल जमींदार अपने परम्परागत मिथ्याभिमान में खोया रहता है। ब्रिटिश अधिकारियों की दावतों में उसकी पूंजी पानी की तरह बहाई जाती है। छोटे-छोटे पात्रों का चरित्र-चित्रण भी बड़ा स्वाभाविक तथा रोचक है।

कई स्थानों पर सामाजिक कुरीतियों पर बड़े तीखे व्यंग्य किए गए हैं। मोनाई को प्रेतभोज देना पड़ता है। आत्म-प्रतिष्ठा के मद में कुलीन परिवार भूखे मरते रहते हैं। दयाल जमींदार अपने पड़ोसी नवाब से प्रतियोगिता करके शीशमहल बनवाता है। उसे यही धुन सवार है कि कोई उससे आगे न बढ़ जाए।

उपन्यास की भाषा-शैली में सर्वत्र प्रवाह है। मोनाई अपनी ग्राम्य बोली में बात करता है। पांचू के अंतर्द्वन्द्वों के चित्रण में भाषा में दार्शनिकता आ गई है। भूख के भयावह दृश्यों के चित्रांकन में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। सबसे बड़ी बात यह है कि उपन्यास का वर्णन कहीं भी अतिरंजित दिखाई नहीं देता। सरलता और स्वाभाविकता की सर्वत्र रक्षा हुई है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'भूख' एक उत्तम कोटि का यथार्थ-वादी उपन्यास है जिसमें जीवन की सत्यता बड़े साहित्यिक रूप में मुखरित हुई है। 'भूख' की भयावह विकरालता के मार्मिक चित्रांकन में श्री नागर पूरी तरह सफल हुए हैं।

*धूपछाँहीं रंग

—गोपाल राय

गिरीश अस्थाना कृत 'धूपछांही' रंग के सम्बन्ध में चाहे और कोई बड़ा दावा भले न किया जा सके, इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हिन्दी में सन् 70 की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। युद्ध और दफ्तर की जिन्दगी का इतने बड़े पैमाने पर चित्रण इसके पहले हिन्दी में नहीं हुआ है। अनुभव की प्रामाणिकता, आस-पास की चीजों के प्रति गहरी संवेदना, वस्तुओं को उनके सूक्ष्म ब्योरों के साथ व्यक्त कर देने की क्षमता, कथन की भंगिमा और सारे उपन्यास पर व्याप्त एक सहजता और मासूमियत का अन्दाज, यह सब मिलकर पाठक को एक सुखद अनुभूति प्रदान करते हैं। बृहदाकार उपन्यास पढ़ना एक सुखद व्यापार है, जिन कुछ उपन्यासों से यह बात सिद्ध होती है, उनमें 'धूप-छांही रंग' की भी गणना होगी।

सारे उपन्यास में मुझे एक भी ऐसा स्थान नहीं मिला है जिसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध जान पड़े। मुख्य रूप से उपन्यास में समाज के दो वर्गों का चित्रण हुआ

*लेखक: गिरीश अस्थाना; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6; मूल्य: 35.00

है । प्रथम खंड में द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी और इटली की सेनाओं से लड़ती हुई भारतीय फौज का चित्रण है । इस सिलसिले में उपन्यासकार ने सुकान्त के माध्यम से, जो इस युद्ध का चश्मदीद गवाह है, आरम्भ की तैयारी (भरती) से लेकर युद्ध के अन्तिम परिणाम तक का चित्रण किया है । यह बात माननी ही होगी कि इतने बड़े पैमाने पर युद्ध का इतना यथार्थ और जीवन्त चित्रण हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ है । यदि 'गोदान' कृषक जीवन के चित्रण के लिए, 'शेखर : एक जीवनी' बाल और किशोर भावनाओं के विश्लेषण के लिए और 'झूठा-सच' हिन्दू-मुस्लिम दंगे के चित्रण के लिए याद किया जाएगा तो 'धूपछांही रंग' भी अपने युद्ध-वर्णन के लिए अविस्मरणीय रहेगा । युद्धविषयक सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्योरों में भी कहीं कोई त्रुटि नहीं दीख पड़ती। सबसे बड़ी बात यह है कि इस युद्ध-वर्णन में मानवीय पहलू शुरू से अन्त तक महत्वपूर्ण बना रहा है । इसे पढ़ते समय सचमुच ही 'युद्ध और शान्ति' के वर्णनों की याद हो आती है । अनुभव की यह प्रामाणिकता युद्ध में सक्रिय रूप से भाग लिये बिना सम्भव नहीं थी । तोलस्तोय की भांति गिरीश अस्थाना भी युद्ध में शामिल हुए थे, तभी उनके वर्णनों में इतनी प्रामाणिकता और सजीवता आ सकी है । मैं यह कहने की जुर्रत नहीं करता कि अस्थाना में तोलस्तोय की प्रतिभा है - वस्तुतः वह नहीं है - पर उनका युद्ध-वर्णन संसार के कतिपय प्रसिद्ध उपन्यासकारों, मसलन तोलस्तोय और हेमिंग्वे के आस-पास ही रखा जा सकता है ।

उपन्यास के दूसरे खंड में उद्योगपतियों के समाज का चित्रण है और यह देख कर आश्चर्य होता है कि जो उपन्यासकार जिस कलम से महायुद्ध के ब्योरों का इतना सजीव वर्णन करता है, उसी कलम से उतनी ही प्रामाणिकता और सूक्ष्मता से वह उद्योगपतियों के आपसी दांवपेच, उठापटक, तिकड़म और भ्रष्टाचार का भी चित्रण करता है । एक बार फिर कहना पड़ता है कि हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में 'नविनिप्रम' जैसे व्यावसायिक प्रतिष्ठान तथा उद्योग-पतियों के जीवन का ऐसा चित्रण नहीं मिल सकता । यह सारी कहानी इतनी जायकेदार है कि इसे बीच में छोड़ने को जी नहीं चाहता । मैं तो समझता हूं कि केवल इतना ही लेखक के प्रति पाठकों के कृतज्ञ होने के लिए पर्याप्त है । ताराशंकर वंद्योपाध्याय और विमल मित्र की पुस्तकें पठनीयता के गुण के कारण ही हिन्दी पाठकों में लोकप्रियता प्राप्त करने में समर्थ हुई हैं। गिरीश अस्थाना को कम से कम इतना श्रेय तो देना ही पड़ेगा कि उन्होंने हिन्दी पाठकों को एक अच्छी कहानी पढ़ने को दी है ।

इन दोनों जीवन खंडों को जोड़ता है सुकान्त, जो एक चित्रकार है और आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग का युवक है। उसके मध्यवर्गीय परिवेश का, रेलवे ऑफिस में काम करने वाले पिता और आसपास की जिन्दगी का, उसके अपने ही घर के घुटनपूर्ण वातावरण का और फिर द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न सरगर्मी का उपन्यास में जीवन्त चित्रण हुआ है। अपने घर के विषाक्त वातावरण से ऊबकर तथा पेंटिंग का डिप्लोमा प्राप्त करने के बावजूद उससे जीविका उपार्जन की सम्भावना न देख सुकान्त फौज में भर्ती हो जाता है। इसके बाद शुरू होती है उसकी फौज की जिन्दगी, जिसका विवरण लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। युद्ध की समाप्ति पर वह छंटनी का शिकार होता है, पिता की प्रेरणा से ब्याह करता है और दिल्ली में पुनः पेंटिंग करना शुरू करता है। इस बीच वह अभाव की जिन्दगी बसर करता है। इसका उपन्यास में प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। उसी बीच उसकी भेंट कलकत्ते की व्यावसायिक संस्था 'नविनिप्रम' के मैनेजर जौहरी से होती है जो उसे कलकत्ता ले जाते हैं और फिर लगभग तीन सौ पृष्ठों में कलकत्ता महानगरी के पूंजीपति-उद्योगपति समाज का चित्र सामने आता है।

यह उपन्यास यदि कहीं कमजोर है तो इस मानी में कि अपने भारी भरकम आकार के बावजूद यह भारतीय जीवन का महाकाव्य नहीं बन पाया है। जिन दो जीवनखंडों का व्यापक पैमाने पर चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है, वे भारतीय जीवन के महासमुद्र के किनारे के द्वीप मात्र हैं। यद्यपि उपन्यासकार ने महायुद्ध से उत्पन्न आरम्भिक उत्तेजना और युद्ध की समाप्ति के बाद समकालीन जिन्दगी पर उसके भयंकर दुष्प्रभाव का भी चित्रण किया है, पर वह अनुपात में बहुत कम है। उपन्यासकार की वृत्ति महायुद्ध के चित्रण में जितनी रमी है – और उसमें उसे सफलता भी मिली है – उतनी समसामयिक जिन्दगी पर उसके प्रभावों के अंकन में नहीं। महायुद्ध का चित्रण प्रामाणिक और पठनीय जरूर है पर वह आज के मध्यवर्गीय उपन्यास पाठक और आलोचक की जिन्दगी का अंग नहीं है। इसी प्रकार कलकत्ते के उद्योगपति-समाज की कहानी, कहानी ही अधिक है, मध्यवर्गीय जिन्दगी के सैलाव से उसका दूर का ही सम्बन्ध है। यही कारण है कि उपन्यास अनुभव की प्रामाणिकता, किस्सा-गोई की कला और सशक्त भाषा के बावजूद जैसे कहीं निराश करता हुआ-सा प्रतीत होता है।

इस व्यापक पैमाने पर लिखे गये उपन्यास के शिल्पविधान की चर्चा न करना असंगत होगा। उपन्यास की शुरुआत परम्परागत ढंग पर हुई है,

जिसे पर्सी लब्बक ने परिदृश्यात्मक (Panoramic) और दृष्यात्मक (Scenic) पद्धति कहा है। उपन्यासकार सुकान्त के सम्बन्ध की अधिकतर बातें स्वयं सर्वज्ञ की भूमिका में हमें बता जाता है। बीच-बीच में दृश्य आते हैं, जिन्हें हम 'सुनते' नहीं 'देखते' हैं। कहीं-कहीं चपला या सुकान्त के स्वगत चिन्तन से हमें उनके मन की झांकी भी मिलती है, पर अवलोकन बिन्दु का सबसे तीखा परिवर्तन हमें इक्यावनवें पृष्ठ पर मिलता है, जब सुकान्त कॉफी हाउस में बैठे-बैठे अपने अतीत में खो जाता है। यहीं से उसके बचपन से लेकर युद्ध से लौटने और गृहस्थ बनने तक की कहानी शुरू होती है। पर उपन्यासकार इस प्रत्यव... प्रणाली (Flashback Method) का सम्यक् निर्वाह नहीं कर पाया है। पृ०67 पर जब पांचवां परिच्छेद शुरू होता है। तब हम भूल जाते हैं कि यह सब हम सुकान्त की स्मृति की खिड़की से देख रहे हैं। इसके बाद का सारा कुछ परिदृश्यात्मक और दृश्यात्मक पद्धति पर चलने लगता है और हम कभी निकट से और कभी दूर की ऊंची जगह से, किन्तु सर्वज्ञतासम्पन्न उपन्यासकार की दृष्टि से, दृष्यों का अवलोकन करने लगते हैं। यहां तक कि पृ०51 पर उपन्यासकार सुकान्त को जिस कॉफी हाऊस में अपनी स्मृतियों में निमग्न छोड़ आया है, उसे भी भूल जाता है। स्पष्ट है कि 'धूपछांही रंग' में शिल्प सम्बन्धी कोई नया प्रयोग नहीं है।

उपन्यास वही सफल होता है जिसमें पात्रों की भीड़ होने पर भी उन्हें अलग-अलग पहचाना जा सके। यह तब सम्भव होता है जब उपन्यासकार अपने हर पात्र को अलग-अलग व्यक्तित्व दे सकने में समर्थ होता है। गिरीश अस्थाना को इस कार्य में अच्छी सफलता मिली है। उपन्यासकार एक साथ जितने अधिक पात्रों को निजी व्यक्तित्व दे पाने में समर्थ हुआ है, वह दुर्लभ उपलब्धि है। सुकान्त, जौहरी, मृणाल, डंडास्वामी, जॉन, शहनाज, कोराइजा सक्सेना आदि जितने पात्रों के नाम याद आते हैं, सबका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है और वे हजारों पात्रों के बीच भी पहचाने जा सकते हैं।

उपन्यास पढ़ने के क्रम में मैं बराबर उपन्यासकार की भाषा-भंगिमा पर मुग्ध होता रहा हूं। इतनी सशक्त, व्यंजनापूर्ण और सटीक भाषा हिन्दी के कुछ ऊँचे दर्जे के उपन्यासकारों ने ही, जिनमें प्रेमचन्द, अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल, अमृतलाल नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि हैं, लिखी है। कहने के ढंग में सपाटता एकदम नहीं है। सामान्य वर्णन भी, जैसे किसी डिनर पार्टी या सेना के दफ्तर का वर्णन, केवल 'कहने के ढंग से' रोचक बन गये हैं। विदेश के दृश्यों का सादृश्य 'आउटडोर शूटिंग' से दिखाना जैसा 8 दिसम्बर

1970 के 'हिन्दी शंकर्स वीकली' में 'दुर्वासा' ने दिखाया है, या तो उपमालंकार को न समझने का परिणाम है या मत्सरी दृष्टि का। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक जब तक यह उपन्यास पढ़ता रहा उसमें पूर्णतः डूबा रहा। मुझे तो लगता है, बहुत दिनों के बाद प्रेमचन्द की भाषा-भंगिमा इस उपन्यास में पुनर्जीवित हुई है। कथन में वही सादगी भरा चुटीलापन, वही मुहावरेदानी, वही व्यंग्य, वही सटीकता और पैनापन।

उपन्यास के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में अपनी राय देनी ही हो तो मैं कहूंगा कि यह एक उच्च कोटि का उपन्यास है। मूल्य ज्यादा होने पर भी, पैसे रहने पर इसे खरीद कर पढ़ा जा सकता है। हिन्दी में इस प्रकार के उपन्यास अधिक नहीं हैं - पठनीयता की दृष्टि से भी, साज सज्जा की दृष्टि से भी। अवश्य ही इस उपन्यास के प्रकाशन के लिए प्रकाशक बधाई का पात्र है।

['समीक्षा' से साभार]

* किशोर

– अचला शर्मा

'छात्र आन्दोलन' का प्रश्न जहां अभिन्न रूप में अपने समय से जुड़ा होने के कारण महत्वपूर्ण है, वहां समाचारों और फुटकल लेखन द्वारा एक हद तक हौवा भी बन चुका है। फिलहाल अधिकतर इस समस्या को सधा हुआ हाथ और संवेदनशील दृष्टि प्राप्त नहीं हुई है। प्रभाकर माचवे का यह लघु उपन्यास इस प्रश्न को सहानुभूतिपूर्वक स्पर्श कर पाने में सफल हुआ है। किन्तु यह संस्पर्श छात्र आन्दोलन जैसी बहुमुखी समस्या के लिये पीठिका ही तैयार कर पाया है किसी सम्पूर्ण-सुगठित आकार का निर्माण नहीं। इसलिए पूरे उपन्यास की बनावट में एक प्रकार का ढीलापन है जो प्रभावान्वित में बाधक बन गया है।

प्रकाशकीय के अनुसार 'कृति जहाँ पढ़ने में रोचक है वहां सोचने को भी बाध्य करती है।' यह सही है कि 'किशोर' के माध्यम से प्रस्तुत यह

* लेखक : प्रभाकर माचवे ; प्रकाशक : कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर ; मूल्य : 4.00 रुपए।

विश्लेषण किसी भी सचेतन और दायित्वपूर्ण मस्तिष्क को सोचने को बाध्य कर सकता है, लेकिन जिस ढंग से उपन्यासकार ने इसके आसपास के माहौल को समेटने की कोशिश की है उससे उपन्यास की रोचकता एक घिराव या व्यूह में जकड़ दी गयी मालूम होती है। उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में, अर्थात् समस्या के सूत्रपात और उसके कारण की खोज में लेखक ने जिस सुलझी हुई मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का परिचय दिया है, उपन्यास के उत्तरार्ध में उसका आभास मात्र शेष रह जाता है और यह पाठक पर आनुपातिक प्रभाव नहीं डाल पाता।

किशोर ने बस जलाई यानी एक तरह से उसने विद्यार्थी आन्दोलन का प्रतिनिधित्व किया। पर कोई भी घटना-सूत्र उसकी समझ में नहीं आ रहा — कारण वह स्वयं नहीं जानता "किसी ने सिखाया उसे? या उसके भीतर कई दिनों से जमा-घुटा गुस्सा एकदम स्फोट कर उठा.....।" उपन्यासकार ने इस तरह उसकी ईमानदारी को बड़ी सहानुभूति से महसूस किया है। दूसरी ओर स्वयं आन्दोलनकर्ता के मुंह से यह कहलाकर कि -'वे सब एक अजान बेनाम गुस्से के प्रतीक थे...।' छात्रों के आक्रोश के खोखलेपन को भी पकड़ा है। लेकिन उनका इस स्थल पर सिर्फ श्रोता के रूप में स्थापित रहना अवश्य खलता है। किशोर के रूप में छात्रों के मस्तिष्क की प्रश्नवाचक दुविधा को प्रभाकर माचवे ने निश्चय ही गहरी मार्मिकता से उभाड़ा है। किशोर यादव वंश में जन्मा है, यह उसका दुर्भाग्य है, तिस पर, गरीबी में रिरियाता परिवार और सौतेली मां का कटु व्यवहार उसकी विडम्बना है। इसलिए, वह अपने ही भीतर उत्पन्न कुंठाजनित प्रश्नों से घिरा है - उनसे मुक्ति के लिये विक्षुब्ध और अमूर्त उत्तरों की खोज में भटकता है। उसकी इस तनावपूर्ण भटकन के एक-एक स्पन्दन को लेखक ने जिस आत्मीयता से उद्घाटित किया है वह सराहनीय है।

छात्र आन्दोलन के अतिरिक्त इस लघु उपन्यास में और भी कई समस्याओं को समेटने का प्रयत्न किया गया है किन्तु यह प्रयत्न पाठक को हतप्रभ ही करता है, क्योंकि वे सभी समस्याएं आवेश में उठे प्रश्नों-सी अलग-अलग विश्रृंखलित रूप में दिखाई पड़ती हैं। नायक से इनका सम्बन्ध मात्र इतना ही है कि वह माइक की तरह विभिन्न परस्पर-विरोधी स्वरों को प्रेषित करता है, अर्थात् उसकी उपस्थिति एक माध्यम के रूप में ही ग्राह्य रह जाती है। फिर भी इन्हीं असम्बद्ध स्वरों के बीच एक-आध स्वर अपनी व्यक्तिगत क्षमता के कारण प्रभावित करता है। साहित्य की राजनीति, वर्गसंघर्ष, मजहबी जनून आदि ऐसे ही कुछ प्रश्न हैं जिनके मूल में उपन्यासकार के गम्भीर चिन्तन के दर्शन होते हैं।

'किशोर' यद्यपि सुचिन्तित विचारवत्ता प्रदान करता है, तथापि उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त रिपोर्ताज और इंटरव्यू शैली के कारण रोचकता की गति को अवरुद्ध भी करता है।

['समीक्षा' से साभार]

*कड़ियाँ

– देवेन्द्र इस्सर

'एक अनुभव है जो पुराने लोगों का है, और उसके आधार पर वे सीख देते हैं। दूसरा अनुभव है जो नए युवा लोगों का है, आज के लोगों का है, और उसके आधार पर वे भी सीख देते हैं। पर स्त्री से प्रेम न तो नया अनुभव है, न नई स्थिति है। सहस्रों वर्षों से ऐसा होता आया है, उस काल में भी जब समाज अपने परंपरागत मूल्यों के आधार पर चल रहा था, और उस काल में भी जब पुराने मूल्य टूट रहे थे और नए मूल्य मनुष्य के मन पर अपना अधिकार जमाने लगे थे और समाज का जीवन अस्थिर और डावांडोल हो रहा था।'

जीवन की यही अस्थिर और डावांडोल स्थिति है जिसमें 'कड़ियां' के पात्र उभरते-डूबते रहते हैं। मूल्यों का संकट प्रत्येक युग में रहा है। कभी मूल्यों ने मनुष्य को ललकारा है और कभी मनुष्य ने मूल्यों को चुनौती दी है। इस परस्पर संघर्ष में उसने कभी परम्परागत मूल्यों का सहारा लिया है और कभी नये मूल्यों का आवाहन किया है। लेकिन यह संघर्ष अनवरत जारी है। इसलिये कि कल का विद्रोह आज की रूढ़ि बन चुका है और

---

* लेखक : भीष्म साहनी ; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 8, फैज बाजार, दरियागंज, दिल्ली -6 ; मूल्य : आठ रुपया ।

आज का विद्रोह आने वाले कल में स्थापित परम्परा के रूप में स्वीकार हो जायेगा। प्रश्न यह है कि एक विशेष परिस्थिति में कोई व्यक्ति मूल्यों के संकट की चुनौती को किस प्रकार से स्वीकार करता है। वह कौन-सा रुख धारण करता है? क्या वह मूल्यों के विघटन के साथ स्वयं भी विघटित होता है या स्वत्व की स्थापना और सुरक्षा के लिये मूल्यों का अन्वेषण भी करता है और इसके लिये संकल्प-विकल्प की स्वतन्त्रता का इस्तेमाल करता है। यह उपन्यास इस सारी प्रक्रिया से गुजरता है और उसकी परिणति होती है मूल्यों के अन्वेषण में.

महेन्द्र (उपन्यास का नायक) गृहस्थ के जीवन से ऊब कर अपने कार्यालय की ही एक लड़की सुषमा से यौन-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। लेकिन वह दोनों स्थितियों - पत्नी और प्रेमिका के बीच में सन्तुलन - को एक साथ कायम नहीं रख सकता। लेकिन एक बार पटड़ी से उतरने के बाद वह दिशाहीन होकर 'पाप-पुण्य' के परस्पर तनाव में भटकता हुआ अन्ततः अन्धी प्रवृत्तियों का दास बनकर रह जाता है।

'मैं उन आदमियों में से नहीं हूं जो सेक्स को पाप मानते हैं। सेक्स का सवाल अलग है, और गृहस्थी बनाए रखने का सवाल अलग——साफ बात है, हर मर्द की औरत किसी न किसी वक्त बासी पड़ जाती है। वह उससे ऊब उठता है, कुदरती बात है। ऐसा युग-युगों से चला आया है, और चलता रहेगा। पर गृहस्थी तोड़ने या बनाए रखने की बात है।'

'महेन्द्र ने देखा, चाचा जी अपनी सुसंस्कृत शब्दावली में वही कुछ कह रहे थे जो नाटा टुच्चों की भाषा में कहा करता था।'

नाटा (महेन्द्र का मित्र) इस जटिल स्थिति का समाधान अपने विभाजित व्यक्तित्व में ढूंढ़ लेता है। लेकिन उसका विभाजित व्यक्तित्व उस अर्थ में खंडित नहीं जिस रूप में महेन्द्र का है। क्योंकि नाटा ने अपने विभाजन को चेतन रूप से स्वीकार किया है - बिना किसी मूल्य के संदर्भ के, जबकि महेन्द्र इस विभाजन से बचना चाहता है लेकिन बच नहीं सकता बल्कि टूटना शुरू हो जाता है :

'महेन्द्र नाटे को टुच्चा और लम्पट कहा करता था, और ऐसा उसे मानता भी था, पर उसकी संगति में उसे लगता जैसे उसके अन्दर कोई चीज भुरभुराने लगी है, और उसके छोटे-छोटे कण गिर रहे हैं, जिससे उसके बदन में झुरझुरी हो रही है। कोई दीवार टूट रही है जिसे पहले से दीमक चाट गया है,

एक दिन उसे जरूर भुरभुराकर गिर जाना है, और नाटा उसे हल्के-हल्के धक्के दे रहा है।'

महेन्द्र के जीवन का एक पहलू यह भी है कि वह किसी क्षण में भावोद्रेक से अभिभूत होकर प्रमिला (पत्नी) से सहवास भी कर लेता है, जबकि वह उसका परित्याग कर चुका है।

प्रमिला एक धर्मभीरु, संस्कारों के बोझ तले दबी, रूढ़ियों को ढोने वाली नारी है। कुछ तो अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण और कुछ घर के कामकाज में व्यस्तता और कुछ यौन-दमन के कारण वह महेन्द्र की कामक्षुधा को तुष्ट नहीं कर सकती और न ही उसका मन अपने शरीर और भाव-भंगिमाओं से मोह सकती है। वह चाची की सीख पर भी अमल नहीं कर सकती –

'सुन प्रमिला, औरत के पास उसका जिस्म ही जिस्म है, और कुछ नहीं। मर्द को रिझाने के लिए कभी औरतें बाल छोटे करवाती फिरती हैं, कभी लम्बे, कभी पतलून पहन लेती हैं, कभी तंग सलवारें।'

'इससे एक और बच्चा ले ले। पेट में बच्चा होगा तो अलग होने की बात नहीं करेगा। इसके पैरों में गृहस्थ की बेड़ी पड़ जाएगी।'

'बन-संवर कर उसके सामने जाया कर। कुत्ते के मुंह में हड्डी दिए रहो तो वह भूंकता नहीं, काटता नहीं। हड्डी हटा लो तो भूंकने लगता है।'

'नारी मुक्ति आन्दोलन' की भूमिका आत्मसमर्पण और हीन भावना के इसी दृष्टिकोण ने ही तैयार की मालूम होती है। लेकिन उपन्यास में कोई एक नारी पात्र ऐसा नहीं जो इस भूमिका को अदा कर सके – सतवन्त भी नहीं।

पुरुष के जीवन में 'अन्य स्त्री' निरन्तर प्रवेश करती रही है – कई कारणों से। परिणामस्वरूप परिवार छिन्न-भिन्न हुए हैं और गृहस्थी नष्ट। प्रायः यह भी हुआ है कि 'अन्य स्त्री' ऐसे पुरुष को ठुकरा कर किसी दूसरे के अभिसार में लीन हो गई। इसके भी कई कारण हो सकते हैं और पुरुष पटड़ी से उतरे हुए डिब्बे की तरह दिशाहीन भटकने लगता है या किसी शक्तिशाली वस्तु से टकरा कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

महेन्द्र अपने आप को बड़ा अकेला महसूस करता है और प्रमिला भी। सुषमा भी अकेली है और महेन्द्र का बेटा पप्पू भी। प्रमिला का पिता भी। इन

सबका एकाकीपन भिन्न प्रकार का है इसलिये इनकी मानसिक स्थिति और पूर्ति और साहचर्य की तलाश भी अलग-अलग है । भीष्म साहनी ने इन विभिन्नताओं को बड़ी सूक्ष्मता से देखा है और बड़े प्रौढ़ ढंग से इन्हें व्यक्त किया है ।

प्रमिला इस उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण पात्र है । और यह बात बड़ी दिलचस्प है कि सब पात्रों में वह ही एक पिछड़ी हुई औरत है । लेकिन मनुष्य के नये सम्बन्धों में यदि कोई नवीन दृष्टि दे सकी है तो वह भी प्रमिला ही है - बिना किसी दार्शनिकता के, बिना किसी विद्रोह और शोरशराबे के। वह परित्यक्ता है। वह पागलपन के दौर से गुज़रती है और यदि किसी पर व्यभिचार का लांछन लगता है तो वह भी प्रमिला है । उसे परित्यक्ता होने का इतना दुख नहीं जितना कि अपने पुत्र से बिछड़ने का । और उसके पागलपन का भी यही कारण है । इसलिये दूसरे लड़के के जन्म से न केवल उसका पागलपन ही दूर हो जाता है बल्कि उसका भी जैसे दूसरा जन्म होता है । यह जन्म प्रमिला का ही नहीं - उसके भीतर छिपी नयी नारी का है । ऐसा महसूस होता है कि उसके नारीत्व की परिपूर्ति पत्नी बनने में उतनी नहीं जितनी मातृत्व में है और प्रमिला की दृष्टि अतीत से हट कर भविष्य पर टिक जाती है -

'दूकान के दरवाजों पर तो सफेद रंग करवाएंगे । ठीक है न, सत्तो ? दवाइयों की दूकान पर तो सफेद रंग ही फबता है । दरवाजों पर सफेद रंग, दीवारों पर हल्का नीला, अलमारियों पर भी सफेद रंग । क्यों ठीक है ना ? जब कुछ पैसे आ जाएंगे तो नीचे सीमेंट का फर्श करवा लेंगे । तू चाचा जी की दूकान पर जा कर देख, छम-छम करती है, तेरी आंखे चुंधिया जाएं । हर चीज ऐसी साफ-सुथरी, हाथ लगाओ तो मैली होती है । मैंने दो सफेद साड़ियां भी ले ली हैं । सूती हैं, मगर अच्छी हैं । चाचा जी कहते हैं, दवाइयों की दूकान में सफेद कपड़े पहन कर काम करना चाहिए, ऐन साफ-सुथरे, चम-चम करते । मैं तो पिताजी को भी सफेद पतलून और सफेद कमीज़ पहना कर दूकान में बैठाऊंगी मैं अब उन्हें अदालत में ठोकरें खाने थोड़ी दूंगी । बहुत कर लिया उन्होंने । हाय सत्तो, जब मैं यहां आई तो घर में बर्तनों पर जाले लगे हुए थे, तुम्हें क्या बताऊं ! दो-दो इंच धूल और मिट्टी । अब तो वह भी कहते हैं, मैं घर पर रहूंगा, तेरा काम देखूंगा । हिसाब-किताब वही रखेंगे । मैं थोड़े ही रखूंगी ।'

इस प्रकार 'एक टूटते परिवार की इकाइयों के मानसिक तनावों और उनके बीच में विकसित होने वाली आज के व्यक्ति की प्रेम और परिवार-विषयक

मान्यताओं' वाला उपन्यास एक नया मोड़ ले लेता है। यह लेखक की उपलब्धि है।

भीष्म साहनी अपनी बात को बड़ी सादगी, सहजता और सहानुभूति से कहने का रहस्य जानते हैं और उसका सफल एवं सशक्त प्रयोग करते हैं। वे आधुनिकता का लबादा ओढ़े बग़ैर और प्रचलित 'क्लिशे' का इस्तेमाल किये बग़ैर ही मनुष्य के मन की गहराइयों में पहुंच जाते हैं और उनके तह दर तह छिपे हुये पेचीदा सम्बन्धों के धागों की गिरहें खोल देते हैं। उनकी यह 'कलाहीनता' ही है जो उनकी रचनात्मक शक्ति की परिचायक है।

*दंड-द्वीप

– तारकनाथ बाली

'दंड-द्वीप' एक विषम उपन्यास है – कथा की दृष्टि से भी, चरित्र की दृष्टि से भी और शैली की दृष्टि से भी। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं। पहला है राजू जिसकी आयु पहले पृष्ठ पर तेरह साल दी गई है और 22 वें पृष्ठ पर पन्द्रह साल, दूसरा पात्र है अमित जो विवाहित है, जिसके बच्चे हैं और जो मनीषा से प्रेम करता है, अक्सर उसके साथ रहता है और अन्त में मनीषा उसके पुत्र को जन्म देती है। स्पष्ट है कि मनीषा ही वह नारी है जो केन्द्र बिन्दु है। वह अमित के साथ बिना विवाह किए हुए रहती है, वही राजू के आकर्षण या रति का आलम्बन है मगर उसे दुत्कारती नहीं है और अपने तथा अमित के परिवार के विषाक्त वातावरण को सहन करती हुई भी पर-पुरुष के साथ रहती है। मनीषा को रखैल कहा जा सकता है मगर वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है बल्कि अमित का खर्च भी उठाती रहती है। यह रखैल का आधुनिक रूप है जिसमें आर्थिक नहीं वरन् विशुद्ध भावात्मक तत्व ही प्रधान है। राजू के पिता का देहान्त हो चुका है, मकान बहन की शादी में गिर्वी रखा जा चुका है, बैंक में काम करने वाला भाई बैंक में चोरी करते हुए पकड़ा गया है और कैद

---

*लेखक : रमेश उपाध्याय; प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन प्रॉ० लि०, दरियागंज, दिल्ली; मूल्य : सात रुपये।

है, तथा राजू घर को, जिसमें उसकी मां, भाभी और उसकी बच्ची बबली है, पालने के लिए तालों के कारखाने में मिस्त्री का काम करता है। इस प्रकार प्रत्येक पात्र का अपना-अपना पारिवारिक जीवन भी विषम है और उनके पारस्परिक संबंध भी विषम हैं। राजू मनीषा की रति में कैद है और पर-पुरुष में आसक्त नारी के प्रति पन्द्रह साल के राजू की रति ही उसके व्यक्तिगत जीवन को सब कुछ से काट कर एक ऐसे द्वीप की रचना करती है जिसमें राजू का अहम् दंडित होता रहता है। मगर एक अजीब बात यह है कि दंड-द्वीप में कैद राजू अपने पारिवारिक दायित्व को निभाता है, ओवर-टाईम करता है मगर किसी से शिकायत नहीं करता।

अमित और मनीषा के संबंधों का एहसास होने पर वह मन ही मन खीझता रहता है, कई बार मनीषा से उसका झगड़ा होता है मगर झगड़ा होता है मामूली बातों पर। वह मनीषा से रूठ जाने का निश्चय करता है, बार-बार अपने अहंकार को जगाता है मगर मनीषा का सामना होते ही सब कुछ बह जाता है और वह मंत्र-विद्ध-सा उसके इशारों पर नाचने लगता है, उसके इशारों पर नाचने को लालायित रहता है। अन्त में मनीषा ही उसे इस कैद से आजाद करती है और इसके लिए कहीं से शकुन्तला आ जाती है जिसके साथ यह नन्हा आशिक खुशी-खुशी ऊन खरीदने निकल पड़ता है।

मगर एक समस्या है। उपन्यास के शीर्षक से और आवरण पर दिए वक्तव्य से लगता है कि उपन्यासकार की निगाहों में प्रधान पात्र है राजू और प्रधान समस्या है उसकी ग्रंथि जो अन्त में टूटती है। मगर उपन्यास के पाठक पर सबसे गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ता है मनीषा का। वह इतने बड़े तूफान को छिपाए हुए भी सहज और स्वाभाविक बनी रहती है, सन्तुलित बनी रहती है। एकाध जगह इस तूफान की तीखी झलक मिलती है मगर कुल मिला कर उस व्यक्तित्व में ऋजुता और सहजता है। अगर यह ठीक है कि उपन्यासकार ने राजू की कुंठा को ही उपन्यास का केन्द्र बिन्दु बनाने की कोशिश की है तो वह निश्चय ही इस कोशिश में नाकाम रहा है। मनीषा का व्यक्तित्व पूरी कृति पर छाया हुआ है और पाठक पर अमोघ प्रभाव छोड़ जाता है। यहीं एक बुनियादी सवाल पैदा होता है। क्या उपन्यासकार के विशेष उद्देश्य की असफलता उपन्यास की असफलता है ?

यह कतई जरूरी नहीं कि उपन्यासकार के विशेष उद्देश्य की असफलता से उपन्यास को ही असफल मान लिया जाए। और यह बात 'दंड

द्वीप' में सिद्ध भी हो जाती है । इस उपन्यास को सिर्फ इसलिए असफल नहीं कहा जा सकता कि वह उपन्यासकार के मूल उद्देश्य को सिद्ध नहीं कर पाया ।

अमित का व्यक्तित्व तो मानो है ही नहीं । वह तो मनीषा के व्यक्तित्व का एक गौण अंग भर लगता है । यह विचित्र संयोग नहीं है कि अमित और मनीषा का प्रणय दिनकर की 'उर्वशी' में पुरुरवा और उर्वशी के प्रणय की याद दिलाता है । रमेश उपाध्याय इस अर्थ में आधुनिक हैं कि उन्होंने अमित और मनीषा के प्रणय को आध्यात्म और रहस्य की ऊर्ध्व भूमि तक नहीं पहुंचाया बल्कि सहज यथार्थ धरातल पर ही रहने दिया है ।

डेढ़ साल तक राजू और मनीषा को एक दूसरे का पता नहीं रहता और इसके बाद जब राजू मनीषा से मिलता है तो वह अमित के बच्चे की मां बनने वाली होती है । इस अर्से में लेखक ने दिल्ली के बेला रोड की झुग्गी-झोंपड़ी के जीवन के चित्रण का प्रयास किया है । हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को व्यक्त करने के लिए राजू और उसके साथ काम करने वाले लल्लन की यारी का चित्रण भी कर डाला है । यहां लेखक ने सामाजिक जीवन के चित्रण की कोशिश भी की है । मगर इससे उपन्यासकार के मूल उद्देश्य में दुर्बलता आई है । यह हिस्सा बेकार जोड़ा हुआ-सा लगता है जो राजू के 'दंड-द्वीप' का प्रतीक नहीं माना जा सकता क्योंकि यहां रह कर वह अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह कर रहा है ।

कथा के अन्त ने समूची कृति की रचनात्मकता पर बहुत बुरा असर डाला है। इतनी जल्दी संयोग पर संयोग घटित होते हैं और इस विषम कथानक को ऐसा सम और रोमांटिक मोड़ दे जाते हैं कि उपन्यास का सम्पूर्ण शिल्प और उसका कसाव उखड़ा हुआ-सा, ढुल-मुल-सा लगने लगता है । शकुन्तला को लाए बिना भी केवल बच्चे के जन्म की घटना से ही राजू की मुक्ति का संबंध जोड़ा जा सकता था । कुछ देर पहले मनीषा के लिए सब कुछ कर गुजरने वाला राजू यकायक शकुन्तला के अल्प साहचर्य से ही दंड-द्वीप से मुक्त हो जाता है, यह बात कृति में जमती नहीं है और इसीलिए उपन्यास के शिल्प-बंध को भी झकझोर डालती है ।

कुल मिलाकर इस उपन्यास में तीन विभिन्न तत्वों का सम्मिश्रण दिखाई देता है - मनीषा, राजू और अमित की दुहरी विषमताओं की सूक्ष्मता

का, झुग्गी झोंपड़ी में रहने वालों के जीवन की व्यापकता का और राजू तथा शकुन्तला के रोमांस का जो छायावादी चेतना का अवशेष सा लगता है। यह ठीक है कि बात तो सिर्फ पहली ही उभर कर आती है मगर अन्य दोनों बातों के सम्मिश्रण से उपन्यास के संगठन और एकान्विति पर बुरा असर पड़ता है। इन्हीं तीनों तत्वों के अनुरूप शैली के भी तीन रूप दिखाई देते हैं जो लेखक की प्रतिभा का असंदिग्ध प्रमाण हैं। मगर शिल्प के संगठन को ध्यान में रख कर कथा के इन तीनों पक्षों पर विचार करना आवश्यक था। लेखक की दृष्टि से उपन्यास की प्रधान समस्या है राजू की ग्रंथि जो उसे दंड-द्वीप में कैदी बना देती है। ऐसी स्थिति में अच्छा तो यह होता कि इसी समस्या को उभारा जाता, शेष सभी परिस्थितियां, घटनाएं और समस्याएं भी इसी को उजागर करने में प्रयुक्त की जातीं। मगर लगता है कि इस कृति में निम्न-मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के जीवन के चित्रण की आकांक्षा भी विद्यमान है। पहली समस्या दृष्टि को गहराई की ओर ले जाने को प्रेरित करती है और दूसरी आकांक्षा व्यापकता की ओर। इस गहराई और व्यापकता के द्वन्द्व के कारण एक सुगठित अखंड शिल्प के निर्माण में बाधा पड़ी है। यदि उपन्यासकार केवल एक ही समस्या को केन्द्र बिन्दु बनाता तो गठन अधिक निखर उठता। आशा है कि अपनी नई कृतियों में लेखक कृति के इस पहलू की ओर अधिक ध्यान देगा।

* उत्तर पुरुष

— वेदव्रत गुप्त

प्रस्तुत उपन्यास के रचयिता श्री अनूपलाल मण्डल हिन्दी साहित्य के वयोवृद्ध लेखकों में से हैं। आपकी लेखनी सन् 1928 से हिन्दी साहित्य की समृद्धि में लगी हुई है । आप मुंशी प्रेम चन्द के समकालीन हैं । उनके समय के अधिकांश लेखक तो काल-कवलित हो गए, परन्तु मण्डल जी की वृद्ध लेखनी अब भी हिन्दी जगत में यश-अर्जित कर रही है । आपकी कितनी ही कृतियां उपन्यास के रूप में अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं । उनके एक उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है । राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के आप सेनानी हैं । बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के प्रकाशनाधिकारी के महत्वपूर्ण पद पर आप कितने ही समय तक कार्य करते रहे हैं । इन सब जीवनसंग्रामों के होते हुए भी आपकी लेखनी ने कभी विराम नहीं पाया । यही कारण है कि संपूर्ण बिहार में आप 'बिहार के प्रेमचन्द' के नाम से विख्यात हैं ।

'उत्तर पुरुष' उपन्यास में उस समय का वर्णन है जब कि देश में स्वतंत्रता संग्राम छिड़ा हुआ था । नवयुवक स्वतंत्रता की बलिवेदी पर हँसते हुए बलि हो रहे थे । महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के

* लेखक : अनूपलाल मण्डल ; प्रकाशक: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6 ; मूल्य: 15 रुपए ।

आह्वान से प्रेरणा पाकर अनेक लोगों ने अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा तथा अंग्रेज़ियत सिखाने वाली अनेक बातें त्याग दी थीं और अपने को पुनः भारतीयता की ओर मोड़ लिया था। परन्तु उस समय जाति-पांति, छुआछूत और वंश-परंपराओं का पालन अनिवार्य था। शहरों की अपेक्षा गांवों में ये वंश-परंपराएं और भी दृढ़ता से निभाई जाती थीं। उनमें जरा-सी ढिलाई अच्छे-अच्छे कुलों को दूर-दूर तक बदनाम कर देती थी और अनेक सामाजिक कठिनाइयों का कारण बन जाती थी।

ऐसा ही एक परिवार था चौधरी वंश। वृद्ध स्थविर शंकरशरण चौधरी उस परिवार के दादा के रूप में विद्यमान थे और जगदीश व वसु उनके पौत्र व पौत्री के रूप में। लेखक ने बताया है कि इस चौधरी वंश के पृष्ठ सुनहले रहे हैं, जगमगाते रहे हैं निष्कलंक, दीप्त, गौरवमय। जहां एक ओर लास्यमयी लक्ष्मी का विलास रहा है, वहीं स्वच्छ हास्यमयी सरस्वती की वीणा की मधुर मंजुल झंकृति। स्नेहशीला सुन्दर पत्नी का सान्निध्य, शुचिसुन्दर परिवार, आनंददायक बंधुवर्ग, गोधन-ध्यान्यपूर्ण संसार, अभाव की ताड़ना नहीं, दैन्य की विभीषिका नहीं। क्या नहीं था जो एक सुखी परिवार को समुज्जवल करे। जिन्होंने मात्र देना ही जाना, जिनके लिए अदेय कुछ नहीं, जिन्होंने कभी किसी से ग्रहण नहीं किया, जिनका हाथ सदा ऊपर रहा, कभी नीचे नहीं गया। मगर यह उनका दंभ नहीं, स्वभाव-सुलभ मन का सहज आग्रह था।

इस चौधरी वंश के भवन के अंदर पर-पुरुष का प्रवेश सम्पूर्ण रूप में वर्जित था। यहां तक कि उस वंश की स्त्रियां बाहर भी पर्दे में निकलती थीं। वसु जब युवती हुई तो वह भी किसी विशेष अवसर पर ही, बड़ी सावधानी के साथ, दिन के प्रकाश में नहीं, संध्या की सघन छाया या अंधियारी रात में, हरिणी की तरह चकित-विस्मित होकर ही बाहर निकल पाती थी। अभिभावक के रूप में उस नियम के वाहक वृद्ध शंकर शरण चौधरी विद्यमान थे। कितने कठोर नियम थे स्त्रियों के लिए।

परन्तु समय बदल रहा था। जगदीश के पिता ने जिनको पूर्व पुरुष कहा जा सकता था, जगदीश को अंग्रेजों द्वारा परिचालित शिक्षा में शिक्षित करने का दृढ़ संकल्प किया, तो जगदीश के दादा शंकर शरण ने उनके पिता को संपत्ति से वंचित कर दिया। यही नहीं उन्हें घर भी छोड़ना पड़ा। यों दादा शंकर शरण पूर्णतया भारतीय थे। उनकी भारतीय संस्कृति, भारतीय वेशभूषा, देव भाषा संस्कृत तथा भारतीय रीति रिवाजों, परंपराओं, मान्यता सभी में अटूट श्रद्धा व निष्ठा थी, न केवल वाणी अपितु कर्म से भी। यही कारण था कि

वे पौत्री वसु को संस्कृत की शिक्षा दिलाने तैयार हुए। उनके द्वार से याचक व दुखी कभी निराश नहीं लौटे, यहां तक कि उनकी दानवीरता के कारण मकान के नाम पर एक खंडहर शेष रह गया। किसी को लड़की के विवाह के लिए, किसी की पढ़ाई के लिए, किसी की रोग मुक्ति के लिए, किसी की उन्नति के लिए, किसी को पशु खरीदने के लिए या कभी गांव पर संकट आया तो सम्पूर्ण गांव की सहायता के लिए वे उन्मुक्त हृदय से दान दिया करते थे। वसु ने बड़े होकर पाया कि घर में कुछ भी शेष नहीं है। विशाल भवन खंडहर हो चुका था, बगीचे सूख गए थे। धन के नाम पर कुछ भी नहीं बचा था। विलासिता की तो बात क्या, साधारण जीवनयापन भी कठिन था। उस पर भी दादा कभी याचक नहीं बने। जो लौटाने आते थे उनसे भी नहीं लेते थे। बच्चों के लिए कभी संग्रह नहीं किया। सदा शरणागत वत्सल रहे। चाहे उसके लिए कुल की मर्यादाओं को तोड़ना पड़ा। उन्होंने अपने पौत्र व पौत्री जगदीश एवं वसु को केवल दिये - वंशगत संस्कार तथा ज्ञान एवं विवेक। वे अपनी शिष्या से एक स्थान पर जगदीश के संबंध में कहते हैं -"हां, भद्र तो होना ही चाहिए गायत्री! निश्चय ही वह भद्र है, विनीत है, आज्ञाकारी है, अनुगत है! चौधरी वंश का वह कुल दीपक है। जो चौधरी वंश के 'पूर्व पुरुष' न कर सके, वह 'उत्तर पुरुष' होकर करेगा - यह मेरा पूर्ण विश्वास है।"

लेखक ने कई बातों का निबाह बड़ी अच्छी तरह किया है, एक तो यह कि घर के बड़े-बूढ़ों का बच्चों के चरित्र पर पूरा असर पड़ता है। दादा के उत्तम चरित्र का जगदीश पर प्रभाव स्पष्ट है कि वह इंजीनियर होकर भी रिश्वत नहीं लेता। अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा होकर भी तथा कुसुम मित्रा, शीला मलकानी, गंगा आदि नवयुवतियों के संपर्क में आने पर भी वह अपना पतन नहीं होने देता। यह दादा के वंशानुगत दृढ़ चरित्र का ही प्रभाव है। उधर वसु केवल संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करती है। वह भी घर पर ही रह कर। परन्तु फिर भी दादा की संगत ने उसे इतना विवेकी बना दिया है कि वह हित-अहित बखूबी सोच समझ सकती है। इसी कारण दादा के यहां आने वाले अनेक युवकों की आव-भगत में रहते हुए भी वह निर्विकार रहती है।

दूसरा पक्ष लेखक का सामाजिक परिवर्तन से संबंधित है। समय तीव्र गति से बदल रहा है। उसी गति से दादा भी परंपराओं से बंधे होकर भी, अब अपनी परंपरा को बच्चों पर थोपते नहीं, मात्र मार्ग दिखा देना ही ठीक समझते हैं। यहां तक कि वे उनके विवाह के संबंध में भी स्वयं कोई निर्णय नहीं लेते। जाति-पांति और सभी परंपराओं से ऊपर उठ कर वे उनकी रुचि का समर्थन करते हैं तथा

आशीर्वाद देते हैं । वर्तमान समाज के बड़े-बूढ़ों के लिए दादा का यह मार्ग अनुकरणीय है । युग पुरुषों को चाहिए कि पूर्व पुरुष व उत्तर पुरुष जब कार्य क्षेत्र में प्रवेश कर जाएं तथा अपने अधिकार क्षेत्र को समझने लगें तब सब कुछ उन पर ही छोड़ दें । दादा जी की तरह आशीर्वाद के रूप में बस चेतावनी देते रहें । इससे घर की शांति बनी रहती है। छोटे-बड़ों का आदर करते हैं । ऐसा करने से घर-घर में जो क्लेश आज व्याप्त हैं वे न हो पाएंगे । दादा जी ने इंजीनियर जगदीश के लिए साधारण गंगा को, तथा संस्कृतज्ञ वसु के लिए डाक्टर वीरेश्वर को जो उपयुक्त नहीं समझा, यह उनकी अनुभवी व दूरदर्शी दृष्टि का परिचायक है । वे भावुकता तथा व्यावहारिकता के भेद को समझते थे । अधिकांश वैवाहिक जीवन जब युवक-युवतियों के लिए जीवन भर का रोना बन कर रह जाते हैं, तो उनके पीछे या तो यही भावुकता होती है या वंशगत जाति-पांति मोहान्धता तथा परंपराओं का निभाव ।

लेखक की भाषा संस्कृतनिष्ठ है । किन्तु कहीं-कहीं अनावश्यक रूप से संस्कृत का प्रयोग खटकता है , जैसे पृष्ठ 251 पर 'भाई-बहन के पवित्र संबंध' की जगह 'भ्राता-भगिनी का पूत संबंध' प्रयोग किया गया है । यों जिस प्रकार उर्दू में एक अपनी ही लजीज़ियत है उसी प्रकार संस्कृत में भी एक अपनी ही गरिमा व मिठास है । कई स्थानों पर संस्कृतज्ञ दादा के मुख से संस्कृत संबोधन अत्यंत हृदयग्राही बन पड़े हैं । लेखक ने यथा पात्र भाषा प्रयोग का सर्वत्र ध्यान रखा है ।

लेखक अपने प्रयास में पूर्ण सफल रहा है । आद्यन्त उपन्यास पढ़ लेने पर लेखक पाठक के हृदय पर भारतीय संस्कृति की अमिट छाप तो छोड़ ही जाता है, साथ ही वह पाठक को सोचने पर विवश करता है कि वर्तमान बदलते परिवेश में किस प्रकार पुत्र-पौत्रों के साथ व्यवहार करे कि उसके अपने व्यक्तिगत जीवन में किसी प्रकार का व्यतिक्रम न आए और साथ ही उत्तर पुरुषों की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति के अमूल्य रत्न सच्चरित्रता , सत्यता, ईमानदारी, दानशीलता, शरणागत वत्सलता, व देश-प्रेम आदि के सुसंस्कारों से युक्त रह कर नित्य-प्रति बदलती दुनिया में कदम से कदम मिला कर चल सके । ऐसे नव समाज का निर्माण कर सके जो नया होते हुए भी प्राचीन स्तंभों पर खड़ा हो । जिन को देख कर भारत माता गर्व से मस्तक ऊंचा कर सके । वे शिक्षित हों, विवेकी हों, डाक्टर बनें या इंजीनियर पर सच्चरित्र व ईमानदार हों । धनी हों तथा दानशील हों, वीर हों तथा शरणागत वत्सल हों । ये गुण लेकर वे जहां कहीं भी जाएंगे, जिस किसी भी देश में जाएंगे, जिस किसी भी भाषा में बोलेंगे, वे भारतीय कहलाएंगे तथा जगदीश की भांति विदेशियों की भी प्रशंसा के पात्र बनेंगे ।

निश्चय ही स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी श्री मण्डल द्वारा लिखा यह 'उत्तर पुरुष' उपन्यास सर्वथा स्तुत्य व पठनीय है ।

* नदी और सीपियाँ

—नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी

शानी की प्रतिष्ठा हिन्दी में बस्तर ब्रांड लेखक के रूप में हुई है। बाद में उसका लेखन और व्यापक परिवेश तक फैला, लेकिन 'जिन कृतियों द्वारा उसे प्रतिष्ठा मिली, वे मूलतः बस्तर के पिछड़े, आदिवासी इलाके की कथाएं थीं। इन कहानियों, रिपोर्ताज़ या उपन्यासों को लोगों ने इसलिए भी बड़ी ललक के साथ ग्रहण किया, कि इनमें कुछ मौलिक एवं नितान्त नया था, जो अन्य कथाकारों में नहीं मिलता। इसमें शानी का नहीं, बल्कि उस परिवेश का महत्व अधिक है, जिसमें शानी रहकर संस्कार ग्रस्त हुआ है। चाहे वह 'काला जल' हो या अन्य कोई रचना शानी की कलम से उसमें बस्तर सजीव हो उठता है। 'नदी और सीपियां' भी बस्तर के पिछड़े इलाके में घटित, विवाहित जीवन की आधुनिक समस्याओं से पूर्ण एक लघु उपन्यास है। बल्कि मैं तो इसे लघु उपन्यास के बजाय लम्बी कहानी की संज्ञा देना ज्यादह उपयुक्त मानूंगा।

उपन्यास को समाप्त करने पर ऐसा आभास होता है, मानो किसी सुदूर वन्य प्रदेश में करुण प्रणय की बांसुरी बज रही हो। यों कथावस्तु में ऐसा कुछ भी लेखक ने नहीं दिया, जिसे हम नवीनता की संज्ञा दे सकें। न ही कोई वर्णन इतना उभर कर आया है कि हम पर कोई अमिट प्रभाव छोड़ सके। विवाहित जीवन

* लेखक : शानी ; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लिमिटेड, दिल्ली - 6 ; मूल्य 3.50.

में शंका, असहिष्णुता और एक दूसरे के प्रति नासमझी के कारण संबंधों का टूटना या विद्रोह होना, आमतौर से अनेक उपन्यासों में मिल जाता है। वही शानी के इस उपन्यास में भी हमें मिलता है। यदि लेखक कथा वस्तु को वास्तव में व्यापक औपन्यासिक रूप देना चाहता, तो संभव है उपन्यास में कुछ नहीं, तो बस्तर का लोकजीवन अथवा माड़िन नदी को लेकर प्रचलित आख्यान ही सजीव हो सके होते। ऐसा लगता है, लेखक ने उपन्यास का जिस रूप में नियोजन किया था, उस रूप में वह उसका निर्वाह नहीं कर पाया। इसीलिए यह कृति सीपी में बन्द नदी जैसी लगी।

हेमन्त और स्वर्णा - पति पत्नी होते हुए, आधुनिक होते हुए भी, काम संबंधों को लेकर जिस प्रकार घटिया गलत फहमियों के शिकार हो जाते हैं, उसे पढ़कर करुणा ही पैदा होती है। एक आधुनिक लेखक के नाते, लेखक को इस तथाकथित आधुनिक दम्पति को पिछड़े विचारों से मुक्त रखने का प्रयास अवश्य करना चाहिए था। क्योंकि आज के वास्तविक आधुनिक जीवन में किसी अन्य पुरुष या नारी से हुए काम संबंधों को लेकर जीवन को विषमय नहीं बनाया जा सकता। वास्तव में इस प्रकार संबंधों के टूटने के पीछे ठोस मनो-वैज्ञानिक कारण हुआ करते हैं। लेखक ने न तो इन कारणों पर प्रकाश डाला है, और न ही समस्या का कोई समाधान सुझाया है।

हेमन्त की पत्नी - स्वर्णा का सुंदर वन्य प्रदेश के तम्बू में अस्थाना द्वारा भोगा जाना समस्या का समाधान नहीं है। क्योंकि उपन्यास इसी वर्णन के साथ समाप्त हो जाता है। हां, अन्य बातों के अलावा लेखक की शैली और उसकी भाषा की रसात्मकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रति प्यार की बात कहने की अद्‌भुत क्षमता लेखक के पास है। हां, कहीं-कहीं एक बात खटकती है। और वह है इस रसात्मक भाषा के प्रवाह में यकायक घोर उर्दू शब्दों का इस्तेमाल।

संक्षेप में, शानी रूमानी शैली के सफल रचनाकार हैं। 'नदी और सीपियां' हमारे मन पर एक अविस्मरणीय छाप छोड़ता है।

* उसका शहर

– रमाशंकर श्रीवास्तव

आज के युग में परम्परागत आदर्श महत्वहीन होते जा रहे हैं और इसीलिए जीवन के मूल्यों में परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन वह नवीनता है जिसकी अभिव्यक्ति नयी पीढ़ी की रचनाओं में हुई है। 'उसका शहर' प्रमोद सिनहा की जीवन के परम्परित मूल्यों के टूटने और नूतन जीवन रूप का संकेत देने वाली नयी कथाकृति है। नयी कहानी, कविता, उपन्यास में जिन दृष्टियों से जीवन की परख होती है और रचनाकार की दृष्टि जिन स्थितियों को जीवन का बोझ होने के लिए उत्तरदायी घोषित करती है, प्राय: उनमें अधिकांश का आकलन इस लघु उपन्यास में है, यथा, आज का आदमी तनाव की जिन्दगी जीता है, एक ही स्थिति में एकरसता या ऊब को महसूस करता है (यहां तक कि अपनी पत्नी से भी), परम्पराओं को बन्धन मानता है। वह अनुभव करता है कि सर्वत्र उदासीनता का वातावरण है। भौतिकता नैतिकता पर हावी है। वह जीवन के किसी छोर को सम्बन्धों के जाल में नहीं फंसाना चाहता, जहां उसके वैयक्तिक स्वातंत्र्य में बाधा पहुंचे। प्रस्तुत कथाकृति के पात्र आमूल, दशानन, मित्र, श्री, मिसेज झरना, एग्नी, लूपिका आदि

* लेखक : प्रमोद सिनहा ; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6, मूल्य : 4-00.

इन्हीं भावों की वकालत करते अपनी ग्रथियों में जी रहे हैं। लौकिक सम्बोधनों में ऊपर से वे सभी एक दूसरे से सम्बद्ध हैं-पिता-पुत्री, पति-पत्नि, मित्र-मित्र-पत्नी के सम्बन्धों में बँधे हैं किन्तु फिर भी वे एक अपना अलगाव - एक तटस्थता का भाव लिए असम्बद्ध भी हैं। यह तटस्थता उनकी मुक्तिप्रियता का संकेत है जिसमें लौकिक सम्बन्धों की नैतिकता खो गयी है। एकरसता की स्थिति से छुटकारा (स्केप) पाने के लिए आमूल अपनी पत्नी नीरा को तलाक दे देता है। नीरा विदेश चली जाती है किन्तु अपने चित्रकार पिता आमूल के साथ उसके चित्रों का मॉडल बनने के लिए युवती पुत्री लूपिका उसके साथ रहती है। पिता-पुत्री का केवल इतना ही सम्बन्ध है कि पिता अपनी पुत्री में पत्नी का सौन्दर्य देखता है और 'मानसिक रति' का सुख पाता है। किन्तु पत्नी का कोई प्रसंग उसे सह्य नहीं है। अतीत की यादों को नष्ट करने में उसे सन्तोष मिलता है। आमूल, मित्र और श्री तीनों मित्र हैं और तीनों का समस्या-बिन्दु स्त्री है। नारी जहां विरोध करती है वहां ये पुरुष कुंठित हो जाते हैं। प्रो० दशानन नारी से दूर रहकर भी लूपिका की ओर आकृष्ट होता है और विवाह का प्रस्ताव करता है किन्तु लूपिका 'परम्परित सम्बन्धों' को अस्वीकार करती है। वह किसी की पत्नी बनकर पत्नी के आदर्शों में अपने को नहीं बांधना चाहती, क्योंकि वह एग्नी, मिसेज झरना, और स्वंय अपनी मां नीरा के विवश जीवन को देख चुकी है। वह सोचती है - 'किसी भी बँधाव की अपेक्षा यात्रा करते हुए जीने में ही वह अधिकतम सुविधा महसूस करेगी' (पृ० 101) पुनः 'बंधा हुआ आदमी सड़ जाता है और उसमें विश्वास की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है।'

सम्भवतः लेखक को जीवन के ऐसे बन्धन स्वीकार नहीं हैं। खतरा तो तब पैदा होगा जब लेखक महोदय के आदर्शों को लेकर समाज की अनेक 'लूपिकाएँ' ऐसे ही स्वतन्त्र जीवन की इच्छा करेंगी। तब वैसी आजादी इन्सान को कौन-सा नजारा दिखाएगी राम जाने। सम्बन्धों के इस समाज (शहर) में व्यक्ति घोर तटस्थता अपना ले और अपनी भूमिका मात्र दर्शक की मान बैठे तब तो न काव्य की आवश्यकता है और न जननेता की। आमूल और लूपिका के माध्यम से लेखक का कथ्य है - 'जिन्दगी एक-सी नहीं रहती। इसमें हर तरह की घटनाएं घटित होती रहती हैं। इसलिए प्रायः हर कुछ को एक तटस्थ दर्शक की भांति ही देखना चाहिए। अत्याधिक लगाव का कहीं भी कुछ भी मतलब नहीं होता।' (पृ० 53) 'मतलब' पर गौर करें तो हमारा मतभेद हो सकता है और इसलिए कृति का संदेश-स्वर हमें आकृष्ट नहीं कर सकता।

परन्तु कृति का वह पक्ष प्रशंसनीय है जहां पात्र अपने को निरावृत्त कर अपने को (अपने नंगेपन को) देखने की चेष्टा करते हैं ।

कथन की विचित्र शैली, पात्रों के अति नूतन नाम, वाक्यों का गठन, चिन्तन पर दर्शन का आरोपण एवं नये कथाकारों के 'लटके' इस कृति में मौजूद हैं जिनके अभाव में सम्भवत: लेखक को भय था कि यह नयी कथा-कृति नहीं बन पाएगी । पर यह भय दूर हुआ । अंग्रेजी और भोजपुरी के शब्द प्रयोग होने से लेखक की भाषा-क्षमता का पक्ष उजागर हुआ है । घटना-प्रवाह और औत्सुक्य के अभाव में ऊब के दर्शन पर टिकी आंखों वाले पाठक का जी भी ऊबेगा इसमें संदेह नहीं ।

['समीक्षा' से साभार]

*पुरानी कहानियाँ : नये संकलन

- मधुरेश

हिन्दी कहानी के विकास की वर्तमान स्थिति में पिछली पीढ़ी के कतिपय प्रमुख कहानीकारों की प्रिय और प्रतिनिधि कहानियों के संग्रह कई दृष्टियों से उपयोगी हो सकते हैं । एक ओर उन्हें पढ़कर आज की युवा पीढ़ी

---

* – समीक्षित पुस्तकें :-

(क) मेरी प्रिय कहानियां ; ले० भगवती प्रसाद वाजपेयी ; प्र०: राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली – 6; मूल्य : 5.00 ।

(ख) मेरी प्रिय कहानियां ; ले० यशपाल ; प्र०: राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 6; मूल्य : 5.00 ।

(ग) मेरी प्रिय कहानियां ; ले० उपेन्द्रनाथ अश्क ; प्रकाशक : राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6 ; मूल्य : 5 रुपए ।

(घ) मेरी प्रिय कहानियां ; ले० अमृतलाल नागर ; प्र०: राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 6; मूल्य ; 5 रुपए ।

पर जहां उनके प्रभाव की खोज दिलचस्प हो सकती है वहीं नई पीढ़ी के बीच उनकी स्थिति और सार्थकता के बिन्दु पर खड़े होकर भी इन कहानियों को पढ़ा जा सकता है। इसके अलावा एक तीसरे ढंग से भी ये कहानियां देखी जा सकती हैं - कहानी के विकास में ये अलग-अलग कहानीकार क्या अहमियत रखते हैं और इस तरह एक दूसरे की पारस्परिकता में स्वयं उनकी स्थिति क्या है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियां सामान्यतः उस युग की कहानियां हैं, जब हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आदर्शवाद का दौर-दौरा था। उनकी आरम्भिक कहानियां 'निंदिया लागी' और 'मिठाईवाला' में ही नहीं 'टिकुली', 'रेशम के धागे', 'एक आंसू खून का' तथा 'मैना बोली' में भी इस आदर्शवादी टोन को बखूबी देखा जा सकता है। 'दुग्धपान' का एक पात्र चित्रकार गगन कहता है '-----मैं विश्वात्मा को अलग नहीं देखता वह अलग है भी नहीं, मैं तो उसे विश्व में ही निहित देखता हूं। मनुष्य में यदि कुछ बुराइयां - कमजोरियां भी हैं - अनेक भलाइयों और सद्‌गुणों के साथ-साथ तो मेरे लिये वह वन्दनीय है। उसका अन्तर मेरा दर्पण है। मैं उसमें अपने को देखना चाहता हूं----।' (मैना बोली, पृ० सं० 161) त्याग, बलिदान, पश्चात्ताप और आत्मशुद्धि की राह चलती ये कहानियां एक ओर जहां जीवन की जटिलता एवं संश्लिष्टता से बची रहती हैं वहीं दूसरी ओर अतिशय सरलीकरण के आग्रह से ग्रस्त भी दिखाई देती हैं और यह दूसरी स्थिति शायद पहली की ही स्वाभाविक परिणति है। 'मिठाईवाला' में रोहिणी की जिज्ञासा एक सामान्य पाठक की जिज्ञासा भी हो सकती है, मिठाई वाले को लेकर और उसके उत्तर में वह जो कुछ कहता है - सन्तोष और धीरज में अपार सुख मिलने वाली बात- वह लगभग सारी कहानियों के प्रमुख पात्रों पर लागू होता है। मानवीय सत्‌प्रवृत्तियों के रेशमी धागे इन कहानियों के कलात्मक विकास में अवरोधक ही अधिक बनते हैं, क्योंकि वहां सब कुछ पूर्व निश्चित और पूर्व स्थिर-सा लगता है। 'सीढ़ियां' की संकेतधर्मिता, 'जहां सभ्यता सांस लेती है' का स्वनिर्मित राहों का आग्रह और 'पंडित सीताराम' का व्यंग्य, अपनी सारी स्थूलता के बावजूद, इस आदर्शवादी टोन को कहीं-कहीं अतिक्रमित करते से दिखाई देते हैं

यशपाल की कहानियां इस अतिक्रमण को और भी गहराई से रेखांकित करती दिखाई देती हैं। एक बार मैंने स्वयं यशपाल जी से उनकी बारह प्रिय कहानियों के नाम पूछे थे और उत्तर में उन्होंने कहा था कि वह अपनी राय को

पाठकों के ऊपर आरोपित नहीं करना चाहते और यह भी कि इस मामले में पाठकों की राय का महत्व ही अधिक है। स्वयं चुनी कहानियों के इस संग्रह में इस परेशानी को वह एक और ढंग से बचाते दिखाई देते हैं। सत्रह कहानियों में इस संग्रह में ग्यारह ऐसी कहानियां हैं जिन्हें श्रेष्ठ या महत्वपूर्ण समझकर वह अ संग्रहों का नामकरण उन्हीं के आधार पर कर चुके हैं – और शेष छह वे कहानियां हैं जो अपेक्षाकृत चर्चित और सुख्यात रही हैं। लेकिन इसमें कोई नहीं कि इन कहानियों को पढ़कर यशपाल के बारे में, उनके सम्पूर्ण कृतित्व के बारे में, एक धारणा बनाई जा सकती है। इसमें एक ओर उनकी वे कहानियां शामिल हैं जिनमें वह किसी भी प्रकार के झूठे आदर्शवाद से बच कर 'प्रयोजन और परिणाम की प्रतिष्ठा' की कहानी की परख का मूलाधार बनाने की हिमायत करते हैं, तो दूसरी ओर 'धर्म रक्षा' और 'प्रतिष्ठा का बोध' जैसी वे कहानियां भी जिन्हें लेकर कभी तूफान भी उठ चुका है और आज इस संग्रह में उन कहानियों को पुनः शामिल करके लेखक या तो फिर एक बार पाठकों और आलोचकों की परख को चुनौती देता है या फिर अपने को पुनः 'जस्टीफाई' करना चाहता है।

जो भी हो, यशपाल की ये कहानियां बड़े सीधे और स्पष्ट ढंग से उनके विचारों को व्यक्त करती हैं। उनकी कहानियों के बारे में मैंने ही एक से अधिक बार यह कहा है कि वह किसी नये प्रयोग या राह के अन्वेषण की अपेक्षा अपनी परम्परा की रक्षा में ही अधिक दत्तचित्त रहे हैं। ये कहानियां एक ऐसे लेखक की कहानियां हैं जो किसी भी प्रकार के कल्पित आदर्शवाद से मुक्त होकर नई स्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप नये आदर्श गढ़ना चाहता है, जो आडम्बर और मुखौटों को उतार कर जीवन के सहज और स्वाभाविक विकास पर बल देता है। 'तर्क का तूफान' का अवध कहता है 'जो पर्दा जीवन में आ सकने वाली किरण को रोके है, उस पर जीवन निछावर कर देने से क्या लाभ ? ---- जीवन का द्वार खुला रहना बेहतर है, शायद प्रकाश की दूसरी किरण मिल सके' (पृ० सं० 65) यह अतीत के ढूह पर वर्तमान के निर्माण का आग्रह है, हर प्रकार को अकर्मण्यता और शैथिल्य से उबर कर। 'ज्ञानदान' और 'धर्मरक्षा' जीवन को किताबी ज्ञान और झूठे आदर्शों से अधिक महत्वपूर्ण मानने का आग्रह दिखाती हैं और 'धर्मरक्षा' विशेष तौर से उन दुष्परिणामों की ओर भी संकेत करती है जो जीवन के प्रकृत मार्ग को हठवश त्याग कर आडम्बरों को ही सत्य समझने से पैदा होते हैं।

आर्य समाज और तथा कथित वैदिक धर्म की आडम्बर-प्रिय रूढ़ियों को यह कहानी बड़ी तल्खी से स्पष्ट करती है और इतने समय बाद दुबारा पढ़ने पर भी मुझे वह एक सार्थक और महत्वपूर्ण कहानी लगती है जबकि उसी की समान-धर्मा 'प्रतिष्ठा का बोझ' एक निहायत लचर कहानी है, क्योंकि यह उद्देश्यगत प्रखरता उसमें कहीं दिखाई नहीं देती और लक्ष्मी और खत्रानी के यौन प्रसंगों की भी कोई सार्थकता उसमें नहीं दीखती – सफेदपोशी की प्रतिष्ठा के निबाहने के जिस आग्रह की बात उसमें कही गयी है उसके लिये यूं भी वह अनिवार्य और अपरिहार्य स्थिति नहीं थी। 'भस्मावृत चिनगारी' कला और जीवन के सम्बन्ध को रेखांकित करती है। म्रियमाण नरकंकाल को मृत्यु की यातना से बचाने पर कलाकार का चित्र भले ही अधूरा रह गया हो लेकिन जीवन और मानवता की रक्षा इससे अवश्य हुई है। कलाकार के विरोध पर 'मैं' सोचता है, 'मेरा दुर्भाग्य यह कि मुझे अपने अपराध के लिये पश्चाताप का साहस भी नहीं' (पृ० सं० 76) यशपाल की कहानियों के सिलसिले में इस बात को किंचित् जोर दे कर कहने की आवश्यकता है कि यह 'मैं' वहां बहुधा ही उपस्थित रहता है – कभी इसी प्रकार स्पष्ट और सीधे रूप में, तो कभी किसी पात्र के कन्धे पर अपना मुखौटा रख कर। जिसे 'विचारों का साहित्य' कहा जाता है, उसकी यह शक्ति भी है और सीमा भी। सीमा के रूप में वह यशपाल की कहानियों को शिल्पगत एकरूपता से कभी उबरने नहीं देती और तब 'धर्मयुद्ध' और 'समय' जैसी कहानियां उनके सम्पूर्ण लेखन में एक सुखद अपवाद ही अधिक लगती हैं।

यशपाल की कहानियों की इस शिल्पगत एकरूपता से उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियां हमेशा ही मुक्त रहती दिखाई देती हैं। अपने संग्रह की भूमिका में अश्क जी ने लिखा भी है कि यशपाल या जैनेन्द्र की भांति एक ही रंग की कहानियां लिखना उन्हें कभी प्रिय नहीं रहा। अश्क जी की भूमिका से यह भी स्पष्ट होता है कि इस संग्रह या सम्पूर्ण पुस्तकमाला के मूल उद्देश्य को उन्होंने ही कदाचित् सबसे अधिक गम्भीरता से लिया है। 'डाची' और 'कांकड़ा का तेली' जैसी प्रारम्भिक कहानियों से लेकर उन्होंने 'आकाशचारी' और 'अजगर' जैसी नवीनतम कहानियां भी इस संग्रह में रखी हैं और इसी मिले-जुले चुनाव के लिए 'मां और पिता की दृष्टि का चुनाव' कहा है। अश्क की कहानियों के विकासक्रम को यदि देखा जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि उनमें क्रमशः एक संश्लिष्टता आती गयी है और वैविध्य का अभाव भी वहां नहीं है – न शिल्प की दृष्टि से और न ही विचारों की दृष्टि से। और इस धरातल पर वह अपनी पीढ़ी में कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानीकार ठहरते हैं।

उनकी प्रारम्भिक और अन्तिम कहानियों को एक साथ पढ़ने पर एक झटका-सा लगता है - एकरूपता के अभाव और वैविध्य का झटका। जिस में उनकी विकास-यात्रा का मूल सत्य निहित है। मुझे ऐसा लगता है कि अपनी भूमिकाओं और वक्तव्यों के कारण ही अश्क जी की कहानियों का सही मूल्यांकन नहीं हो सका है क्योंकि उनके फतवों ने जहां उनकी अपनी कहानियों के बारे में धुन्ध पैदा की है वहीं दूसरों को विद्वेष के लिए भड़काया है। 'अंकुर' असमान विवाह और गहनों के प्रेम से शुरू होकर, प्रेमचन्द की कहानियों के ढंग पर, अपने युवा शरीर की आवश्यकताओं की चेतना के अंकुरित होने की स्थिति की कहानी बन जाती है। 'चारा काटने की मशीन' हास्य कहानी के ढंग की कहानी होने पर भी अपनी पीड़ा में एक गहरे अर्थ को ध्वनित करती है जहां स्वयं इन्सान चारा काटने की मशीन जैसा अनुभूतिशून्य और स्पन्दनहीन हो उठा है। 'आकाशचारी' और 'अजगर' यदि एक ओर अपनी संश्लिष्टता के लिये महत्वपूर्ण हैं तो मुझे दूसरे कारण से भी उनकी चर्चा जरूरी लगती है। सही या गलत 'आकाशचारी' के लिये यह कहा गया है कि वह 'अज्ञेय' के ऊपर लिखी गयी - पता नहीं कहां, लेकिन मुझे लगता है कि मैंने इसे सुना है, और जब इस बार दुबारा इस कहानी को पढ़ा तो ध्यान में वह बात थी। मुझे सारे संकेत बड़े स्पष्ट लगे हैं, वात्स्यायन और वैशम्पायन जैसे नामों का साम्य ही नहीं दोनों का उपन्यासकार, कहानीकार और कवि होने के अलावा क्रान्तिकारी होना भी। असम यात्रा जैसे छोटे-छोटे प्रसंगों में भी यह साम्य देखा जा सकता है। विदेश यात्राएं और विदेश में रचनाओं का प्रकाशन आदि एक प्रवृत्ति को जरूर उभारते हैं लेकिन फिर भी व्यक्ति ही वहां अधिक उभरता है। मैंने शमशेर को कभी नहीं देखा, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि संजीव के नाम से जिस प्रगतिशील कवि का जिक्र इसमें किया गया है, जो बाद में प्रशान्त जी के हाथों बिक जाता है, वह शमशेर ही है। इन सारी बातों को इतने विस्तार से लिखकर मैं यह कहना चाहता हूं कि यह ठीक है कि 'आकाशचारी' ऐसे व्यक्ति को सामने लाती है जो आभिजात्य का मुखौटा ओढ़े हुए है, जो पुरस्कार और प्रकाशन पर छाया है, जो तिकड़म से ही सही, देश में ही नहीं विदेश में भी एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया है। लेकिन सारी बातों के बावजूद यह कहानी वैसा प्रभाव नहीं छोड़ पाती जैसा इसी ढंग की रवीन्द्र कालिया की कहानी 'काला रजिस्टर' छोड़ती है। इसका उत्तर सिर्फ यही हो सकता है कि जहां कालिया की कहानी व्यक्तिगत सन्दर्भों का अतिक्रमण करके वर्ग और प्रवृत्ति के चित्रण के आग्रह को रेखांकित करती है वहां 'आकाशचारी' में अनावश्यक होते हुए भी व्यक्तिगत विद्वेष की गन्ध अधिक है और

यह अनुदारता ही उसे एक सीमित प्रभाव की कहानी बना देती है। वैसे इलाहाबाद के ही एक युवा कहानी लेखक से यह भी पता चला है कि स्वयं अश्क जी 'अजगर' को भी किसी व्यक्ति विशेष पर लिखी कहानी बताते हैं। परन्तु उसमें स्थिति की जटिलता ही अधिक उभरकर आयी है, जो उसकी संश्लिष्टता को खंडित होने से बचाती है और इस प्रकार वह अपेक्षाकृत एक सफल कहानी बन पड़ी है।

अमृतलाल नागर की स्थिति इन सबसे कुछ भिन्न है। उन्होंने कहानियां कम ही लिखी हैं और अपनी भूमिका में उन्होंने यह शिकायत भी की है कि लोगों ने उनकी कहानियों को गम्भीरता से नहीं लिया। उनके इस संग्रह में उन्हीं की 'दो आस्थाएं', 'जुएँ', 'पढ़े लिखे बराती' जैसी कहानियां न देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। इस संग्रह की ग्यारह कहानियां उनकी पैंतीस वर्षों की कथायात्रा को समेट कर चलती हैं। इन कहानियों के बारे में उनका आग्रह है कि "----हां, यह अवश्य कहना चाहता हूं कि मेरी यह रचनाएं जीवन के यथार्थ बोध से निस्सन्देह जुड़ी हुई हैं----मैंने शिल्प के लिये शिल्प का मन्त्र आज तक नहीं साधा----।" इस प्रकार ये कहानियां, 'शकीला की मां' और 'कादिर मियां की भौजी' जैसी शुरू की कहानियां भी, अपने परिचित यथार्थ और परिवेश को बड़ी सादगी के साथ सामने रख देती हैं जिनमें लखनऊ के प्रति लेखक का आग्रह ही नहीं स्पष्ट होता उसका रंग और मिठास भी मिलती है। इन कहानियों में बहुधा ही छद्म आधुनिकता को उघाड़ कर रखा गया है और किन्हीं सामान्य से दिखाई देने वाले बिन्दुओं को आस्था का आधार बनाया गया है। 'सूखी नदियां' में वह आधार प्रोफेसर वर्मा है जो कहानी में कहीं नहीं आता लेकिन जिसकी सादगी और मानवीय गुणों के कारण ही उसकी पत्नी उसे छोड़कर मिसेज अहमद बन जाती है। इसी प्रकार 'मां-बाप और बच्चे' में भी उन आधुनिक लोगों पर तीखा व्यंग्य है जो अपने बच्चों को मनमाने विकास के लिये छोड़ कर समाज में बच्चों के प्रति कर्तव्य पर भाषण देते हैं, जबकि घर पर उनका सोलह साल का लड़का पच्चीस साल की आया से इश्क फरमाता है और शिकायत करने पर निकाला भी उस आया को ही जाता है। नये पुराने का द्वन्द्व और प्रगतिशील मूल्यों की हिमायत की दृष्टि से 'धर्मसंकट' और 'मोती की सात चलनियां' संग्रह की महत्वपूर्ण कहानियां हैं। 'एक दिल हजार दास्तां' किस्सागोई की शैली में एक प्रयोग तो है ही, कला को जीवन से जोड़ने के आग्रह को भी स्पष्टता से उभारती है।

इस प्रकार आदर्शवाद से शुरू हुआ कहानियों का यह दौर प्रतिबद्धता के रास्ते से होकर जीवन की समानान्तरता में प्रवहमान दिखाई देता है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी स्थिति यही है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियों की भाषा बनावटी और आडम्बरपूर्ण भाषा का उदाहरण ही अधिक है जिसमें 'पीपल के पल्लव के समान हृदय दौलित रहता आया है।'----- भोजन की मिठास के लिये भी जहां 'मधुर' के बिना काम नहीं चलता और 'अधर रस' तथा 'सलिल विहारिणी मछलियां' जैसे प्रयोग जहां आम बात हैं। यशपाल की स्थिति इससे बहुत बेहतर होते हुए भी स्पृहणीय नहीं कही जा सकती जबकि अश्क और नागर की कहानियों की भाषा आज की कहानियों की भाषा के अपेक्षाकृत अधिक निकट लगती है। लेकिन सब कुछ के बाद यही वह पुल है जिस पर होकर आज की कहानी की यह लम्बी यात्रा सम्पन्न हुई है। एक तरह से दूसरों के लिये माध्यम बन सकने के सन्तोष को पुल की उपलब्धियों के तौर पर भी लिया जा सकता है और वही शायद एक महत्वपूर्ण बात को सही दृष्टि से देखना होगा।

['समीक्षा' से साभार]

* पागल कुत्तों का मसीहा

– रामेश्वर प्रेम

हिन्दी कहानियों के सन्दर्भ में यह बात अप्रासंगिक नहीं है कि समीक्षार्थ कहानियों अथवा पाठकों द्वारा चर्चित कहानियों की चर्चा में अक्सर कवियों द्वारा लिखी गई कहानियों की जानबूझ कर उपेक्षा की गई है। अपनी सहज रचनाधर्मिता को किसी खास विधा तक सीमित करते रहना या छिटपुट ढंग से अन्य विधाओं में भी रचना करते रहना निश्चय ही रचनाकार की मानसिकता से सम्बद्ध क्रिया है और इस प्रश्न का समुचित रूप से समीक्षा जगत में समाधान अभी तक नहीं हुआ है। रचनाकार साहित्य की प्रचलित भाषा-शैली, नैरन्तर्य से प्राप्त साहित्यिक अभिव्यक्ति के नए आयाम निरूपित करता हुआ अपनी रुचि के अनुसार अभिव्यक्ति के खास आयाम ढूंढ़ लेता है। यह प्रश्न रचनाकार के वर्तमान और उसके अनुभव से संबद्ध है। कवि सर्वेश्वर का नया कहानी संग्रह 'पागल कुत्तों का मसीहा' उनकी कवि-दृष्टि से संश्लिष्ट है। यही कारण है कि परम्परित फन्तासी के रूपों से भिन्न 'व्यक्ति-जीवन-अनुभव' का सफल और मार्मिक निदर्शन 'पागल कुत्तों का

---

* लेखक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ; प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ; मूल्य : 5 रुपए।

मसीहा' एवं इस संग्रह की अन्य कहानियों में हो पाया है। कदाचित् सर्वेश्वर अपने साहित्य में 'मानवीय करुणा' एवं विवेक से प्राप्त जीवन आयामों को अनुभव की ठोस जमीन पर देखते हैं। इस संग्रह की कहानी 'पुलोवर' अपने रचनागत तत्वों के कारण व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी, अनुभव की सम्प्रेषणीयता के कारण रोजमर्रे के जीवन से संलग्न लगती है। यह दिनचर्या में व्याप्त दुख रचना के आन्तरिक स्तर पर व्यक्ति के सामान्य दुख को एक गहरे ममत्व से संयुक्त कर देता है। इस संग्रह की तमाम कहानियां रंग तत्व की दृष्टि से अपने स्वाद और तेवर में और अभी तक लिखी जाने वाली तमाम कहानियों से अपनी भाषा और मुहावरे में अलग हैं। वस्तु के प्रति कवि दृष्टि को अपेक्षा में ये कहानियां जीवन और उसके प्रामाणिक अनुभवों से भी उतनी ही जुड़ी हैं जितनी क्रियात्मकता और फन्तासी के साथ घुल-मिल कर 'लड़ाई' का सत्यव्रत चलता है। किसी खास व्यवस्था और मकसद से उठी हुई ये कहानियां अपने स्थान और पात्र के साथ समय को इस प्रकार लेकर चली हैं कि सत्यव्रत की 'लड़ाई' में आम आदमी का जीवन और उसके सही अस्तित्व के लिए संघर्ष जुड़ गया है। इस दृष्टि से सत्यव्रत का जीना और बेमौत मर जाना, जीने के सही मार्ग के लिए निरन्तर जूझते रहना, संभवतः यह बताने को काफ़ी है कि सामाजिक समझौते के आधार पर आज का आदमी (इस व्यवस्था में) अपने ध्रुव से गिरता जा रहा है। हालांकि यह केवल एक निर्णय है जहां तक पहुंचा जा सकता है।

'अन्धेरे पर अन्धेरा', 'तीन लड़कियां एक मेढ़क' और बहुचर्चित 'पागल कुत्तों का मसीहा' कहानियां आभ्यन्तर यथार्थता के साथ ही जीवन के किसी गहरे सच्चे अर्थ को तलाश करती हैं। इस अर्थ में सर्वेश्वर के रचना-समाज में सत्यव्रत के लिए लिखी गई 'लड़ाई', तीन लड़कियों के लिए खोजा गया 'मेढ़क' और 'अन्धेरे पर अन्धेरा' में अपने आपसे जूझती औरत का संघर्ष प्रतिभासित होता है। कहानियों के पात्र सच की तलाश में हैं और वे उससे झुलसे हुए, विपर्यय और विभ्रम को इस सामाजिक व्यवस्था में पालकर चलते हुए, पीड़ा को कहीं अन्दर तक भोगते और मानवीय-करुणा से उत्प्रेरित होते हुए चलते हैं, क्योंकि उनके लिए बिना भ्रम को पाले चल सकना मुश्किल है। उनके लिए जो 'कुछ है' और उसके 'अन्दर जो है' दोनों में गहरी अतलान्तिक-दूरी है। सर्वेश्वर के समाज में 'रचना के अनुभव का प्रयोजन' और समाज और उसके विस्तार के बीच का एक गहरा व्यापक क्षेत्र समाहित है। सच ही इन कहानियों में रचनाकार के अनुभव और समाज तथा उसके

विस्तार के अत्यन्त निकट के मानवीय क्रिया-कलाप हैं, जो दुख और करुणा से आप्लावित हैं और वे कहीं तल्ख होकर गुजरते हुए किसी स्थिति को कुरेदते हैं, जबकि उनमें जीवन के प्रति अनास्था नहीं है बल्कि एक अनवरत जागरण है। वस्तुतः एक अच्छा कवि – अच्छा गद्यकार भी प्रमाणित होता है। 'रुचि वैचित्र्य' के कारण जिन गद्यकारों अथवा 'कहानी-आन्दोलनों' को केवल 'हंगामा' से समझ कर क्रियायें-प्रतिक्रियायें जाहिर करके जिन समीक्षकों ने ऐसी रचनाओं की भाव-भूमि पकड़ने की कोशिश जान-बूझ कर नहीं की है, मेरी राय में वे पूर्वाग्रह से पीड़ित और अधिक रंजित विचार वाले सामन्ती-रचनाकार-समीक्षक हैं जिनकी नज़र में एक कवि केवल कवि और एक कहानी-कार केवल कहानियों से ही पहचाना जाता है। यह पूर्वाग्रह मात्र एक 'शहीदाना' रोमांटिक भाव है। मेरी राय में, ऐसे गद्य और केवल गद्य रचनाकारों को कुछेक अच्छे कवियों की कविताएं और कहानियां भी पढ़नी चाहिएं। यह लिखने का आशय कदापि यह नहीं है कि गद्यकार को और केवल गद्यकार को – 'कविता' लिखना ही चाहिए। बल्कि यह है कि रचना को, रचनाकार की ख्याति (जिस रूप में भी आ गई हो) के 'लेबल' के साथ पढ़ना और निर्णय ले लेना या पूर्व निर्णय पर आश्रित रहना एक प्रकार की मानसिक अनु-शासनहीनता है जो रचनाकार को ख़ास कटघरे में ही देखना पसन्द करती है।

श्री सर्वेश्वर की कहानियां अपने निजी सुख-दुख, अनुभव-परिवेश और सामाजिक मूल्यों के विघटन के बाद भी आदमी के भीतर उसे अपने आपसे जोड़ती हैं। इस यात्रा क्रम में उनका स्वचिन्तन – कहानियों के सम्वाद क्रम में आकर्षक रूप से आता है। फेबल्स-शैली में सामाजिक झूठी अर्थ-व्यवस्था, सम्बन्धों और निरन्तर एक ढोंग का रहस्योद्घाटन करती हुई ये कहानियां वर्तमान से इस प्रकार घुली-मिली हैं कि उसकी वर्तमानता खत्म नहीं होती। 'पागल कुत्तों का मसीहा', 'लड़ाई', 'अन्धेरे पर अन्धेरा' ऐसी ही कहानियां हैं, और बिल्कुल निजी ढंग की कहानी 'पुलोवर' भी – अपनी सामाजिकता में – एक विस्तार प्रकट करती है – यही कहानीकार सर्वेश्वर की विशिष्टता भी है।

*अनित्य

— बदरीदत्त पाण्डे

श्री बदीउज़्ज़मां का कहानी संग्रह 'अनित्य' ग्यारह कहानियों का संकलन है। इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है सायास प्रक्षेपित 'मेनेरिज़्म' का अभाव और अनुभव को संप्रेषित करने के लिए सहज रूप से प्रकट अनेक शैलियां। इन ग्यारह कहानियों में लेखक स्पष्ट रूप से चार-पांच शैलियों में सृजन करने में सफल हुआ है। जहां 'घर', 'शीशमहल' और 'ऋण' में अतीत के प्रति मोह झलकता है वहीं 'मिटते साए' और 'परदेसी' में इसी अतीत-मोह से युग के बदलते हुए परिवेश के भीतर 'मौलवी इसहाक़' और 'छाको' के चरित्र जिस परिस्थिति के शिकार हुए हैं उससे लेखक ने हृदय के भीतर छिपी मानवी-करुणा और ममता की अनन्त गहराइयों की ओर इंगित किया है। दोनों ही युग परिवर्तन से अपना मानसिक समंजन नहीं कर पा रहे हैं, एक सामन्तवादी संस्कृति के क्षय से और दूसरा देश के बटवारे से। परन्तु उनका व्यक्तित्व खण्डित नहीं हो पाया है। उनमें कटुता के स्थान पर सरलता का ही उन्मेष है और इसीलिए वे युग की आस्थाविहीन धारा में

---

* लेखक : बदीउज़्ज़मां; प्रकाशक : दी अकेडेमिक पब्लिसर्ज़ (इण्डिया), नई दिल्ली-5; मूल्य : 4 रुपये।

नहीं बह पा रहे हैं। अतः वे वास्तव में अतीत के पात्र न होकर भविष्य के पात्र हैं क्योंकि भविष्य में जीने के लिए व्यक्ति को जिस तीव्रतर अनुभूति, क्षमता और आस्था की आवश्यकता होगी वह उनमें विद्‌यमान है। वे मात्र युग के विस्थापित हैं नवयुग के नहीं। बाकी सभी कहानियों के समान ही इन में भी लेखक ने आधुनिकता की बहु-आयाम पूर्ति का एक आयाम प्रस्तुत किया है। इसलिए ये कहानियां नई कही जाने वाली कहानियों से कहीं अधिक नयी हैं। यह श्री ज़मां की दृष्टि की विशेषता है। देश के दो भाग हो जाना समस्या नहीं है पर हृदय के दो भाग न हो सकने पर भी कानून द्‌वारा उसे दो भाग में बांटा हुआ मानना प्रलय है, यह 'परदेसी' की मूल संवेदना है। मानसिक स्तर पर भी विभाजन सम्भव है क्योंकि मन अनेक प्रभावों से निर्मित हुआ है। हृदय ही एक कर सकता है, और उसे खण्ड-मानसिकता के प्रभाव से, कानून के प्रभाव से मुक्त रहना चाहिए। छाको के आंसू कानून के नियमों से भी शक्तिशाली हैं।

'बैलेंस' और 'बोझ' ये दो कहानियां एक दूसरी मनोवैज्ञानिक समस्या को प्रस्तुत करती हैं जो युग की ही देन है। मानव-संबंधों में औपचारिकता और व्यक्तिगत स्वार्थ से हृदय किस प्रकार सीमित और कुंठित हो जाता है यह इन कहानियों का विषय है। बोध में रवींद्र का चरित्र अन्य दो पात्रों का 'फॉयल' है। वह पृष्ठ भूमि है जिसके सामने दोनों पात्रों की मिथ्याचारिता प्रकट हो जाती है। इस पात्र की अवतारणा लेखक की कलाकुशलता की परिचायक है। इस पात्र का उल्लेख किए बिना भी कहानी सफल हो सकती थी, पर लेखक अपना संदेश देने में असमर्थ रहता और कहानी अपनी मार्मिकता खो देती। 'बैलेंस' में रमेश का अपनी प्रेमिका से संबंध स्वार्थ पर आधारित है। वह एक अनुभवी प्रेमी है जो कहानी में अवसाद का वातावरण उत्पन्न करता है। उसके प्रति लेखक ने किसी प्रकार की सहानुभूति उत्पन्न नहीं की है। उसकी पात्र तो वह प्रेमिका है जिसका मानसिक संतुलन घड़ी के बैलेंस के समान ही जैसे बिगड़ गया है। कहानी में संवाद छोटे हैं जो लड़की के जीवन के अवसाद और अर्थहीनता को बड़ी खूबी से व्यक्त करते हैं, जिसे रमेश की हृदयहीनता उजागर करती है।

'बैलेंस' आधुनिकता का दम भरने वालों की शब्दावली में रोमांटिक कहानी कही जाएगी, पर यह कहानी की सूक्ष्म कला का उपहास करना होगा। यह तो स्त्री और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण और विकर्षण की कहानी है। इस लारेंसियन प्रत्यय को दो पात्रों के द्‌वारा श्री ज़मां ने एक लघुकथा में व्यक्त किया है, पर इस अदम्य वृत्ति को श्री ज़मां की करुणा ने बैलेंस टूट जाने से

संबद्‌ध कर जो घुमाव दिया है उससे कहानी का अवसादपूर्ण वातावरण जैसे हल्का हो उठता है। सेक्स के प्रति एक नये दृष्टिकोण से देखने को हम बाध्य होते हैं जिसमें भविष्य के लिए आशा भी है और बैलेंस बनाये रखने का आग्रह भी – जिसके बिना चेतनाधारा उन्मुक्त नहीं वह सकती। क्योंकि प्रेम का एक सामाजिक पक्ष भी है – यानी समाज चूँकि समष्टिगत संकल्प की अभिव्यक्ति है अत: प्रेम का परस्पर उन्मुक्त वितरण उसे सुन्दर और स्वस्थ बनाता है, नये समाज के निर्माण की प्रेरणा देता है और उस संघर्ष में मृदुता, कोमलता, करुणा और उत्साह प्रदान करता है। स्त्री पुरुष के प्रेम के इस सामाजिक उन्मुक्त वितरण के अभाव में उसकी मात्र परिणति हो सकती है अवसाद और अंधकार से भरा गोपन-संबंध और उससे घबड़ा कर प्रेम का घृणा, देह-मोह और देह-द्रोह में बदल जाना। ऐसा संबंध जीवन की ऊब से एक अर्थहीन पलायन है। इस पलायन के सहारे व्यक्ति कुछ समय के लिए अपने अहं से मुक्ति पा लेता है। जितना अधिक भुलावा देने की शक्ति किसी अनुभव में होगी उतना ही अधिक उससे मोह होगा। सेक्स अहं से कुछ क्षणों के लिए सबसे अधिक मुक्ति प्रदान कर सकता है, अत: उतना ही गहरा आकर्षण भी उपस्थित कर सकता है। 'बैलेंस' की नायिका इसी मनोवैज्ञानिक धरातल पर जी रही है। अपने भीतर के खोखलेपन से ऊब कर रमेश उसके लिए पलायन का प्रतीक बन गया है। यह एक मिथ्या संबंध है, और आज का समाज इस पर ही आधारित है।

'एक दायरा और', 'अनित्य' और 'विरेचन' भी विशेष परि-स्थितियों में व्यक्ति के मानसिक संघर्ष की कहानियां हैं। इन तीनों की शैली और मूड में साम्य है और तीनों अत्यधिक सफल कहानियां हैं। इनमें मन के भीतर चलने वाले संवाद तीव्रता लिए हुए और स्पष्ट हैं। अनेक आधुनिक कहानीकारों की तरह लेखक ने अस्पष्टता और निरर्थक विचारों की टकराहट से कहानी को आगे नहीं बढ़ाया है। सग्रह की सभी कहानियों में 'अनित्य' सबसे सफल नयी कहानी है। इसमें नायक एक प्रकार की अपराध की भावना से त्रस्त है। विज्ञान की प्रगति हो रही है, मनुष्य का मन 'मंगलशशि लोलुप' है, पर उसके भीतर पाषाण युग का मानव अभी नहीं मर सका है। वह आगे बढ़ने की हविस में इतना निष्ठुर हो गया है कि अपने आसपास जो दुख-कष्ट दीख रहे हैं उनसे वह आँखें मूँदे है। उसके ऊपर सभ्यता की अनेक परतें जम गई हैं और कभी-कभी उन परतों के भीतर से उसका हृदय-सत्य उसे अपने भीतर देखने के लिए बाध्य करता है। वह 'जानी पहचानी आवाज़' उसे बता देती है कि वह एक अपराधी है, मानव-मात्र के प्रति। यह कहानी अपनी अनुभूति की तीव्रता, संप्रेषणीयता और सुघट्यता में अद्वितीय

है। एक शब्द, एक अभिव्यक्ति अपने स्थान से नहीं हटायी जा सकती क्योंकि एक-एक शब्द सार्थक है, संकेतपूर्ण है।

संग्रह की पहली कहानी 'चौथा ब्राह्मण' मैं अन्त में लूंगा। यह एकालाप शैली में लिखी गई है और एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति की कथा है, जिसका हृदय जीवन के प्रारम्भिक वर्षों के कटु अनुभवों और संघर्षों से करुण-कोमल नहीं बन सका बल्कि अतीत के प्रति एक प्रतिक्रिया बन गया है। यह प्रतिक्रिया है अपने को कुछ बना सकने की महत्वाकांक्षा और उसके कारण एक 'रैट-रेस' में आगे दौड़ते रहने की लालसा जैसे पंचतंत्र का चौथा ब्राह्मण। इस कहानी का कैनवस काफ़ी विशाल है और एक उपन्यास का विषय हो सकता है।

श्री ज़मां के संग्रह की ये सभी कहानियाँ युगबोध के अनेक शिखरों का स्पर्श करती हैं और उनकी प्रमुख विशेषता है अनुभूति की सच्चाई और प्रभावोत्पादन के लिए किसी भी क्लिष्ट कल्पना विकृति और चौंका देने वाले विचार का सहारा न लेना। बिना इस प्रकार के 'मैनेरिज़म' के भी कहानियां इतनी सफल हो सकी हैं यह श्री ज़मां की तीव्र संवेदनशीलता और सत्यहृदयता का परिचायक है, इसमें संदेह नहीं। इनमें भविष्य की कहानी का स्वरूप अनेक आधुनिक कही जाने वाली कहानियों की तुलना में कहीं अधिक स्पष्टता से सामने आया है।

* जिन्दगी भर का झूठ

– सुरेश सलिल

हिन्दी के कुछ स्वनामधन्य रचनाकारों की दृष्टि में सृजन सर्जक के लिए उतना ही वैयक्तिक है जितना वैयक्तिक उसका नितांत निजी अनुभव । इस प्रकार की समझदारी को लेकर चलने वाले लोग आज कविता में भी हैं और कहानी में भी। उनके लिए न तो समाज का ही कोई महत्व है और न देश-काल का। उनका समाज और उनका देश-काल अगर कुछ है तो केवल उनका व्यक्ति। अपने व्यक्ति के सिवा उनके सामने और उनके चारों ओर कुछ भी नहीं है। ऐसे लोगों ने ही आज के साहित्य को 'आत्म निर्वासिन' का एक अड्डा बना दिया है। अगर अस्वीकार और युयुत्सा की झलक किसी कोने से मिलती भी है तो वह वैयक्तिकता के स्तर पर। इसी सन्दर्भ में मैं हिन्दी कहानी को ले रहा हूं। समसामयिक हिन्दी कहानी की सबसे बड़ी दुर्घटना यह है कि कथा पात्रों की अस्मिता इस कदर खो गई है कि वे सिर्फ 'वह' या 'मैं' से ही संबोधित हो सकते हैं। अगर किसी कहानीकार ने थोड़ा भी लीक से हटना चाहा और अपने पात्रों को नाम दे दिया तो तय मानिए कि वह सार्वजनिक रूप से 'माया' युगीन घोषित कर दिया जाएगा।

---

* लेखक : रमाकान्त; प्र० : नवसाहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली - 5; मूल्य : 3-00 ।

'जिन्दगी भर का झूठ' के रमाकांत का भी यही दुर्भाग्य है। उन्होंने अपने कथापात्रों को नाम देने की जुर्रत की है। अतः उनके कहानीकार और उनके कहानी संकलन को परिगणितों की सूची में डाल दिया गया है और पर्याप्त लेखन क्षमता के बावजूद सवर्ण कहानीकारों और संपादकों ने अपनी रसोई की परिधि में घुसने की उन पर कड़ी पाबंदी लगा दी है।

'जिन्दगी भर का झूठ' शीर्षक कहानी संकलन में रमाकांत की 10 कहानियां संकलित हैं। इन कहानियों का रचनाकाल है - 60 से 65 के बीच का समय। 'जिन्दगी भर का झूठ' नामक कहानी में विपिन और राधे बाबू एक ही दफ्तर के दो क्लर्क हैं। उम्र में समानता न होते हुए भी साथ-साथ काम करने के कारण एक आत्मीयता उनके बीच है। विपिन 20-22 वर्ष का एक युवक है और राधे बाबू 50 की उम्र पार कर रिटायर होने के निकट है। लेकिन फिर भी विपिन अपने मकान मालिक की लड़की लल्ली से अपने प्रेम संबंध और उसके गर्भवती होने की बात राधे बाबू को बता देता है और राय पूछता है कि उसे क्या करना चाहिए। राधे बाबू भी उम्र में उससे तिगुने होने के बावजूद राय देते हैं 'मेरी एक बात मानो। कोई बेवकूफी न कर बैठना। हां तो मैं कह रहा था एबार्शन करवा दो। आजकल बहुत कॉमन हो गया है।' लेकिन शाम को जब राधे बाबू घर लौटते हैं और देखते हैं कि उनकी जवान हो रही लड़की शुभा अभी स्कूल से नहीं लौटी है और स्कूल घर से दो मील दूर है। 'यहां से उसकी कोई सहेली भी साथ नहीं जाती। नादानी की उम्र है। विपिन और उस लड़की लल्ली की तरह।' तब उन्हें लगता है कि वे विपिन से कोई बहुत बड़ा झूठ बोल आए हैं और जल्दी ही उसे यह बता देना जरूरी था। --- व्यक्तिगत परिस्थितियां आदमी को किस तरह मोड़ती हैं यह राधे बाबू के माध्यम से रमाकांत ने सफलता-पूर्वक व्यक्त किया है।

'बंद दरवाज़ा: काली छायाएं' नारी जीवन की विडंबना की कहानी है। सामाजिक रूढ़ियों की कट्टरता और उनका खोखलापन उभारने में यह कहानी पूर्णतः सफल है। बल्कि यदि मैं 'दहशत की मजूरी' के बाद इस कहानी को संकलन की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहूं तो अत्युक्ति न होगी। कथ्य पुराना हो सकता है लेकिन कहने का ढंग नया है—सर्वथा नया। एक ट्रेन के जनाने डिब्बे में और बहुत सारी औरतों के अतिरिक्त कहानी की कथा नायिका, उसकी छोटी बहन और मां भी हैं। दरवाजा बंद है और फुटबोर्ड पर दो निरीह से लड़के लटके हुए हैं। कथा नायिका की दृष्टि उनकी ओर जाती है और वह झटके से उठ कर डिब्बे का दरवाजा खोल देती है और उन्हें अंदर बुला लेती है। उनमें से एक लड़के को

भीषण बुखार है और शायद लू का प्रकोप । कथा नायिका अपनी जानकारी और अन्य स्त्रियों के परामर्श के आधार पर उसकी पूरी परिचर्या करती है । किसी स्त्री ने बताया 'अरे, जौ के पिसान नाहीं हौ । पानीं में फेंट के लगाय दो बहू जी । कुछ गरमी सोख लेई ।' सुन कर कथा नायिका किसी औरत से जौ का आटा मांग लाती है और फेंट कर उस बीमार लड़के के शरीर में लगाने को बढ़ती है । लेकिन तभी उसे सुनाई देते हैं मां के शब्द 'तू लगाएगी क्या आटा इसके सारे बदन में ?' और जीवन में पहली बार उसे यह महसूस होता है कि सबसे बड़ी ज्यादती उसके साथ यही हुई है कि औरत बना कर भेजा गया है उसे इस समाज में । इस समाज में जहां पति के बिना स्त्री का जीवन जीवन नहीं । पति बनाना जरूरी है स्त्री के लिए और पति बनाने के बाद वह स्वतंत्र है नंगे नाच के लिए भी, हजारों मर्द बदलने के लिए भी ।

'एक सवाल' में भी नारी की ही समस्या को उठाया गया है । राजीव एक विवाहित व्यक्ति है । उसकी पत्नी है, बच्चे हैं और अच्छा खाता-पीता है । लेकिन नीलिमा को वह केवल प्रेमिका बना कर रखना चाहता है, प्रेमिका और केवल अपनी प्रेमिका । विवाह के नाम पर न तो स्वयं ही तैयार है उसके साथ विवाह करने को और न किसी दूसरे के साथ ही उसे विवाह करने की अनुमति देता है और कहता है, 'ऐसा नहीं हो सकता कि तुम विवाह न करो, ऐसे ही रहो । तुम्हारा जो खर्च होगा वह हम लोग मिल कर किसी तरह पूरा कर लेंगे । और इसी तरह मिलते रहें जैसे अभी मिलते हैं ।' यह है आज के आदमी का अंतर्द्वन्द्व । अपने भौतिक स्वार्थों के आगे नारी की अर्थवत्ता वह एक प्रेमिका - एक अंकशायिनी से अधिक कुछ नहीं मान पाता ।

'दहशत की मजूरी' रमाकांत की, इस संकलन की, सर्वश्रेष्ठ कहानी है । इस कहानी में तस्कर का माल ढोने वाले दो ट्रक ड्राइवरों के मानसिक हॉरर को बड़ी सफलतापूर्वक व्यक्त किया गया है । इस कहानी की श्रेष्ठता या सफलता यही है कि मानसिक हॉरर या दहशत को मूर्तता के स्तर पर अभिव्यक्ति दी गई है । 'दिमाग जैसे काबू में नहीं रह गया था । एक पत्ता भी खड़कता तो जैसे सब चौकन्ने हो कर थोड़ी देर के लिए बुत बन जाते थे । मोटर के नीचे घुस कर झाड़ियां साफ करता हुआ दिलेर अशरफ भी जैसे सांस रोक लेता ।' और तभी एकाएक सुनाई देती है फ़ायर होने की आवाज़ । अशरफ झाड़ियां साफ कर चुका है । फ़ायर सुनते ही, अशरफ के गाड़ी के नीचे से निकलने का बिना इंतजार किए, गुहा गाड़ी स्टार्ट कर देता है । 'और गाड़ी आगे बढ़ गई दच्च····· । जैसे पिछले पहिए के नीचे केले का तना पड़ गया हो ।' - दहशत की मानसिकता

का इतना समर्थ चित्रण मंटो की कहानियों और राजकमल की 'भयाक्रान्त' तथा 'जलते हुए मकान में कुछ लोग' के अतिरिक्त दुर्लभ ही है।

इनके अतिरिक्त रमाकांत की अन्य कहानियां 'विस्थापित', 'मजाक का साथी', 'अंधेरा' और 'विभा का पत्र' भी विषय-वस्तु और भाषा दोनों ही दृष्टि से सार्थकता की सृष्टि करती हैं।

*दरार

– हरदयाल

वेद राही हिंदी के उन कहानीकारों में से हैं जो न तो व्यावसायिक कारणों से प्रेरित होकर कहानियां लिखते हैं, न पाठकों के पीछे दौड़ते हैं और न ही आत्ममोह से ग्रस्त होकर अपनी ही व्यक्तिगत छवियां, कुंठाएं, निराशाएं, विकृतियां, अभिलाषाएं आदि पाठकों के सामने परोसते हैं। वे ऐसे कहानीकार हैं जो जीवन के प्रति गंभीर हैं, उसे ठीक से देखते हैं, उसके साथ जुड़े हुए भी हैं और उससे अलग खड़े होकर उसका अध्ययन कर सकने, उसकी त्रासदायक स्थितियों को ग्रहण कर सकने तथा इस सबको संप्रेषित कर सकने की क्षमता रखते हैं।

'दरार' वेद राही की कहानियों का नया संग्रह है जिसमें उनकी नौ कहानियां संग्रहीत हैं। कहानियां हैं: 'खास-उल-खास', 'हर रोज', 'पचहत्तरवें वर्ष का एक दिन', 'रिश्ता', 'आर्टिस्ट', 'बर्फ', 'दुर्घटना', 'घाव' और 'दरार'। इन कहानियों की एक सामान्य विशेषता यह है कि ये मनोरंजक हैं, पठनीय हैं, इन्हें एक बैठक में पढ़ा जा सकता है, किंतु यदि

---

*लेखक : वेद राही; प्रकाशक : उमेश प्रकाशन, 5, नार्थ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-6;, मूल्य : तीन रुपये।

इन कहानियों की केवल यही एक विशेषता होती तो इन्हें निरर्थक कहानियां कहा जा सकता था। वस्तुत: ये कहानियां पठनीय होने के साथ-साथ अधिक गंभीर और सार्थक कहानियां भी हैं। इनमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो इन्हें सामान्य कहानियों से अलग करती हैं।

इस संग्रह का नामकरण जिस कहानी के नाम पर हुआ है वह इस संग्रह में नम्रतापूर्वक सबसे अंत में स्थित होने पर भी संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है और इस संग्रह की ही नहीं, वरन पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक कहानी कही जा सकती है। भारत ने विगत दशक में दो आक्रमणों का सामना किया है। इन दोनों आक्रमणों को लेकर हिंदी में अनेक रचनाएं लिखी गई हैं।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में युद्ध सम्बन्धी साहित्य प्राय: नगण्य ही है। ऐसा अस्वाभाविक नहीं है। कारण, भारत ने इन दो युद्धों में ही युद्ध का कुछ अनुभव प्रत्यक्ष रूप में किया है। दूसरे हिन्दी का साहित्कार बाबू वर्ग का व्यक्ति होने के कारण सीमित अनुभवों का साहित्यकार है। सामान्यत: हिन्दी के साहित्यकार में साहसिक वृत्ति का अभाव होता है। जीवन के बीहड़ प्रदेशों में प्रवेश करके उन्हें जानने के खतरों को वह मोल नहीं लेना चाहता। 'दरार' केवल इसीलिए महत्वपूर्ण कहानी घोषित की जा सकती है कि युद्ध की पृष्ठ-भूमि पर लिखी गई वह एक प्रामाणिक अनुभूति की कहानी है। वह इसीलिए, पाठक पर स्थायी और गहरा प्रभाव डालती है। इसमें मानवचरित्र की जटिलता का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। कहानी की पृष्ठभूमि में 1965 का पाकिस्तानी आक्रमण है। छम्ब पर पाकिस्तानियों ने हमला बोल दिया। उधर से गोलों के फटने की आवाज और बारूद की आग ध्यानसिंह के गांव में बराबर और स्पष्ट सुनाई एवं दिखाई पड़ती है। गोडसे के गांव की ओर से भागते हुए लोग ध्यानसिंह के गांव की ओर आ रहे हैं। ध्यानसिंह के गांव के लोग स्थिति का जायज़ा लेते हैं। ध्यानसिंह की पत्नी गर्भवती है और इस भगदड़ के प्रारम्भ होते ही प्रसवपीड़ा से व्याकुल हो उठती है। वह छज्जू की मां को बुलाने जाता है। वह रास्ते में ही भागती हुई मिल जाती है, किन्तु अन्तत: वह उसके लिए रुकती नहीं। ध्यानसिंह विचित्र स्थिति में फंस जाता है। वह भागना चाहता है किन्तु भाग नहीं सकता। वह लज्या को गोद में उठाकर ले चलना चाहता है किन्तु इसके लिए लज्या तैयार नहीं होती। वह भयभीत है, उसके चतुर्दिक युद्ध का आंतक छाया हुआ है और ध्यानसिंह असमंजस की स्थिति में ग्रस्त है।

और आखिरकार वह भाग खड़ा होता है और भागता चला जाता है। गांव से बहुत दूर जाकर ठहरता है। बाद में गांव की ओर से आने वाले दो सिपाहियों से यह जानकर कि उसके गांव तक पाकिस्तानी नहीं आए हैं, वह वापस अपने गांव लौट आता है। तब तक लज्या प्रसव कर चुकी है और गांव छोड़कर चलने की तैयारी भी। ध्यानसिंह अपनी कमज़ोरी पर लज्जित है और बहाने बना रहा है। वह लज्या के साथ गांव से निकल चला है। उसे लगता है जैसे लज्या सब समझ रही है। "दोनों के बीच एक हाथ की दूरी ही है, पर ध्यानसिंह को लग रहा है, वह लज्या से बहुत दूर हो गया है - बहुत ही दूर।" लज्या और ध्यानसिंह के बीच पड़ने वाली यह दरार कहानी का ऊपरी कथ्य है किन्तु कहानी में इससे कहीं गहरी और व्यापक अर्थ-व्यंजना निहित है। यह ध्यान देने की बात है कि लेखक ने फ्रण्ट का, उस पर लड़ने वाले सैनिक का, उसकी आदर्श वीरता का चित्रण इस कहानी में नहीं किया है। इन दो युद्धों को लेकर इस प्रकार की अनेक कहानियां और कविताएं लिखी गई हैं किन्तु काल्पनिक स्थितियों और अप्रामाणिक अनुभवों के कारण वे बड़ी जल्दी काल के प्रवाह में खो गई हैं। 'दरार' में साधारण नागरिक पर, जो कि लड़ाई के मोर्चे के बिल्कुल करीब है, पड़ने वाले युद्ध के प्रभाव का चित्रण किया गया है। यह प्रभाव आतंक का प्रभाव है जिसे मूर्त्त करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है। गांव के लोगों की हड़बड़ी से भरी भगदड़ और गांव के एकदम वीरान हो जाने के द्वारा यह आतंक साकार हो उठता है। सब भाग गये हैं। गली में कहीं कोई कुत्ता भी नहीं है। ध्यानसिंह को अखनूर की ओर से उड़कर आने वाला चिड़ियों का बहुत बड़ा समूह नज़र आता है। वे भी तोपों के धमाकों से पनाह मांग रही हैं। उसे दो बिल्लियां दिखाई देती हैं जो घर का दरवाजा बन्द पाकर रोशनदान की मोरी से अन्दर कूद गई हैं। वह सोचता है कि वे बिल्लियां अंधेरे कमरे में अपने को सुरक्षित समझती हैं। शायद लज्या भी कमरे में अन्दर होने के कारण परिस्थिति की भयानकता का अनुमान नहीं कर पाती। ध्यान सिंह को वीर दिखा कर लेखक ने उसके चरित्र का आदर्शीकिरण नहीं किया है। हालांकि कहानी में इसकी पूरी गुंजाइश थी। यदि वैसा किया जाता तो यह कहानी कृत्रिमता से आवृत हो जाती। उस स्थिति में हम ध्यानसिंह के साहस, निर्भीकता और वीरता की दाद दे सकते थे, किन्तु हम उसे अपने इतना निकट नहीं पाते जितना कि अब पाते हैं। तब वह असाधारण व्यक्ति होता। मनुष्य का - साधारण से साधारण मनुष्य का - चरित्र सपाट नहीं होता है। वह कितना जटिल होता है, कितने अन्तर्द्वन्दवों से ग्रस्त होता है, इसका कुछ आभास ध्यानसिंह के चरित्र में मिलता है। लज्या प्रसवपीड़ा से ग्रस्त है और

रचना का, सृजन का प्रतीक है। ध्यानसिंह सृष्टि में सहायक है, स्वयं स्रष्टा नहीं है। सृजनरत व्यक्ति सृजन की पीड़ा से इतना अभिभूत और आतंकित होता है कि उसे दूसरी पीड़ाएं, दूसरे भय और दूसरे प्रलोभन प्रभावित नहीं करते। जो उससे कटा हुआ है वह सृष्टि के सुख तो लूट सकता है किन्तु उसके खतरों में सहभागी नहीं हो सकता। कुर्ते के नीचे हाथ डाल कर लज्या के गर्भित नंगे पेट पर ध्यानसिंह हाथ तो फिरा सकता है किन्तु उसी के लिए वह अपने प्राणों की बलि नहीं दे सकता। लज्या भी यदि प्रसव-पीड़ा से व्याकुल न होती तो युद्ध का आतंक उसे ध्यानसिंह से कम नहीं व्यापता। कहानी की यह अर्थव्यंजना उसे वृहत्तर मूल्यों से जोड़ती है और कहानी एकदम आलौकित हो उठती है।

संग्रह की बाकी सब कहानियां महानगरों के नागरिक जीवन की त्रासदियां हैं। महानगर औद्योगिक सभ्यता के वरदान और अभिशाप दोनों हैं। वरदान वे इस रूप में हैं कि वे मानव सभ्यता के विकास और समृद्धि के प्रतीक हैं। वे पूंजी के एकत्र होने, उत्पादन के साधनों के विकसित होने का सहज परिणाम हैं। जीवन के सुख और सुविधाएं, उपभोग की विविध और प्रचुर सामग्रियां तथा मानव-जीवन की सुरक्षा महानगरों में एकत्र सुलभ हो गई हैं। लेकिन यह सब किसके लिए है ? यह सब जिनके लिए हैं वे मुट्ठी भर सम्पन्न लोग हैं। नगर सचमुच उनके लिए वरदान है। फुटपाथों पर सोने वालों के लिए, मजदूरों के लिए ये नगर अभिशाप हैं। महानगर उन मध्यवर्गीय लोगों के लिए भी अभिशाप हैं जिनका जीवन अपने सीमित साधनों और अपनी असीमित अनिवार्यताओं के बीच समीकरण बैठाने में ही बीत जाता है। जीवन की यह विकट परिस्थिति उन्हें मनुष्य नहीं रहने देती, मशीन का पुर्जा बना देती है। आदमी और आदमी के बीच के सम्बन्ध ठंडे और जड़ हो जाते हैं। उसकी संवेदनशीलता मर जाती है। जब मध्यवर्ग का आदमी महानगर में जीवन शुरू करता है तब उसकी आंखों में भविष्य के बड़े रंगीन सपने होते हैं। लेकिन क्रमशः वे रंगीन सपने वास्तविकता की आग में जल कर राख हो जाते हैं। तब आदमी को शराब के नशे में ही मुक्ति मिलती दिखाई देती है। साठे (हर रोज) पत्नी की महंगाई की शिकायतों, एक धोती की मांग, पुत्री कामिनी को विजय के साथ न घूमने देने की शिकायतों आदि के प्रति बहरा और गूंगा हो जाता है। बम्बई की दस बरस की नौकरी पेशा जिन्दगी में बौरीविली से चर्च गेट और चर्च गेट से बौरीविली की यात्रा करते-करते रेल में दस महीने और बारह दिन काटने का हिसाब लगाता है। उसके सुख कितनी छोटी-छोटी चीजों में सिमट कर रह गये हैं। 'स्लो' गाड़ी मिलने और आफिस से एक घण्टा लेट निकलने पर वह सोचता है कि 'अच्छा

ही है। बच्चे खा-पी कर सो गये होंगे, पत्नी भी सोना चाह रही होगी। वह आराम से खाना खाकर बाहर बरामदे में केन की टूटी हुई ईजी चेयर पर अकेले बैठ कर दो सिगरेट फूंक सकेगा और सिगरेट पीते हुए खाली दिमाग, खाली आंखों से आसमान की ओर ताकता रहेगा।' 'खास-उल-खास' का नायक भी सोचता है कि उसकी पत्नी के बाप ने अगर उसकी पिटाई कर दी होती तो कितना अच्छा होता। 'शादी के चक्कर ने उसे कहीं का नहीं रखा। वह एक ऐसे खूंटे से बँध गया है, जिसके साथ दो रस्से बँधे हुए हैं। एक बहुत लम्बा रस्सा है जो गले में बँधा है, और एक छोटा-सा पांव में।' उसे भी अपनी उलझनों से छुटकारा शराब के नशे में मिलता है। डाइरेक्टर की पार्टी में अनामन्त्रित जाने में उसे किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं होता, बल्कि इस बात का हिसाब लगा कर कि उसने पार्टी में व्हिस्की के कम-से-कम दस पेग पिए होंगे, यानी वह सौ रुपये पी गया, उसे खुशी होती है। सब कुछ जानते हुए अपने को छलना, घर से भागे रहना, पत्नी और बच्चों से घृणा हो जाना, नशे में गर्त हो जाना - यह सब क्यों है ? ऐसा नहीं है कि स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की आवश्यकता न हो। वह जीवन का अनिवार्य धर्म है। अगर वह जीवन का अनिवार्य धर्म न होता तो भूपेन्द्र के द्वारा पिटकर जाने वाली रीता एग्ज़िमा के भयंकर आक्रमण से ग्रस्त अपाहित भूपेन्द्र के पास दुबारा लौट कर न आती ('घाव')। इस भयंकर स्थिति का कहीं गहरा और स्पष्ट कारण है जिसे कुछ लोग अपने पूर्वाग्रहों के कारण स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं दिखाई देते।

यह कारण है आर्थिक व्यवस्था। जिस पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में आज संसार जीवित है, उसमें मनुष्य के मूल्यांकन का आधार व्यक्ति की आर्थिक स्थिति हो गई है। आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आते ही 'रिश्ते' एकदम बदल जाते हैं। आदमी का स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। यह स्वाभिमान यों ही नष्ट नहीं होता वरन् धुल-धुल कर नष्ट होता है। आज जो नरेश कुमार का चमचा है, जिसकी अवस्था चालीस की हो गई है, जो नरेश के साथ नाश्ता करने, उससे दस-बीस रुपये पाने के लिए ललचाता रहता है, जिसे नरेश कुमार के सब प्रोग्राम पता हैं, जिससे दूसरे लोग घृणा करते हैं वह भी कभी स्वाभाविक रूप से स्वाभिमानी व्यक्ति था या हो सकता था। यह उसकी चरित्रगत कमजोरी ही नहीं थी कि उसका कहीं जी नहीं लगा, उसे अपने से बड़ा हर आदमी 'होक्स' लगा, बल्कि कहीं-न-कहीं उस व्यवस्था का भी उसमें दोष था जिसमें वह जी रहा था ('खास-उल-खास')।

क्या इसे अर्थ-व्यवस्था का दोष नहीं कहा जायेगा कि एक सौ नौ फिल्मों में 'हीरो' की भूमिका निभाने वाले मास्टर खालिद को पचहत्तर वर्ष की अवस्था में जूनियर आर्टिस्ट की तरह दस रुपये के लिए कार्य करना पड़ता है जबकि उसकी आवाज भी साफ नहीं निकलती ('पचहत्तरवें वर्ष का एक दिन') या लगभग इसी तरह की स्थिति में रमाशंकर को हीरो से विलेन और विलेन से सहखलनायक की भूमिका पर उतर कर कार छोड़ कर रेल में सफर करना पड़ता है ('आर्टिस्ट') । इन स्थितियों में आदमी कितना दयनीय हो जाता है । इसी अर्थ-व्यवस्था का भयंकर रूप 'बर्फ' कहानी है जिसमें गोपीनाथ अपनी पत्नी को पदोन्नति की लालसा में शाह साहब को सौंप देता है । गोपीनाथ की पत्नी, जिसकी संवेदना अभी मरी नहीं है, कितनी करुणा-जनक स्थिति में जा पड़ती है । बर्फ केवल बाहर ही नहीं गिर रही बल्कि उस के अन्दर भी जम गई है । वह चुप है । उसकी प्रफुल्लता, उसका उल्लास, उसकी मुखरता नष्ट हो गई है । 'शीन-जंग' खेल को देखकर उसे अपने बचपन की एक घटना याद आ गई है, जिसमें संकेतित है कि आज गोपीनाथ की पत्नी के सब विरुद्ध हैं, सब तरफ से उस पर मार पड़ रही है । वह भाग जाना चाहती है, किन्तु भाग नहीं पाती है । दस रुपया स्वीकार करें या न करें-यह द्वन्द्व एक क्षण के लिये मास्टर खालिद में उठता है । वे चाहते हैं कि चुपचाप चल दें, हराम की कमाई के पैसे न लें लेकिन नवाब के द्वारा हाथ में दस रुपये का नोट निकाल लेने पर वे अपने को रोक नहीं पाते और दस रुपये लेकर हबीब शराब वाले के झोंपड़े की ओर चल देते हैं अथवा कहीं पोल न खुल जाये, इस डर से रमाशंकर ट्रेन से उतर पड़ते हैं । तब उनकी स्थिति गोपीनाथ की पत्नी से कम करुण नहीं होती ।

मनुष्य को त्रासद स्थिति में पहुंचाने के लिए उसके चतुर्दिक की परिस्थितियां जितनी उत्तरदायी होती हैं, उतनी ही व्यक्ति की अपनी कम-जोरियां भी होती हैं । वेद राही उनसे परिचित हैं, यह इन कहानियों से प्रमाणित है । इन कहानियों के जिन पात्रों के जीवन में त्रासदियां घटी हैं उनमें से अधिकांश शराब पीते हैं । जहां आदमी शराब को औषधि के तौर पर नहीं पीता वहां वह उसके कमजोर चरित्र का एक प्रमाण है । इन कहा-नियों में उभरने वाला व्यंग्य करुणा-संवलित होने के कारण बहुत धारदार हो गया है ।

इन कहानियों में जीवन अपनी वास्तविकता में इस कदर प्रबल है कि लेखक को कहानियों को प्रभावशाली बनाने के लिए न तो पच्चीकारी की

आवश्यकता पड़ी है और न चमत्कारों की। सीधी-सरल एवं सहज भाषा में लिखी हुई इन कहानियों में प्रतीकात्मकता है तथापि बनावट नहीं है।

इस संग्रह की कुछ कमजोरियां भी हैं। जैसे, लगभग एक ही भाव-भूमि का चित्रण करने वाली दो कहानियों-'पचहत्तरवें वर्ष का एक दिन' और 'आर्टिस्ट'- का होना संग्रह को कमजोर बनाता है। 'रिश्ता' और 'दुर्घटना' कहानियां जीवन की सतह पर तैरने वाले अर्थों को ही चित्रित कर सकी हैं। वे किन्हीं गहरे अर्थों को व्यंजित नहीं कर सकी हैं। अतः सपाट हो गई हैं।

बावजूद इन कमजोरियों के 'दरार' 1970 का एक महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह है।

अतिवाद से विरोधाभास तक

(कुछ अनूदित तथा मौलिक नाटक)

— गंगाप्रसाद विमल

भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए दूसरी भाषाओं के अनुवाद की आवश्यकता असंदिग्ध है। अनुवाद के जरिये हम उन अपरिचित भाषाओं की बौद्धिक दुनियां में प्रवेश करते हैं जिनकी सांस्कृतिक विरासत बड़े या छोटे पैमाने पर एक जनमानस को प्रभावित करती है। तकनीकी विकास के इस दौर में बौद्धिक दुनिया की आपसी दूरी कम करने का वैज्ञानिक साधन अगर कोई बच रहता है तो वह अनुवाद है। अनुवाद का काम सृजनशील रचनाकार के काम के ही समान है। एक रचनाकार 'रचना' करता है तो अनुवादक 'पुनर्रचना' द्वारा न केवल किसी भाषा के सांस्कृतिक-संस्कारों से परिचित कराता है, बल्कि वह हमें दूसरे क्षितिजों की अनुभूत मानवीय सच्चाइयों से जुड़ने के राग का साक्षात् कराता है। जो काम भाषाई बाड़े बंदी और हठ-वादिता से संभव नहीं, उसे अनुवाद संभव कर दिखाता है।

नाटकों के अनुवाद की भूमिका दूसरी विधाओं के अनुवाद से ज्यादा महत्वपूर्ण है। एक तो नाटक सभी विधाओं की उदार स्वीकृति है, दूसरे वह समकालीन जनचेतना का संवाहक है। जो नाटक शताब्दियां बीत जाने के बाद भी मानवीय सच्चाइयों के कारण आज का लगता है, वह कभी पुराना नहीं

पड़ता। उसके व्यतीत संदर्भ सदैव कालातीत समकालीनता के संदर्भ बन जाते हैं। परन्तु वह हर नाटक पुराना है जो कुछ होने की दौड़ में, अपनी समकालीनता को बनाये नहीं रखता।

हिन्दी में नाटकों के अनुवाद कम हुए हैं। किसी जीवंत रंगमंच का अभाव उसका एक कारण हो सकता है, परन्तु जिन नाटकों के अनुवाद हुए भी हैं उन्हें लेकर रंगमंच की बात करना बेकार होगा। उन अनुवादों को देख कर यह अनुमान तो आसानी से लगाया जा सकता है कि 'नाट्य क्षण' की घोषणा के बावजूद हिन्दी नाटक काफ़ी दरिद्र और पिछड़ा हुआ है। हिन्दी में अगर घोर पाठ्य नाटक हैं, तो फूहड़ ढंग के सस्ते मंचीय नाटक भी कम नहीं हैं। इन दो ध्रुवांतों के बीच विदेशी नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत करनेवाला नाटककार 'प्रतिभा की कमी' की पूर्ति करता है – ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनूदित नाटकों को देख अनुवाद की चयन दृष्टि पर बराबर संदेह रहता है। वह संदेह इसलिए भी जागता है कि हमारे यहां नाटक की सार्थकता 'मंचोकरण' से हट कर दूसरे क्षेत्रों में सीमित मान ली गई है।

ओ'नील कृत 'अभिशप्त' (अनुवादक: उपेंद्रनाथ अश्क; प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; मूल्य : चार रुपये) का अनुवाद अपने जमाने के लोकप्रिय नाटककार ने किया है। स्कूलों और कॉलेजों के मंचों पर उनके नाटक अपनी लोकप्रियता के प्रमाण जुटाते रहे हैं। एक अरसे से हिंदी दर्शक को किसी अच्छे नाटक की तलाश है, और इस अपेक्षा की प्रतीक्षा वह लोकप्रिय नाटककारों से करता है। परन्तु उपेंद्रनाथ अश्क का यह अनुवाद देख कर दर्शक के मन में पहली प्रतिक्रिया यही होती है कि कहीं अपने ज़माने की आयास-सिद्ध प्रतिभा उस विराम बिंदु पर तो नहीं पहुंच गई है जहां से रचना की अपेक्षा नहीं की जा सकती। एक हल्का-सा संदेह फिर भी रहता है कि अनुवाद अपनी जगह है, मौलिक सृजन अपनी जगह। अनूदित कृति देख कर सहज ही लेखक के भविष्य के बारे में अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता। अनुवाद की कमियां देख कर इतना जरूर कहा जा सकता है कि विश्वविख्यात ओ'नील की इस कृति का दुबारा अनुवाद होना चाहिए। चाहे ओ'नील अमरीका के आधुनिक नाटक जगत में क्लासिकल बन गया है और चाहे ओ'नील के नाटक आयोनेस्को और बेकेट के संदर्भ में आधुनिक नहीं हैं, फिर भी ओ'नील के नाटकों की अपनी अलग दुनिया है और नाटकों का यह संसार एक ही प्रतिनिधि नाटक के जरिये ज्यादा सच हो कर झलकना चाहिए। अनुवाद की पहली शर्त मूल कृति के ज्यादा नज़दीक होना है। नाटक के संदर्भ में मंच की

अनुकूलताओं को नहीं भूला जा सकता। इसलिए नाटक के अनुवाद के सिल-सिले में अनुवादक के सामने दो स्पष्ट सीमाएं हैं, मूल कृति अथवा मूल सांस्कृतिक संस्कार का यथार्थ और मंचीकरण। उपेंद्रनाथ अश्क ने ओ'नील की इस कृति का शाब्दिक अनुवाद किया है, ज़ाहिर है शाब्दिक अनुवाद का ठीक वैसा ही असर न पड़ेगा जैसा कि 'मंचानुकूल' बनाने के लिए अनुवाद की भाषा को ज्यादा सार्थक बनाने पर पड़ता। नाटक में भाषा अगर अपनी सार्थकता व्यक्त नहीं करती और वह सिर्फ एक पाठ्यकृति बन कर रह जाती है तो उसे नाटक न कह कर कुछ और कहना पड़ेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि नाटक का महत्व केवल मात्र रंगमंच पर प्रभावशाली होना हैं, बल्कि नाटक पढ़ते हुए भाषा के स्तर पर यह अनुभव आवश्यक है कि आप एक नाटक के बीच से गुजर रहे हैं। नाटक की सर्जनात्मकता भाषा के द्वारा व्यक्त होती है।

ओ'नील की इस "ट्रायलोजी" की दुनिया संयोगों और घटनाओं की बनी बनायी दुनिया है। 'अभिशप्त' का मनोविज्ञान आज की दुनिया के लिए काफी पुराना पड़ चुका है। फ्रायड की स्थापनाओं को दफनाने के बाद यूरोप और अमरीका में विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान तकनीक और गणित की 'साइबर-नेटिक्स' के विज्ञान में रूपांतरित हुआ है। मानवीय त्रासदी को उसकी सही सामा-जिक स्थिति में देखने की दृष्टि भी समकालीन नाटककारों के अनुभव की नयी खोज है, वहां संयोग, घटनाओं और मनुष्य मन की पूर्ण कल्पित कार्य-कारण शृंखला का घटाटोप नहीं है। मनोवैज्ञानिक तर्क से बुनी ओ'नील की कृतियों को लेकर जासेफ वुडकच ने कहा भी है कि ओ'नील के नाटक आधुनिक सिर्फ इस-लिए हैं कि उनमें मनुष्य और सृष्टि के बारे में तर्कपरक दृष्टि है। इस तर्कपरक दृष्टि द्वारा त्रासद के जिस अनुभव को 'अभिशप्त' में प्रस्तुत किया गया है वह त्रासदी की विलुप्त क्लासिकल गरिमा को जीवित करने का आभास लगता है। 'अभिशप्त' के लेवेनिया की तरह के चरित्र आज की दुनिया में न मिलते हों ऐसा नहीं है, किंतु अपने संस्कारों, मनोवैज्ञानिक दबावों, अतीत की प्रेतछायाओं से पीड़ित लेवेनिया संयोग, चमत्कार और हत्या-आत्महत्याओं की बनावटी दुनिया का पात्र है दरअसल नाटक "फिक्शन" की बुनियाद पर कभी खड़ा नहीं होता, वह अपनी बुनियाद से एक परिकल्पित दुनिया को विश्वसनीय बनाता है और उसकी विश्वसनीयता का बिंदु वह 'व्यंग्य' है जो दर्शकों, पाठकों के लिए 'अनिर्वच' सुख की तरह है। अचरज यही है कि इस अनुवाद में असंख्य निरपराध लोगों को 'थ्रिल' के लिए गोली से भूनने वाले अभिशप्त अमरीकी संस्कार का 'व्यंग्य' नहीं उभरा जो संदर्भ के तौर पर ओ'नील के नाटकों का सच है। अनुवाद की

दूसरी गलतियों की कोई सीमा नहीं है, 'हंटेड' का अनुवाद 'शिकारी' है और 'वी हैड आट् टु दैट्स सर्टिन' का अनुवाद 'हम यों ही करेंगे' हुआ है। कई जगहों पर अनुवाद की उदारता वाक्यों को मूल संदर्भ से हटा कर प्रस्तुत करने में भी बरती गयी है। बनावटी अनुवाद का इससे बढ़िया उदाहरण हिंदी में इन दिनों तक नज़र नहीं आया था। यह विश्वास करना कठिन है कि इसका अनुवाद नाटककार अश्क ने ही किया है।

ब्रेख्त (ब्रेश्त) के नाटक ओ'नील के नाटकों की तुलना में आज के नाटक जगत के लिए चुनौती भरे नाटक हैं। 'खड़िया का घेरा' (अनुवादक : कमलेश्वर; प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य : आठ रुपये) किसी भी भाषा के लिए मौलिक नाटक से कम महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसे नाटकों के अनुवाद द्वारा नाटक जगत न केवल अपने रंगमंच को नया पाता है, साथ में एक ऐसे वातावरण से सामना भी करता है जो सर्जनात्मक नाटकों की 'न्यू वेव' को गति देता है। सालों पहले लिखे जाने के बावजूद 'खड़िया का घेरा' आज की दुनिया की राजनीतिक दुर्घटनाओं का जीवंत दस्तावेज़ है। लोककथा और निजंधरी कथाओं की आधुनिक राजनीतिक समानुरूपता के कारण 'खड़िया का घेरा' उन कालजयी कृतियों में एक है जिनमें स्थानीय संस्कृति और भूगोल अर्थहीन पड़ जाते हैं।

ब्रेख्त का यह नाटक किसी भी अनुवादक के लिए चुनौती है, क्योंकि ब्रेख्त के नाटक 'थीमेटिक' नाटकों की कोटि के हैं, जिनमें एक ही धरातल पर राजनीति, व्यंग्य, लोकमानस, प्रबुद्ध चेतना और ऊपर से दीखनेवाली सामान्य कथा चलती है। यह अनुवाद एक तरह का 'पुनर्सर्जन' है जो एक तरफ मूल कृति के करीब है तो दूसरे किसी भी रंगमंच के अनुकूल। अनुवाद की बहस में कमलेश्वर ने अनुवाद की उस मूल दिक्कत की चर्चा भी की है, जिसे एक सर्जनात्मक भाषा के रूपांतरण की दिक्कत कहा जा सकता है। कमलेश्वर ने भूमिका में कहा है - 'ब्रेख्त के इस नाटक के अनुवाद में सबसे बड़ी कठिनाई भाषा की थी .... ब्रेख्त की भाषा एक साथ चार-चार, पांच-पांच स्तरों पर चलती है। वह बाजारू और चलाऊ भाषा से एकाएक बहुत शुद्धता और शास्त्रीयता के स्तर पर संकुचित हो जाती है।' ब्रेख्त के नाटकों की भाषा न केवल जर्मन क्षेत्र के लिए चुनौती है, बल्कि वह सारी दुनिया की भाषाओं के लिए चुनौती है - क्योंकि भाषा की एक खास बनावट के जरिये ब्रेख्त के पात्र न केवल अपने व्यक्तित्व को संप्रेषित करते हैं अपितु वे धीरे-धीरे खत्म होते जाने वाले 'मानवीय' अंश को संप्रेषित करते हैं। दूसरी विधाओं में अनुवाद की जितनी छूट रहती है, उतनी नाटक के

अनुवाद में नहीं रहती, क्योंकि नाटक में भाषा 'खेल' के रूप में या सजावट के रूप में इस्तेमाल नहीं होती। नाटक में हर संवाद की अपनी अलग भूमिका होती है। संवाद के जरिये कथा या चरित्र के ही नजदीक नहीं पहुंचना होता, बल्कि नाटक के बीच गुजरती संस्कृति के बीच गुजरना होता है। संवाद की भाषा 'नटों की हिस्सेदारी' से हट कर दर्शकों की हिस्सेदारी में शामिल हो जाती है, इसलिए संवाद की भाषा (खासतौर से ब्रेख्त के नाटकों की) का अनुवाद मुमकिन नहीं होता, क्योंकि 'नाटक............. अपने समय का होता है, और वही भाषा उसे वहन कर पाती है जो समय को वाणी दे रही होती है, यानी जिसका मुहावरा समय गढ़ता है और जो समय के गढ़े हुए मुहावरे को जीवित रखती है'।

भाषा के रूपांतरण की सैद्धांतिक मुश्किलों के बावजूद 'खड़िया का घेरा' मूल कृति को सुरक्षित रखने वाला अनुवाद है। कमलेश्वर ने कहा भी है कि इस अनुवाद में 'ब्रेख्त के नाटक के साथ कोई भी छूट लिये बगैर यहां यही कोशिश की गयी है कि यह अनुवाद,........ निकटतम भी रहे और अपनेपन से स्खलित भी न हो'। 'खड़िया का घेरा' का अनुवाद नाटकों के अनुवादों को लेकर कुछ सवाल सामने रखता है। संभव है, ब्रेख्त का अनुवाद करने वाले दूसरे अनुवादक उन सवालों से इस बहस को आगे बढ़ाएं। उन सवालों में एक सवाल यह है कि नाटक के अनुवाद में कितनी छूट ली जाए। जैसा कमलेश्वर ने कहा है कि 'बगैर छूट लिये'............. उनकी यह कोशिश है – बावजूद इसके कथा गायकवाले अंशों और ग्रूशा के संवादों में कमलेश्वर ने संगीत और 'अर्थ की लय' के तत्वों को, हिंदी रंगमंच के अनुकूल, रखने की छूट ली है। अपने समग्र वैचित्र्य में 'खड़िया का घेरा' अजदक के न्याय संसार की उपज नहीं है, बल्कि वह खोखली होती जाती व्यवस्था के ढोंग और न्याय के प्रति उस व्यवस्था के प्रदर्शनकामी संस्कार के छद्म का आखिरी न्याय है, ग्रूशा को 'सक्रियता' से आगे बढ़नेवाली यह कथा केवल गवर्नर की बीवी तथा ग्रूशा के बीच बच्चे के अधिकार की लोक-कथानुमा कथा नहीं है, बल्कि वह एक मानवीय और छद्म, न्याय और अन्याय, सही और गलत की कालातीत कथा है। नाजी आक्रमण के विध्वंस के बाद समाज-वादी विशेषज्ञ द्वारा चरागाह की जमीन को बगीचे के उपयोग में लाने की तज-बीज से जुड़ी यह कथा 'जमीन और बच्चे' मनुष्य के दो आधारों की रूपक कथा है। यह रूपक केवल 'काव्यमय गोचरत्व' को सिद्ध करनेवाला रूपक नहीं है, बल्कि आधुनिक मनुष्य की मानसिकता के उस संक्रमण का ऐतिहासिक दस्तावेज है जो रोनाल्ड ग्रे के मुताबिक 'मानवीय आधार पर आश्वस्त करता है'।

टेलिविजन और नाटकों की दुनिया में सालों रहने के वाद, इन सालों के अंतराल में सिर्फ एक अनुवाद देख कर, कमलेश्वर से सवाल किया जा सकता है कि यह विराम क्यों ?

* * *

दो विदेशी कृतियों के बीच भारतीय भाषा (वंगला) के अनुवाद 'दो पुरुष' (मूल लेखक : ताराशंकर वंद्योपाध्याय ; अनुवादक : हंसकुमार तिवारी; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य : तीन रुपये) की तुलना किसी भी ढंग से संगत नहीं कही जा सकती, किंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि अपने देश का यह नाटक समकालीन जिंदगी का नाटक नहीं है। हालांकि इसका सारा परिवेश समसामयिक जीवन-विधि का परिवेश है। नूट बिहारी के आदर्शवाद का यह उत्कर्ष भारतीय जीवन विधि के मूल्यविधान की सार्थकता सिद्ध करने के लिए है। क्रांतिकारी नूटबिहारी का हृदय-परिवर्तन, जमींदार और पत्नी की दुनिया की सच्चाइयों को शिथिल ढंग से प्रस्तुत करनेवाला यह नाटक 'आरोग्य-निकेतन' और 'गणदेवता' के लेखक की रचना जरूर है, परन्तु शिखर रचना नहीं। आवरण पृष्ठों पर छपी स्तुतिपरक सामग्री और नाटक की कथा की संगति की कल्पना ही की जा सकती है। 'दो पुरुष' में दो भिन्न स्थितियां जिन पात्रों के सहारे निर्मित होती हैं, वे पात्रों के उस आत्मसंघर्ष की परिणतियां नहीं हैं जो नाटक को सही नाटक का दर्जा देती हैं। एक मामूली कृति को अच्छा अनुवाद बेहतर नहीं बना सकता, इससे यह जरूर सिद्ध होता है।

* * *

यह एक विचित्र, किन्तु सच बात है कि समकालीन रंगमंच मौलिक नाटकों के अभाव के कारण जिन विदेशी नाटकों का प्रदर्शन करता है वे ज्यादा अपने नाटक लगते हैं, बजाय उन मौलिक नाटकों के जो लिखे तो आज गये हैं परन्तु उनकी मानसिक भूमिका मध्यकालीन है। हिन्दी का अधिकांश मौलिक नाटक अपनी मध्यकालीनता के कारण 'विरोधाभास' का नाटक लगता है। कुछेक अपवादों को छोड़ दिया जाए तो अखबारी खबरों और प्रकाशित नाटकों को देख कर छोटे बड़े शहरों में उनके प्रदर्शन का हल्ला भी प्रभावशाली नहीं होता। दूसरी मोटी वजह इन नाटकों में उस 'जागरूकता' की कमी है जिससे कोई नाटक समकालीन और सृजनात्मक कृति का दर्जा पाता है। क्योंकि 'जागरूकता' की कोई उत्तेजना नहीं, इसलिए रंगकर्मियों के लिए ऐसी कृतियां अनुप्रेरणाएं नहीं बन पातीं। अब अगर कोई नाटककार यह शिकायत करे कि

हिन्दी में 'हिन्दी का रंगमंच है' ही नहीं तो उसकी प्रतिभा पर संदेह करने की पूरी गुंजाइश है।

समकालीन नाटक की समझ रखने वाले विजय चौहान के प्रमाणपत्र के बावजूद, 'जागरूकता' से दूर अमृत राय की 'चिंदियों की झालर' (प्रकाशक : हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ; मूल्य : तीन रुपये) एक ऐसा मौलिक नाटक है जिसमें नंदन और दीपा के अतीतराग से मंगल (युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि) का टकराव दिखाया गया है। अतीतराग को व्यक्त करने वाले संवादों में जिस आवेश की झलक मिलती है वह बेहद रोमांटिक किस्म का आवेश है। यही नहीं अतिरंजना के विस्तार में घूमनेवाला यह नाटक युगल-गीतनुमा संवादों से भरा पड़ा है—(उदाहरण - दीपा : एक ताबूत जिसमें दो लोग बंद हैं/नंदन : यही कुछ तस्वीरें उस वक्त की/दीपा : धूल में लिथड़ी हुई/नंदन : जब हम जवान थे—हमारे सपने जवान थे ----/दीपा : कितने बचे ----- सब तो अपनी राह लगे/- - - - आदि) इस नाटक को लेकर बहस सिर्फ विजय चौहान के तर्क को लेकर की जा सकती है। उनकी मान्यता है—'छपे हुए नाटक को पढ़ना संगीत की मुद्रित स्वर-लिपि पढ़ने के समान है।' असल में 'चिंदियों की झालर' की कमी उसके अपठनीय होने, और उसकी सफाई पेश करने में नहीं है, बल्कि वह इस बात में है कि कोई नाटक आधुनिक भारत के दुःखांत का दावा बन कर प्रकाशित हो और प्रस्तुतकर्ता उसे 'पाठकों' के लिए नामंजूर कर दें। किसी अच्छे नाटक के बारे में यह कहना काफी हास्यास्पद लगता है। 'चिंदियों की झालर' संगीत की मुद्रित लिपि नहीं है, नाट्यप्रेमी के लिए वह 'हठयोग' से प्राप्त 'विरेचक' की तरह है। कृति का जादू देखने और पढ़ने में बराबर तो कभी नहीं होता किन्तु असरदार दोनों हालतों में होता है।

आधुनिक भारत के दुःखांत को सस्ता और मखौल के करीब लाकर 'संत्रास विरोधी' प्रगतिशील लेखक अमृतराय ने समाजशास्त्रियों के लिए नया द्वार जरूर खोला है कि वे 'नाटक के विरोधाभास' और विरोधाभास के नाटक के बीच भारत के सामाजिक दुःखांत को पहचानें।

विष्णु प्रभाकर कृत 'युगे-युगे क्रांति' (प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली. मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे) 1875 से 1950-60 तक की जिंदगी में आये उन क्रांतिकारी पड़ावों के नाटकीय वृत्त का नाटक है जिसमें क्रांति सिर्फ 'विवाह-संस्थान' को तोड़ना है। 'युगे-युगे क्रांति' आरम्भ में एक प्रयोगशील नाटक का भ्रम देता है। नाटक में सूत्रधार जिस ढंग से देवीप्रसाद को घेर कर उसे नाटक

का हिस्सा बना लेता है, उससे प्रतीत होता है कि नाटककार, सामान्य ढंग से उसे दर्शक को हिस्सेदारी से जोड़ने का काम कर रहा है, किन्तु धीरे-धीरे नाटक का आरंभिक प्रभाव खत्म हो जाता है। क्रांति के अर्थ और 'थीम' के कमजोर होने के बावजूद 'युगे-युगे क्रांति' फार्मूला नाटक और प्रचारवादी नाटक नहीं है। रंगमंचीय व्यवस्था (ध्वनि संकेतों आदि) में समकालीन नाटक के करीब लगने वाला यह नाटक 'क्रांति के प्रतिकार्य' (विवाह संस्थान को तोड़ने से संबंधित) के ब्यौरों में उलझ कर 'मनोरंजक' बनाने की तरकीबों से भरा पड़ा है, और यही इस नाटक का 'विरोधाभास' है कि वह 'समय संबंधी लम्बे फैलाव को पूरी-पूरी तरह नहीं समेट पाता। नाटक का मनोरंजक होना ही सब कुछ नहीं है, मनोरंजक बनने की प्रक्रिया में 'कालदोष' के 'शेड्स' छिपते नहीं हैं।

संस्थाबद्ध बुराइयों को तोड़ना एक तरह की सामाजिकता है, क्रांति नहीं। क्रांति 'व्यवस्था' को मूल रूप से, राजनैतिक स्तर पर बदलने, तोड़ने या नयी व्यवस्था हासिल करने से ताल्लुक रखती है। मंचीय नाटकों को परंपरा का यह नाटक, संभावनाओं के यथार्थ को रूपायित करने वाला नाटक है।

*　　　*　　　*

'जूही के फूल'— डा० रामकुमार वर्मा (प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली; मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे) का हास्य एकांकी संकलन है। संकलन में भूमिका के रूप में हास्य पर एक गंभीर एकेडेमिक विवेचना भी है। हास्य का शास्त्र रच कर डा० वर्मा ने 'जूही के फूल' को 'वयस्कों के लिए' भी बोधगम्य बना दिया है। 'चार आदमियों के सामने अपना पैर फिसलने पर जिस लज्जित हंसी की रेखाएं इन नाटकों को पढ़ने या देखने पर आपके मुख पर खिंचे, तब कहीं बात बन सकती है।' परन्तु ये नाटिकाएं केले के छिलके नहीं हैं। 'हीरे के झुमके' अन्य तीन नाटिकाओं के मुकाबले में, प्रदर्शनकामी महत्वाकांक्षा पर प्रहार के रूप में, हास्य की सार्थकता प्रस्तुत करता है।

हास्य, व्यंग्य नाटकों में घटनाहीनता की जो बारीकियां होती हैं, वे दर्शकों को दर्शकदीर्घाओं में एक गणितज्ञ की भांति व्यस्त रखती हैं, जो हर परिणाम पर 'लोकोत्तर आनंद' के करीब पहुंच जाते हैं,

'जूही के फूल' का हास्य संस्कार सपाटबयानी का संस्कार है। 'मेंढ़क के बीज' जैसी नाटिकाएं एक ऊपरी सतह पर 'कुलीन भाषा' का बेमानीपन तो

झलकाती हैं, लेकिन उनका व्यंग्यार्थ 'कथित संवादों' से परे प्रहार नहीं करता। किसी 'थियेटर' के लिए हास्य-व्यंग्य नाटकों का महत्व दूसरे गंभीर नाटकों से कहीं ज्यादा है, बशर्ते ऐसे नाटक सपाट न हों।

सपाट होना 'नाटक' की सब से बड़ी पराजय है। हिन्दी रंगमंच अगर पराजय के इस बोझ से अभिशप्त है तो रेडियो जैसा माध्यम सपाट नाटकों की वजह से प्रबुद्ध जनों से बहुत दूर जा पड़ा है। भारत में रेडियो के प्रचार की संभावनाओं ने जो करिश्मा दिखाया है, जनरुचि जिस रूप में 'रेडियो के प्रति आशावान है, रेडियो नाटक उसी गति से अपने पिछड़ेपन से पीड़ित है'। इसकी अपनी वजहें हैं। रेडियो का व्यवस्था तंत्र इसके लिए जिम्मेदार है। यह रेडियो तंत्र श्री दिनकर कृत 'हे राम' (प्रकाशक : उदयाचल प्रकाशन, पटना-16; मूल्य चार रुपये) को भी रेडियो रूपक का दर्जा देता है। जबकि अपनी समग्र मनोरंजकता के साथ ये रूपक सूचनात्मक निबंध हैं। दिनकर जैसे प्रतिभाशाली कवि अगर इन रूपकों की जगह ओजपूर्ण काव्य लिखते तो संभवतः वह 'कलाकृति' होती। इन तीन रेडियो रूपकों को ध्वनि तथा संगीत निदेशक के संकेत नहीं हैं — जबकि रेडियो रूपकों को ध्वनि संकेतों के जरिये श्रोता इस विशेष अर्थ को ग्रहण करता है जिसके द्वारा 'ध्वनि विंब' दूसरे ऐंद्रिक विंबों में रूपांतरित होते हैं।

स्वामी विवेकानंद और महर्षि रमण के जीवन-वृत्तों के ये सूचनात्मक संभाषण सूत्रधार और वाचक की औपचारिक अपेक्षा नहीं रखते। लंबे-लंबे संवाद रेडियो श्रोता के लिए बाधक भी हैं। कहना न होगा कि 'हे राम' के तीनों रूपक, बिना रूपकत्व के रेडियो जैसे माध्यम पर अतिक्रमण ज्यादा लगते हैं, परंतु अपनी सूचनाधर्मिता के कारण उनकी लोकप्रियता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

*　　　*　　　*

रेडियो की दुनिया से संबंधित चिरंजीत के चार एकांकी नाटकों का संकलन 'मंदिर की जोत' (प्रकाशक : कांत बंधु प्रकाशन, नयी दिल्ली; मूल्य: तीन रुपये पचास पैसे) है। 'राम-रहीम', 'पतित पावन', 'इन्द्रधनुष' और 'मंदिर की जोत' — सारे संकलित एकांकी गांधीवादी आदर्श की विजय के एकांकी हैं। इनका मूल स्वर प्रचारवादी नाटकों का स्वर है। राष्ट्रीयता का सस्ता प्रचार करने वाले चिरंजीत स्वयं अपने को प्रचारवादी कहलाये जाने के डर से पीड़ित हो कर भूमिका में कहते हैं, 'प्रचार-साहित्य कह कर नाक-भौं सिकोड़ने वाले कुछ लोग मेरे इन नाटकों को प्रचारात्मक कह सकते हैं।'

उनका वक्तव्य इस बात का स्वयं साक्ष्य है कि उनके नाटक जैसे हैं, वह कहलाये जाने से उन्हें परहेज हैं। जिंदगी के संघर्ष से उपजे किसी संकल्प और किताबी आदर्श में कोई भी विवेकशील-प्राणी फर्क कर सकता है। 'मन्दिर की जोत' का आदर्शवाद तकनीकी सभ्यता और अंतरर्ष्ट्रीयता के इस दौर में 'म्यूजियम' की चीज लगती है। जिस 'राष्ट्रीय चेतना' का जिक्र इन नाटकों में है, वह राष्ट्रीय चेतना सरकारी प्रचारतंत्र की राष्ट्रीय चेतना है जिसका असर अब आंकड़ों के कागजों में विलुप्त हो गया है। राष्ट्रीयता से विमुखता की (भारतीय जन-मानस में क्षेत्रीयता का विष फैलने-फैलाने की) अगर कोई वजह है तो वह गलत ढंग की प्रचारवादी, कोरी-किताबी राष्ट्रीयता की शिक्षा है। जिस भाषा और व्यवस्था को प्रस्तुत करने वाले ये नाटक हैं, वह भाषा बच्चों और नाटकों की उपयोगी भाषा नहीं है। उपदेशवाची और दृष्टांतवाची भाषा, उस यथार्थ से सामना करने में बड़ी बाधा है जो भारत देश को खंडित इकाइयों में बदलना चाहता है। किसी नाटक का लक्ष्य अपने को नाटक सिद्ध करना चाहे न हो, सही यथार्थ से परिचित कराना जरूर है। जो नाटक 'लोक स्वभाव' का यथार्थ नहीं देता, उसे 'नाटक' की जगह दिलाना एक मुश्किल काम है।

हिन्दी में नाटक न होने के दुःखांत से परिचित कराने वाले इन नाटकों की सार्थकता, हाशिए की सार्थकता है, जहां आप याद्दाश्त के लिए ही सही 'कुछ' रेखांकित करते जाते हैं। सुखांत नाटकों के इस देश में निराशा उपजाने वाले नाटकों की लंबी परंपरा है, इसलिए पाठक-दर्शक आश्वस्त रहता है कि वह एक ऐसी चीज देख पढ़ रहा है जिसका ताल्लुक उससे नहीं है। इन नाटकों को अपने आप से जोड़ने का जोखिम उठाने का मतलब समकालीन जिंदगी से हट कर 'होने मात्र' के आभास से जुड़ना है। दुःखांत के इस परिदृश्य से हटना भी तो त्रास ही है।

['धर्मयुग' से साभार]

विविध

*नीड़ का निर्माण फिर

- तारा तिक्कू

पिछले कुछ अर्से में हिंदी में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें से मुझे अविस्मरणीय लगी है 'नीड़ का निर्माण फिर'। लेखक हैं कविवर– बच्चन– कविवर बच्चन के स्थान पर यदि मैंने उन्हें सशक्त गद्य-लेखक बच्चन कहा होता तो 'नीड़ का निर्माण फिर' के संदर्भ में अधिक उपयुक्त होता। पर बच्चन जी का कवि रूप ही अधिक लोकप्रिय रहा है इसलिए स्वभाववश कविवर बच्चन ही निकल जाता है।

पिछले वर्ष इसी माला का पहला भाग -- 'क्या भूलूं , क्या याद करूं' प्रकाशित हुआ था। मैंने वह भी पढ़ा था और मैं बच्चन जी की इस बात से सर्वथा सहमत हूं कि जरूरी नहीं कि क्या भूलूं, क्या याद करूं पहले से न पढ़ रखने के कारण नीड़ का निर्माण फिर आपको बिल्कुल असम्बद्ध, संदर्भ-रहित अथवा पहेलीवत् लगे। मेरे विचार में स्वतंत्र रूप से पढ़ने पर एक अलग पुस्तक के रूप में, किसी पूर्वापर संबंध के बिना भी 'नीड़ का निर्माण फिर' अपने आप में पूर्ण है।

---

* लेखक : बच्चन; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 6; मूल्य : 12रुपये।

'नीड़ का निर्माण फिर' मुझे कई दृष्टियों से 'क्या भूलूं, क्या याद करूं' से अधिक सहज और सरस लगा। किसी भी पुस्तक की अच्छाई और बुराई बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वह पाठक को कितनी रुचिकर लगती है। विशेष रूप से मेरे जैसे अधीर पाठक को। हिंदी पुस्तकें चाहे वे उपन्यास हों या कहानी-संकलन, उन्हें एक सांस में पढ़ जाना मेरे धीरज के बाहर की बात है।

मैं 'नीड़ का निर्माण फिर' को एक सफल कृति मानती हूं। पूरी पुस्तक में एक ताजगी (फ्रेशनेश) है, जिसकी आज के जीवन-संघर्ष के सन्दर्भ में साहित्य में कमी है। 'नीड़ का निर्माण फिर' ताजी हवा का एक ऐसा झोंका है, जिसमें भीनी-भीनी सुगंध भी शामिल है, जो किसी के भी मन-प्राण को ताजगी देने में समर्थ है। आज जो पुस्तकें हिंदी में निकल रही हैं उनमें अधिकांशतः बार बार वही बातें दोहराई जाती हैं। वही बिम्ब, वही उपमान। शब्द भिन्न होते हैं, भाव वही। भावों की एकरसता किसी भी पुस्तक के पढ़ने में भारी बाधा है, इस बाधा का अहसास मुझे 'नीड़ का निर्माण फिर' पढ़ते समय नहीं हुआ।

वास्तव में बच्चन जी का अपने प्रति अनासक्त रहना (अपने प्रति से मेरा तात्पर्य अपनी रचनाओं के प्रति निर्मोह रहने से है), उनकी कटु से कटु आलोचना करने वालों के लिए भी अनुकरणीय है। बच्चन जी ने बहुत ही तटस्थ होकर 'नीड़ का निर्माण फिर' में अपने आपको परखा है। आश्चर्य होता है कि बच्चन जी इतने बेलाग हो कर अपने संबंध में कैसे लिख सके?

'नीड़ का निर्माण फिर' बच्चन जी को समझने में तो सहायक है ही साथ ही उनके काव्य का भी अच्छा विश्लेषण इसमें मिलता है। उनकी कविताओं का विश्लेषण अन्य समालोचकों ने अपनी दृष्टि से किया है बच्चन जी ने उसे सही दृष्टि से या जिस रचना प्रक्रिया से गुजर कर वह लिखी गई है उस दृष्टि से प्रतिपादित किया है। इस सन्दर्भ में मुझे याद आ रहा है, एक शब्द— संगी— इस शब्द का अर्थ कोरे हिंदी प्रेमी कदाचित नहीं लगा सकते।

ऐसा लगता है कि बच्चन जी के बारे में, जो भी साहित्य लिखा गया है उसके प्रति वे बहुत सजग रहे हैं। और शायद उसकी एक-एक पंक्ति उन्होंने पढ़ी है। यहां तक कि कई कविता-संग्रहों में जो उनके संदर्भ दिए गए हैं उनमें क्या गलतियां रह गई हैं इसका संकेत भी हमें बच्चन जी के 'नीड़ का निर्माण फिर' में मिलता है।

बच्चन जी के शब्दों में किसी ने उन्हें मॉर्बिड कहने का दुःसाहस नहीं किया। उन्होंने स्वयं ऐसा महसूस किया कि वे कहीं पर मॉर्बिड थे। जब वह मॉर्बिडिटी उन पर हावी होने लगी तो उन्होंने इच्छा-शक्ति से अपने आप को इसके ऊपर उठा लिया। अपनी इच्छा-शक्ति की प्रबलता का उदाहरण उन्होंने दो अन्य संदर्भों में भी दिया है। इच्छा-शक्ति की प्रबलता के बिना शायद कोई भी पिता अपने बच्चों के स्वास्थ्य के लिए मदिरा तथा मांस का त्याग नहीं कर सकता था। यह उनकी प्रबल इच्छा-शक्ति का ही प्रमाण है। यद्यपि इस त्याग के पीछे उनके संस्कार कार्य करते प्रतीत होते हैं। कदाचित् यह त्याग-भावना उन्हें विरासत में अपने पिता से मिली।

पुस्तक में बच्चन जी के जीवन में आए उतार-चढ़ाव और लेखक की उनसे जूझने की शक्ति बच्चन जी को समझने में सहायक है। जीवन की कठिनाईयों ने उन्हें 'बिटर' बनाने के बजाए अधिक संवेदनशील बना दिया। मैं उनकी पंक्ति — 'जीवन का ठीक दर्शन उसे जीने, भोगने से होता है' को सार्थक मानती हूं।

बच्चन जी ने अधिकांश व्यक्तियों के चित्र, जो उनके जीवन में महत्व रखते थे, बहुत सटीक और सच्चे उतारे हैं। उनमें से कई जो आज संसार में नहीं हैं फिर भी बच्चन जी द्वारा उनका विवरण पढ़ने से वह आंखों के सामने दिखाई देते हैं। विशेष रूप से यहां मेरा तात्पर्य डॉ० अमरनाथ झा और उनके मसूरी के मकान लिनवुड से है।

अपनी पहली पुस्तक 'क्या भूलूं, क्या याद करूं' में बच्चन जी ने लोकशील का कम ध्यान रखा है और अपने सम्पर्क में आने वाली महिलाओं के मूल नाम दिए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो महिलाएं उनके जीवन में क्षणिक महत्व रखती थीं उनको उन्होंने "चहबच्चा" कह कर संबोधित किया है तथा जिनका उनके जीवन पर गहरा असर पड़ा उन्हें 'आकाश-गंगा' कह कर। एक आकाश गंगा थी आयरिस।

बच्चन जी के शब्दों में उन्होंने दूसरों के लोकशील का अधिक ध्यान रखा है। कविवर पंत के लिए दूसरों की राय के अनुसार उन्हें 'आलोचना-क्षुब्ध' तथा 'कीना रक्खू' लिख देना कहां तक उचित है ? यदि बच्चन जी का स्वयं का ऐसा विचार होता तो शायद यह बात नहीं अखरती या वे कम-से-कम इस संबंध में अपनी राय ही व्यक्त कर देते ?

कहीं कहीं बच्चन जी मुझे दार्शनिक भी नजर आए और साथ ही ऐसा प्रतीत हुआ कि पुराने संस्कारों को उन्होंने नया रूप देने का प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में उनकी एक पंक्ति 'दुःख से अधिक उपयोगी जीवन में कम ही चीजें होतीं' तथा 'सत्यनारायण की कथा का आधुनिकीकरण' विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

पुस्तक में अनेकों स्थानों पर परंपरागत नीति वाक्यों को नवीन संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। ये वाक्य पुस्तक की सुन्दरता और भाव-गरिमा बढ़ाने वाले हैं। इनमें से दो-एक मुझे याद आ रहे हैं जैसे — 'वार्धक्य को मैंने इतना सुन्दर न पहले कभी देखा था न अब तक देखा है' तथा 'साहित्यिक अभिरुचि के पौधे को सूखते देर नहीं लगती, यह जिसमें हो उसे जतन से सींचते रहना चाहिए' या 'कीट्स कविता लिख कर मरेगा, पुलटिस बना कर मरेगा नहीं' आदि -----

बच्चन जी के दूसरें विवाह का प्रसंग भी बहुत भावुकतापूर्ण है। उसका वर्णन बच्चन जी ने बहुत सच्चाई तथा गहराई से किया है।

कुल मिला कर पुस्तक बहुत सुन्दर है—आत्म-कथा साहित्य में बेजोड़। भाव, रचना शैली तथा गंभीरता की दृष्टि से अद्वितीय। पुस्तक का नाम भी बहुत सार्थक है।

बच्चन जी की इसी माला की अन्य दो पुस्तकों — 'हंस का पश्चिम प्रवास' और 'जीवन की आपाधापी' की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

* भारतीय साहित्य रत्नमाला

– जगदीश चतुर्वेदी

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता तथा इसमें अंतर्निहित विभिन्न विशिष्टताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने तथा भारत की मान्य सोलह भाषाओं के साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रंथ का प्रणयन हुआ है। इस संकलन की योजना गांधी जन्म शताब्दी के अवसर पर राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति की राष्ट्रीय एकता उप-समिति ने बनाई थी। इस ग्रंथ के हिन्दी संस्करण का कार्य शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया था और पन्द्रह भारतीय भाषाओं की मूल सामग्री का हिंदी अनुवाद तथा हिंदी भाषा की मूल रचनाएं विद्वत् समुदाय द्वारा जुटाने का कार्य आयोग ने निश्चय ही सफलतापूर्वक संपन्न किया है। प्रत्येक भारतीय भाषा से चयन के लिए संबद्ध भाषा के लब्ध-प्रतिष्ठ रचनाकार या विद्वान को चुना गया और उनकी सहायता से सामग्री एकत्रित की गई। साथ ही विभिन्न भारतीय भाषाओं की चुनी हुई रचनाओं

* प्रधान संपादक : श्री कृष्ण दयाल भार्गव ; प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ; पृष्ठ संख्या : 1200 ; मूल्य : 16 रुपए।

या उद्धरणों के साथ प्रत्येक भाषा की ऐतिहासिक समीक्षा प्रस्तुत कर के इस ग्रंथ की उपादेयता को बढ़ाया गया है।

ऐतिहासिक समीक्षाएं अधिकांश एकेडेमिक न होकर मौलिक सूझबूझ तथा संबद्ध भाषा के क्रमिक विकास की परिचायक हैं। प्रो० के० आर० श्रीनिवास आयंगर ने अंग्रेजी में हुए भारतीय लेखन की युक्ति-युक्त विवेचना प्रस्तुत की है। अंग्रेजी द्वारा भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन को जो बल मिला, उस पर भी उन्होंने ध्यान दिलाया है। विभिन्न भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों की विशिष्ट शैलियों और विशिष्टताओं का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत लेख में मिलता है। प्रारंभिक रचनाकारों से लेकर अद्यतन रचनाकारों तथा रचना पद्धतियों का विवेचन इसमें किया गया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की अंग्रेज़ी में रची गई कविता 'चाइल्ड' का यहां उल्लेख है, तो तोरुदत्त जैसी भावप्रवण कवियित्री के 'एन्शैंट बैलेड्स एण्ड लीजेंड्स ऑफ हिन्दुस्तान' का भी यहां सुविचारित वर्णन मिलता है। समीक्षाकार ने उनके काव्य के संबंध में लिखा है कि वर्जिल के एक वाक्यांश में उनकी कविता पर टिप्पणी की जा सकती है : आसुओं का संस्पर्श। अल्पावस्था में काल कवलित हो जाने वाली तोरुदत्त ने निश्चय ही भारतीय अंग्रेज़ी कविता को एक दिशा प्रदान की है। चयन में संगृहीत उनकी कविता 'हमारा कैसुरीना का पेड़' की ये पंक्तियां मानवीय संवेदन से आप्लावित हैं :-

> वह शोक गीत की ध्वनि क्या है जो सुन पड़ती है
> तट पर पछाड़ खाते सागर की तरह?
> यह वृक्ष का विलाप है, अपार्थिव वाणी है
> जो कदाचित् अनजानी भूमि तक पहुंच जाए
> अनजानी! किन्तु आस्था की दृष्टि में सुपरिचित!

तोरुदत्त के पश्चात् भारत की ख्याति प्राप्त अंग्रेज़ी कवयित्री सरोजिनी नायडू के कविता जगत् का सारगर्भित विवेचन समीक्षाकार ने प्रस्तुत किया है। उनकी चयन में संगृहीत कविताएं कवयित्री के दर्शन एवं जीवन की परिचायिनी हैं। भारत के दार्शनिक कवि अरविंद का विवेचन भी सटीक है तथा उनके समाजशास्त्री, योगी और शिक्षाविद् रूप को प्रतिभासित करता है। उनका 'सावित्री' महाकाव्य निस्संदेह एक उपलब्धि है। दार्शनिक सर्वपल्लि राधाकृष्ण का उद्धृत अंश 'सभ्यता का भविष्य' आज के वैज्ञानिक युग की विभीषिका तथा उससे उत्पन्न जड़ताओं को दिग्दर्शित करता है।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन ने अंग्रेजी गद्य के विकास में अभूतपूर्व योग दिया है। अंग्रेजी पत्रकारिता को इस दृष्टि से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'मराठा' के संपादक बाल गंगाधर तिलक के अलावा बहराम जी मालाबारी, श्री अरविन्द, लाला लाजपतराय, कस्तूरी रंगा अय्यर और टी० प्रकाशम् के नाम उल्लेखनीय हैं। महात्मा गांधी भी अंग्रेज़ी के पत्रकार थे, उन्होंने पहले 'यंग इंडिया' और फिर 'हरिजन' का संपादन किया।

अंग्रेज़ी में जिन भारतीय उपन्यासकारों ने ख्याति अर्जित की, उनमें भवानी भट्टाचार्य, आर० के० नारायण, शांता रामाराव, खुशवंत सिंह और अनीता देसाई के नाम विशिष्टता रखते हैं। राजाराव का उपन्यास 'दि सर्पेन्ट एंड दि रोप' अंग्रेज़ी भाषा में नए क्षितिज़ों की खोज करता है। 'कंठापुर पर वैशाखी वर्षा' नामक अंश जो प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत है, राजाराव के शिल्पगत वैशिष्ट्य तथा सूक्ष्म निरीक्षण को प्रतिभासित करता है।

भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य के उपरांत असमिया साहित्य की ऐतिहासिक समीक्षा डॉ० महेश्वर नियोग ने तथा उड़िया साहित्य की अध्यापक वेणुधर राउत ने पतित पावन परिड़ा के सहयोग से प्रस्तुत की है। असमिया और उड़िया भाषा की प्रारंभिक कृतियां 'चर्यापदों' में प्राप्त होती हैं। किन्तु ईसवी चौदहवीं शताब्दी से ही इन भाषाओं का साहित्य व्यवस्थित रूप में प्राप्त होता है। माधव कन्दली इस समय के असमिया के प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने 'रामायण' के पांच कांडों का रूपान्तर किया था। श्री शंकर देव (1449-1568) द्वारा प्रवर्तित नव वैष्णव आंदोलन ने देश में पुनर्जागरण प्रारंभ किया। शंकरदेव का वैष्णव-धर्म अद्वैत-वादी भावना पर आधारित है। भगवान श्रीकृष्ण के गुण कीर्तन तथा लीलाओं के वर्णन को ही ये ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते थे। 'कीर्तन घोषणा' इस प्रकार का इनका अलभ्य ग्रंथ है। इनके परवर्ती माधवदेव ने 'वरगीत' और 'चोरघरा', 'पिम्पुरा गुचुबा' आदि कलात्मक नाटकों का सृजन कर शंकरदेव की कृतियों की 'दास्य' भावना को 'वात्सल्य' में रूपांतरित किया। इनके समकालीनों में उन्नत कन्दली और राम सरस्वती का नाम अविस्मरणीय है। आधुनिक असमिया साहित्य के प्रवर्तक लक्ष्मीनाथ बैज बरुवा के कृतित्व का सांगो-पांग विवेचन समीक्षक ने किया है। प्रस्तुत संकलन में संगृहीत उनकी कहानी 'भदरी' मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रधान प्रभावपूर्ण रचना है। इनके अतिरिक्त हेमचन्द्र गोस्वामी, कमलाकांत भट्टाचार्य, पद्मनाथ गोहाई बरुवा आदि के काव्य वैशि-ष्ट्य पर समीचीन विवेचन मिलता है। असमिया गद्य के विकास पर विचार

करते हुए लेखक ने अद्यतन लेखकों यथा नीलमणि फूकन, लक्ष्मीधर शर्मा, केशव महन्त, हेम बरुवा आदि के कृतित्व पर भी दृष्टिपात किया है। प्राचीन कवियों के अलावा आधुनिक कवियों यथा नलिनी बाला देवी, रत्नकान्त बरकाकति, देवकान्त बरुआ आदि की कविताएं संगृहीत कर ग्रंथ की उपादेयता की श्रीवृद्धि की गई है। उड़िया साहित्य का क्रमिक विकास बताते हुए उसे सुविधा के लिए सात खंडों में विभाजित किया गया है। बौद्ध सिद्ध लेखकों (सातवीं शताब्दी) से प्रारंभ कर स्वातंत्र्योत्तर साहित्य तक की बृहत् समीक्षा इसमें प्रस्तुत की गई है। सुरेन्द्र महन्ती जैसे युवा लेखकों की रचना भी चयन में सम्मिलित कर अत्याधुनिक साहित्य को इस खंड में प्रश्रय दिया गया है, जो शुभ है।

उर्दू भाषा तथा साहित्य का सम्यक् विवेचन इस ग्रंथ में है। चयनकर्ता श्री जियाउल हसन फारूकी ने चौदहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक के कवि, लेखकों के विषय में तटस्थ पर्यवेक्षण ऐतिहासिक समीक्षा में प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों में 'उर्दू साहित्य ने हमेशा समय-समय पर बदलते हुए भारतीय परिदृश्य का प्रतिनिधित्व किया है।' जौक, मोमिन, गालिब और नजीर अकबरावादी के काव्य के संबंध में उनका विवेचन अत्यन्त सटीक एवं समीचीन है। उर्दू के गद्य साहित्य पर उनकी संक्षिप्त टिप्पणी भी सारगर्भित है। नाट्यलेखन के प्रति लेखकों का रूझान बढ़ाने के लिए उन्होंने अपने लघु निबंध में इंगित किया है। समकालीन निबन्धकारों में उन्होंने मात्र आबिद हुसैन का नाम विशिष्ट संदर्भ में लिया है, जो बहुत सीमा तक सही लगता है। संकलन में संगृहीत रचनाओं में इस्मत चुगताई की कहानी 'नन्हीं की नानी', डॉ० आबिद हुसैन की गद्य कृति 'हिन्दुस्तानी मुसलमान', मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवा का उपन्यास अंश 'उमराव जान अदा', मीर अम्मान देहलवी और नजीर अहमद की गद्य कृतियां उर्दू साहित्य की विभिन्न विकासोन्मुख शैलियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मीर, गालिब, इकबाल और नजीर अकबराबादी की संकलित कविताएं भी कवियों की विभिन्न मनः स्थितियों की परिचायक है। इकबाल की कविता 'समय' एक युग सत्य का उद्घाटन करती प्रतीत होती है:-

> जो था वह है नहीं जो है वह रहेगा नहीं यही एक भेद की बात है,
> समय जिसकी प्रतीक्षा में है वह प्रकट होने वाला ही है।
>
> – इकबाल, पृष्ठ 226

उर्दू साहित्य के बाद अकारादि क्रम से कन्नड़ साहित्य का संकलन किया गया है। प्राचीन से लेकर आधुनिक कन्नड़ साहित्य के इस संकलन में वैविध्य है

तथा संकलित रचनाएँ क्रमिक विकास की द्योतक हैं । किन्तु 'ऐतिहासिक समीक्षा' में डॉ० आर० एस० मुगलि का कन्नड़ साहित्य पर लेख बहुत छोटा है और वह प्राचीन कन्नड़ से ही संबंधित है । अन्य संगृहीत साहित्यों की समीक्षा की तुलना में यह विवेचन समीचीन नहीं लगता । यों संपादक ने चुनी हुई रचनाओं के इस खंड विशेष को 'प्राचीन कन्नड़' और 'आधुनिक कन्नड़' नाम से विभाजित कर पाठकों को सुविधा प्रदान की है । आधुनिक कन्नड में सर्वश्री बी० एम० श्रीकंठय्या, पंजे मंगेशराव, डी० डी० गुण्डप्पा, कु० वें० पुटप्पा, श्रीनिवास, द० रा० बेन्द्रे, पु० ति० नरसिंहाचार, जी० पी० राजरत्नम्, र० श्री० मुगलि, वी० कृ० गोकाक तथा एम० गोपाल कृष्ण अडिग की रचनाएँ संगृहीत की गई हैं ।

कश्मीरी साहित्य का चयन प्रो० जे० एन० कौल ने किया है । कश्मीरी साहित्य को चार काल खंडों में विभाजित कर सर्वांगीण वर्णन प्रस्तुत किया गया है । प्रारंभिक काल रहस्यात्मक और उपदेशात्मक सूक्तियों का युग था, दूसरा काल (1555 से अठारहवीं शताब्दी तक) गूढ़ वाख तथा स्थायी टेकों वाले गीतों से संश्लिष्ट था । यह लोल गीतों का काल भी कहलाता है । ये गीत सीधे हृदय को छूते हैं । इस काल की दो स्त्री लेखिकाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं – हब्बा खातून और अरणीमाल । अरणीमाल के ग्रंथ में संगृहीत गीतों में एक की पंक्ति है :-

बचपन के मेरे साथी, आ।
तेरे चरणों पर मैं अपने नेत्र की पुतलियां वार दूं ।

अठारहवीं शताब्दी के अंत से प्रारंभ होकर तीसरा काल खंड वर्तमान शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों तक जाता है । यह युग साहित्यिक समृद्धि का युग है । इस समय में अनुवाद भी पर्याप्त मात्रा में हुए और कश्मीरी कवियों ने पौराणिक इतिवृतों पर आधारित प्रेमपरक गीत भी लिखे । इस शताब्दी के प्रमुख कवि हैं – महमूद गामी और वलीउल्लाह मुतू । चौथा काल खंड आधुनिक साहित्य का है । इस काल में गुलाम महजूर अहमद जैसे लोकप्रिय कवि हुए, जिन्होंने देशभक्ति से ओतप्रोत कविताएँ लिखीं । स्वातंत्र्योत्तर पुनरुत्थान के लेखक हैं – दीनानाथ नादिम, नूर मोहम्मद, रहमान राही, अमीन कामिल, शंकर रैना आदि ।

गुजराती साहित्य की श्री चन्द्रकान्त मेहता द्वारा की गई ऐतिहासिक समीक्षा भी कन्नड़ साहित्य के समान सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत नहीं करती ।

अत्यंत संक्षेप में गुजराती का क्रमिक विकास दिखा कर कृतियों का संकलन कर दिया गया है । यों कुछ नाम अवश्य परिगणित किये गये हैं, जिन्हें आधार मान कर साहित्य के विकास पर चिन्तन किया जा सकता है । प्राचीन संत कवियों के उद्धरणों के अलावा राजा कलापी जैसे व्यक्ति निष्ठ कवि की कविता 'दही' को संकलित कर रचनाओं में वैविध्य रखा गया है । नये कवियों में सुंदरम्, झवेरचंद मेघाणी, राजेन्द्र शाह, निरंजन भगत, प्रियकान्त मणियार, हसमुख पाठक तथा नलिन रावल की कविताएँ प्रभावपूर्ण हैं । गद्य कृतियां भी समसामयिक तथा वैविध्यपूर्ण हैं ।

तमिल और तेलुगु साहित्य के चयनकर्ता हैं क्रमशः श्री आर० रंगाचारी और डा० डी० वेंकटावधानी । दोनों विद्वानों ने सम्बद्ध साहित्य का क्रमिक विकास बताते हुए, विभिन्न कालों की रचनाओं की विशिष्टता तथा रचनाधर्मिता का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया है । तमिल खण्ड में संघ-कालीन कृतियों से लेकर समकालीन रचनाओं तक का संग्रह संकलित किया गया है । तेलुगु साहित्य की विशद विवेचना पाठकों को सम्बन्धित साहित्य की पर्याप्त जानकारी प्रस्तुत करती है, किन्तु संकलित रचनाओं में आधुनिक साहित्य की कृतियों की अत्यधिक कमी अखरती अवश्य है ।

यही कमी पंजाबी साहित्य के अन्तर्गत संगृहीत रचनाओं में भी पाई जाती है । जहां एक ओर शेख फरीद और गुरु नानक देव तथा गुरु अर्जुनदेव की पर्याप्त रचनाएं प्राचीन पंजाबी साहित्य का प्रतिनिधित्व करने के लिये संकलित की गई हैं, वहां आधुनिक साहित्य से मात्र तीन कवि - भाई वीर सिंह, प्रो० पूरन सिंह और धनीराम चात्रिक - को ही संकलन में लिया गया है । गुजराती, बंगला, असमिया और हिन्दी भाषाओं के संकलन की तुलना में यह संग्रह समीचीन प्रतीत नहीं होता । इस खण्ड में एक भी गद्य रचना का न होना अखरता है । हां, डा० दर्शन सिंह मैनी द्वारा लिखी गई ऐतिहासिक समीक्षा काफी विद्धतापूर्ण एवं तथ्यपरक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

पंजाबी साहित्य की तुलना में बंगला साहित्य की रचनाओं का चुनाव पर्याप्त युक्ति युक्त एवं वैविध्यपूर्ण है । इसमें रवीन्द्र नाथ ठाकुर की रचनाओं के साथ बुद्धदेव बसु, जीवनानन्द दास और काजी नजरुल इस्लाम की कविताएं भी हैं । नजरुल की ये पंक्तियां जो संकलन में हैं, मार्मिक और युगदंश से उत्प्रेरित हैं :-

काल छन्द-गति होकर विगत का निर्जीव शरीर
अपने कन्धों पर उठाकर चला जा रहा है
कहां है वह चक्रधारी
जो इस मृत देह के टुकड़े-टुकड़े कर देगा ?

श्री आर० के दास गुप्त द्वारा लिखी गई 'ऐतिहासिक समीक्षा' बंगला साहित्य के क्रमिक विकास, मुख्य घटनाओं तथा व्यक्तियों की पर्याप्त जानकारी तथा दूसरी शती से आधुनिक साहित्य तक का विहंगावलोकन प्रस्तुत करती है। बंगला रंगमंच के सम्बन्ध में भी पृथक से विवेचन समीचीन है। अन्य भारतीय भाषाओं की ऐतिहासिक समीक्षाओं में इस महत्वपूर्ण विधा पर अधिक विस्तार से सटीक प्रकाश नहीं डाला गया है।

मराठी और मलयालम साहित्य के खण्डों में क्रमशः डा० डी० वी० पटवर्धन और श्री के० के० नायर की ऐतिहासिक समीक्षाएं तथा श्री पटवर्धन एवं प्रो० पी० के० नारायण पिल्ले द्वारा किया गया रचनाओं का चयन वैविध्यपूर्ण एवं साहित्य के क्रमिक विकास का द्योतक है। सन्त ज्ञानेश्वर के प्राचीन मराठी सन्त काव्य से प्रारम्भ करके अत्याधुनिक कवियित्री इन्दिरा संत तक की रचनाएं संकलित की गई हैं। मलयालम साहित्य के अन्तर्गत चयन की गई रचनाओं में एक ओर बारहवीं शताब्दी के भक्त कवि चीरामन की रचनाएं हैं, तो दूसरी ओर जी० शंकर कुरूप की 'सूर्यकान्ति' जैसी रचनाएँ भी संकलित की गई हैं।

संस्कृत साहित्य का विशाल भण्डार तमाम भारतीय भाषाओं का प्रेरणा स्रोत रहा है। यों भी संस्कृत भारोपीय भाषा परिवार की सर्वाधिक प्राचीन भाषा है। वैदिक साहित्य की समृद्ध परम्परा संस्कृत से निसृत है। यहां डा० वी० राघवन् द्वारा संगृहीत रचनाओं में ऋग्वेद से लेकर शीला भट्टारिका तक की रचनाएं रखी गई हैं। कालिदास की सभी महत्वपूर्ण कृतियों से पद्यांश लिए गए हैं। शूद्रक, भारवि, माघ, भवभूति, सुबन्धु, आदि की रचनाएं उद्देश्यपरक हैं तथा उनकी कृतियों से सुविचारित रूप से ली गई प्रतीत होती हैं। संस्कृत साहित्य माला खण्ड निश्चय ही तुलनात्मक दृष्टि से काफी वैविध्यपूर्ण एवं युक्ति-युक्त है।

संस्कृत साहित्य के बाद सिंधी साहित्य में प्रस्तुत सामग्री वैविध्यपूर्ण एवं नीतिपरक है। श्री एन० आर० मलकाणी द्वारा चुने गये विद्वद्वर्ग ने

इन रचनाओं का चुनाव किया है। ऐतिहासिक समीक्षा के अनुसार प्राचीन सिंधी साहित्य उपलब्ध नहीं है, आक्रमणकारियों ने इस बहुमूल्य संपत्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। शाह अब्दुल करीम की कविता, मामोई के बैंत, काजी कजान के दोहे, यही प्राचीनतम सिंधी साहित्य के अवशेष हैं, जो उपलब्ध हैं। शाह अब्दुल करीम का जीवन काल 1538-1625 तक माना जाता है। अठारहवीं शताब्दी में हमें सिंधी कविता का उत्कर्ष दिखाई देता है। शाह अब्दुल लतीफ इस समय के श्रेष्ठतम कवि हुए हैं, जिनमें अनुभूति एवं विषय-वस्तु तथा विभिन्न काव्य शैलियों का वैविध्य पाया जाता है। आधुनिक सिंधी कविता जीवन की विभिन्न ऊहापोहों एवं विसंगतियों का चित्रण कर रही है। सिंधी गद्य साहित्य भी काफी विविधतापूर्ण एवं प्रौढ़ता से संश्लिष्ट है।

हिंदी साहित्य के चयनकर्ता हैं डा० नगेन्द्र। हिन्दी साहित्य के सांगोपांग विवेचन तथा उसके वैविध्य को परिलक्षित करने के लिए उसे कविता और गद्य नामक दो खंडों में विभाजित किया गया है तथा ऐतिहासिक समीक्षा में विस्तार से इन दोनों विद्याओं का क्रमिक विकास प्रस्तुत किया गया है। चयन तथा विस्तार की दृष्टि से निश्चय ही यह खंड अन्य साहित्यों की तुलना में अधिक सुचित्य तथा सारग्राही प्रतीत होता है। जहां आदिकाल से आधुनिक हिन्दी काव्य का क्रमिक विकास दिखाकर चयन में चंद बरदाई, विद्यापति, जायसी, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, केशव, बिहारी तथा घनानंद आदि की रचनाएं संकलित की गईं हैं, वहीं आधुनिक हिन्दी कविता के शीर्ष कवियों सर्वश्री भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, सियारामशरण गुप्त तथा दिनकर की रचनाएं भी आधुनिक काव्य की विविधता एवं प्रांजलता की परिचायक हैं।

विभिन्न हिन्दी गद्यकारों की शैलियों का दिग्दर्शन संकलित गद्य की कृतियों से किया जा सकता है। गद्य साहित्य पर पृथक् से समीक्षा देना भी समीचीन प्रतीत होता है।

'भारतीय साहित्य रत्नमाला' का प्रकाशन निश्चय ही भारतीय साहित्य के सम्यक् अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें संकलित सामग्री से भारतीय भाषाओं के साहित्य के संबंध में तथा सृजनात्मक रचनाओं के अनुशीलन से सभी भारतीय भाषाओं के उस भावनात्मक उत्स का आभास

मिलता है जिसके परिणामस्वरूप वे एक दूसरी की पूरक हैं। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का यह कार्य ऐतिहासिक महत्व रखता है और इसके द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का पर्यवेक्षण किया जाना संभव है।

*कहनी अनकहनी

— विवेकी राय

'कहनी - अनकहनी' में सन् 1961 और 1963 के बीच लिखे भारती के पैंतालीस वैयक्तिक निबन्धों को संकलित किया गया है। सजीव सम्प्रेषण इन निबन्धों की विशेषता है। समाचारों के रोमांस और सम-सामयिकता की तीखी पकड़ के साथ पहली बार एक साहित्यकार-पत्रकार का परिनिष्ठित कृतित्व पूर्ण दीप्ति के साथ उभरा जिसमें सही मायने में नये मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट है। इन ललित निबन्धों में विकसित पत्रकारिता का वह रूप दृष्टिगोचर होता है जिसमें शुष्क तथ्यात्मक सूचनाओं से रहित रागबोध के स्तर पर जनचेतना से जुड़े रहने की प्रक्रिया क्रियाशील है। रचना को कौतूहलवर्धक उठान देकर और फिर मुख्य विषय पर झपट्टा मारकर आ जाने के साथ एक गहन प्रश्नशीलता जगा कर चट अन्त हो जाना, मनोरंजक आरम्भ को गम्भीर अन्त देना, चिन्तन को चुहल में लपेट कर उपस्थित करना आदि तो विधा की विशिष्टताएं हैं ही, सबसे अधिक आश्चर्य है सामान्य-विशिष्ट समाचारों पर प्रतिक्रियाओं का वह फैलाव जिसमें निखालिस व्यंग्य अथवा टोटल चिन्तन के बीच एक सम्पूर्ण सम-सामयिक राष्ट्रीय जीवन-परिवेश चित्रित हो उठता है। किसी समय 'शिव

---

*लेखक : धर्मवीर भारती; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6, मूल्य : 6 रुपये।

शम्भु के चिट्ठे' व्यंग्य-विनोद के साथ जिस समसामयिकता की अन्तर मर्म उद्घाटन-वृत्ति के उत्साह में लिखे गये उसका निखार 'कहनी-अनकहनी' में देख रहे हैं।

कृति में मुख्यतः व्यंग्य रचनाएं हैं। राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय व्यंग्य-सन्दर्भों को अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से, समाचारों के आधार पर भारती उठाते हैं और उसे कथागीतमयता में भांज कर विचित्र इन्द्रधनुषी अन्विति दे देते हैं। इन निबन्धों का आस्वादन आलोचक मन में एक प्रश्न उठाता है कि भारती अब ऐसा क्यों नहीं लिखते हैं? वास्तव में इस समस्त व्यंग्य चिन्तन के भीतर एक पीड़ा है जो युग की विसंगतियों और अन्तर्विरोधों की तीखी अनुभूति में उत्पन्न हुई है। उस पीड़ा के झोंक में भारती ने कस-कस कर व्यंग्य के पैने तीर बरसाये हैं। किन्तु सब मिलाकर यह पत्थर पर का मारना रहा। आनेवाला कल इन सन्दर्भों के चित्रों से मोहभंग के दशक की सही तसवीर का आकलन कर सकेगा और पिछले दशक का टोटल चिन्तन एकत्र मिल जाएगा, यही निबन्धों की उपलब्धि है। निबन्धकार ने पंजाबी सूबा, उर्दू समस्या, राजनीतिक अनशनों के औचित्य, विश्वविद्यालयों में राजनीति प्रवेश और मानसरोवर समस्या आदि जैसी महत्व-पूर्ण राष्ट्रीय स्तर की समस्यात्मक चर्चाओं को गम्भीर भाव से उपस्थित किया है। देश के अतिरिक्त अफ्रीका आदि विदेश की घटनाओं के समाचारों पर प्रति-क्रियाएं हैं। 'एक बड़े अचरज की बात है' जैसे वाक्यों से आरम्भ इन निबन्धों में सुरुचिपूर्ण साहित्यिक स्वाद और उच्चस्तरीय चित्रण का आग्रह सर्वत्र है। छोटी बातों को बड़े सन्दर्भों से जोड़ कर देखने की क्षमता अद्भुत है।

सम्प्रति बहुत कुछ भारीभरकम साहित्य मात्र दिखावे को लिखा जाना सामान्य प्रवृति है। पाठकीय रूचि-सम्मान के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। 'कहनी - अनकहनी' में शत-प्रतिशत पाठकीय रूचि की निकटता के साथ आधुनिक पाठकों के मिजाज की पहचान है। किन्तु, शैलीकार कहीं भी बंधता नहीं है। नये समाचारों की परिधि पर चक्कर काटने के साथ भारतीय संस्कृति और समाज-साहित्य की केन्द्रवर्ती दृष्टि कहीं भी विचलित नहीं होती है। 'बसन्त समाचार' पढ़कर द्विवेदी जी का निबन्ध 'आम फिर बौरा गये' का स्मरण आ जाता है। अन्दाज वही है पर शिल्प की पकड़ नयी है। द्विवेदी जी जहां संस्कृति के स्रोतों को छान रहे हैं वहां भारती जी अन्तरराष्ट्रीय राज-नीति के आकाश में उड्डीयमान हैं। हिन्दी में ललित निबन्ध का जो भी विकास-विस्तार हुआ है उसमें इन निबन्धों के द्वारा भारती ने विशुद्ध

नवीनतम प्रवृति को जोड़ा है। इसके समृद्ध विषय वैविध्य से हिन्दी साहित्य की क्षमता में वृद्धि हुई है। तुलसी मेले के समय आयोजित पशुप्रदर्शनी के समाचार को लेकर राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय-सांस्कृतिक समाचार-सन्दर्भों को निबन्धकार इस प्रकार छान डालता है कि पढ़कर आश्चर्य होता है। वह न केवल राजनीति पर, अपितु धर्मदर्शन पर भी मूल्यवान, साधार और मुक्त चिन्तन उपस्थित करता है। समसामयिक घटनाओं को मथकर स्थायी मूल्य की वैचारिक पुष्टि प्रदान करने की यह विधा जिस सीमा तक मनोरंजक है उसी सीमा तक गम्भीर भी है। यह विधा आधुनिक अस्तव्यस्त-मानस पाठकों के लिए अधिक सुग्राह्य है। अन्तरराष्ट्रीय प्रश्न और विश्वशान्ति की समस्याओं को भारती नीम के पियराते पत्तों की सूचना के साथ आरम्भ करते हैं।

कृति समाचारों की वैचारिक यात्रा है। वह रिपोतजि से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक पत्रकारिता में गम्भीर साहित्यिक रस-संकेन्द्रण की स्थिति प्रयोगावस्था से लेकर सिद्धावस्था तक इसमें लक्षित है। निबन्धों की हल्की, कथात्मक दीखने वाली वक्राकार भूमिकाओं का तिलस्म जब टूटता है, मूल्यवान वैचारिक उपलब्धियों की सहज मनोरंजक पर गम्भीर भूमि पर पाठक स्थित होता है। कहीं कहीं सिद्धान्त वाक्य से निबन्ध शुरू होता है, जैसे 'गुलाम दिमाग की एक खास निशानी यह होती है कि उसमें आत्मविश्वास नहीं होता।' कुछ मूल्यवान 'न्यूज़ लैटर' जिनका गम्भीर साहित्यिक मूल्य है, कृति में नत्थी हैं। खेद है कि हिन्दी में इस मूल्यवान साहित्यिक विधा का विकास नहीं दृष्टिगोचर हो रहा है। कृति में सनसनी भरपूर है पर प्रचारात्मकता एकदम नहीं है, इसी कारण वह विशुद्ध साहित्यिक कृतित्व के अन्दर आ जाती है। डा० युंग के निधन पर लेखनी उठाने के साथ "ताजमहल खरीदिये" जैसी शीर्ष-रचना में रोमानी मूड के भीतर अतल में गम्भीर विधायक दृष्टि है। 'सत्याग्रह की अंगरेजी क्या है?' जैसे विषयों को निबन्धकार उठाता है। अजन्ता की चित्रकला और दक्षिण अफ्रीकावासियों के मद्यपान की स्वाधीनता जैसे ओर छोर की नयी-पुरानी टोह लेता है। उसमें एक आधुनिक साहित्यकार सतत जाग्रत है और वह साहित्य के घिसे पिटे माध्यमों के अतिरिक्त नये माध्यमों के अन्वेषण में तत्पर है। वह पत्रकारिता को माध्यम बनाता है जो आधुनिक युग, उसकी राजनीति, उसकी व्यस्त चेतना और युगीन मांग के बहुत निकट है। पत्रकारिता और साहित्य-रचना के विवादास्पद अन्तराल को कृति पाट देती

है और निबन्ध विषय पर अनुसन्धान करने वालों के लिए एक सर्वथा नये क्षितिज का उद्घाटन करती हैं, हलके हाथों नहीं, पूरा जम कर। कहनी-रूप में आज तक जो ललित निबन्ध साहित्य आया वह नयी अनकहनी से जुड़कर अत्यन्त मूल्यवान हो गया।

['समीक्षा' से साभार]

* फिलहाल

— चन्द्रकान्त देवताले

समकालीन कविता का नक्शा खींचना और उस पर निर्णयात्मक संकेतों से स्पष्ट स्थिति-बिन्दु उजागर करना एक निष्पक्ष और श्रम-साध्य दृष्टिकोण के अभाव में कितना एकांगी और रुचि सापेक्ष हो जाता है, इसका ताज़ा उदाहरण अशोक वाजपेयी के बीस लेखों का संग्रह 'फिलहाल' है। रचनारत कवियों पर निर्णय थोपना एक जोखिम भरा काम है। प्रतिभा और समझ के बावजूद इन लेखों को आभिजात्य रुचि की सीमा और अहंकार ने 'दिलचस्प असफलता' बना दिया है। यद्यपि इसमें समीक्षा के लिए समावेशी होना और आलोचक के लिए निर्णयात्मक दम्भ से मुक्त व विनयी होना आदि सिद्धान्त रूप में स्वीकारा गया है किन्तु व्यवहार रूप में यह सब कहीं नहीं है। यहां ज्यादातर युवा लेखन काहिली, गैर-जिम्मेदारी, दकियानूसी और न जाने क्या क्या है। जब समीक्षक कहता है – 'आमतौर पर यह एक दुखद सचाई है कि हिन्दुस्तानी लेखक से विकास करने की उम्मीद बहुत कम अवसरों पर की जा सकती है; तब लेखक की भारतीय लेखकों के प्रति पूर्व-ग्रंथि का पता चल जाता है। इसी पूर्व-ग्रंथि और अनेक पूर्वाग्रहों के साथ इन बीस लेखों में पंत से लेकर नीलाभ तक की

---

* लेखक: अशोक वाजपेयी; प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन प्रा० लिमिटेड, 8, फैज बाजार, दिल्ली-6; मूल्य: 8 रुपए।

कविताओं पर चर्चा की गई है । हन्नाह अरेंट, टॉमस मान, जेम्स ज्वायस, ब्रेख्त, अल्वारेज़, इलियट, मोरेस तथा अन्य कई विदेशी लेखकों से उद्धृत शब्दों और वाक्यों को बेचारे हिन्दुस्तानी लेखकों पर बुरी तरह चस्पा किया गया है । नैतिक जिम्मेदारी की बार बार दुहाई देने पर भी उद्धृत वाक्यों को इस तरह बिना उद्धरण चिन्हों के इस्तेमाल किया गया है कि पता ही नहीं चलता लेखक का कथन कब और कहां से प्रारंभ होता है । इन बीस लेखों में से आठ लेख पंत, अज्ञेय, मुक्तिबोध, माचवे, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, दूधनाथ सिंह, धूमिल, कमलेश, मणि मधुकर, प्रयाग शुक्ल और नीलाभ पर केन्द्रित हैं । अधिकांश पुस्तक चर्चा के रूप में ही हैं । शेष बारह लेखों में से सात सम-कालीन कविता पर, तीन आलोचना पर, एक नये पुराने के झगड़े पर और एक विचारों से विदाई पर अभिभाषण है ।

विवेक को अलाउद्दीन का चिराग समझने की ध्वनि इस कदर लेखों में गूंजती है, जैसे वह कोई विरल वस्तु है और उससे कविता तथा राष्ट्र का कलुष धोया जा सकता है । इस विवेक को जबरन आम भारतीय की पीड़ा से जोड़ने की अप्रत्याशित घटना या नाटकीयता भी इनमें मिलती है । कैलाश बाजपेयी की सन्दर्भ से काट कर प्रस्तुत की गई कुछ पंक्तियों के बाद प्रश्न पूछा गया है - इसका आम भारतीय की पीड़ा से क्या रिश्ता है ? यहीं दूसरा सवाल पूछा जा सकता है कि फिलहाल की लम्बी बहस, जिसकी व्यापक मानवीय दृष्टि मानसिक विलास से अधिक कुछ नहीं है, भारतीय मनुष्य की पीड़ा से कहां जुड़ती है ?

यद्यपि ठोस पहचान के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है, किन्तु यह पहचान कितनी कनफ्यूज्ड है, कमलेश की निम्न पंक्तियों की व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है -

"समुन्दर की नवजात परियां
हमें फुसला ले जाती हैं अपने देश में जहां
रेशे-रेशे में बहती हुई एक नदी है हमें तैरने को
और हम भूल जाते हैं तैरना, ओ सुबह-गई नयनाभा"

कमलेश की इन पंक्तियों में भाषा की जड़ों तक पहुंचना बताया गया है, साथ ही कहा गया है कि यह अनुभवों की जड़ों तक पहुंचने का ही दूसरा नाम है । इस पहुंच में 'भाषा सपने के बहुत नजदीक आ जाती है,' फिर इसी बात को दूसरे ढंग से कहने की कोशिश की गई है, 'कमलेश के काव्य संसार में भाषा सपना देखती है;'

इस पर तुर्रा यह कि 'सपने और सच का द्वैत भी कमलेश के यहां गायब हो जाता है।' वैज्ञानिक समझ के नाम पर इस तरह की कलाबाजी कमलेश की उक्त पंक्तियों को भ्रष्ट करती है या स्पष्ट, यह विचारणीय है। ऐसी ही घपलेबाजी और दुर्घटना का शिकार धूमिल की निम्न पंक्तियां हुई हैं –

'मतलब की इबारत से होकर
सबके सब व्यवस्था के पक्ष में
चले गए हैं

और वह सड़क
समझौता बन गई है जिस पर खड़े होकर
कल तुमने संसद को
बाहर आने के लिए आवाज़ दी थी'

यहां भाषा के प्रति लेखक का एरिस्टोक्रेटिक-फोबिया रोज़मर्रा के मुहावरों के विरोध में खड़ा हो जाता है। सरलीकरण और सामान्यीकरण के आक्षेप के बीच वह छद्म मानवीय पीड़ा बेनकाब हो जाती है, जो इस्तेमाल के बतौर 'मुक्तिबोध के खुरदुरे-पन' का समर्थन तो करती है, किन्तु जिसकी गहरी आसक्ति 'प्रीतिकर' के साथ होती है। इसी प्रकार दूधनाथ सिंह की इन पंक्तियों में –

'उसका एक नक्शा है जिसमें एक शहर है
उसका एक गीत है जिसमें एक जंगल है
उसकी एक अपनी ठंड है, जिसे कोई नहीं पहचानता
कहीं एक जगह है – जिसे
कोई नहीं जानता।'

रूमानियत, अस्पष्टता और सामान्यीकरण खोजा गया है। इसके विपरीत जीने के कर्म की परिभाषा में 'कुच', 'धकधक', 'सखी' का प्रयोग करने वाली रघुवीर सहाय की निम्न पंक्तियों में वासना का उद्दाम पर सहज लिरिकल आवेग निरूपित किया गया है –

'यह आतुर तन उस तन में धंसता जाए
थक जाए
थक जाएं तेरे कुच मेरे सीने पर धक्-धक् करके फड़कें
फिर रह जाएं गुंफित जंघाएं
हो जाए वह क्षण जीवन-मरण विशाल सखी।'

दूधनाथ की पंक्तियों को रूमानी आक्षेप लगा कर निरस्त करना और रघुवीर सहाय की इन मामूली पंक्तियों को उद्दाम, सहज आवेग जैसे विशेषणों से गरिमामय साबित करना, अशोक की कविता की पहचान को न केवल संदिग्ध बनाता है बल्कि पूर्वाग्रह युक्त कुंठित रूचि का भी परिचय देता है। इसी प्रकार जगूड़ी की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत करने के बाद उसकी तुलना मुक्तिबोध से करना न केवल अप्रासंगिक है, किन्तु ज्यादती है।

अशोक वाजपेयी को ज्यादातर युवा-कविता से अचरज, चिढ़, दुख, ऊब और न जाने क्या-क्या हुआ है। जो वस्तुतः उनकी असहिष्णुता और रूचिबद्धता के ही कारण है। उनकी पसन्द प्रीति कर निखार वाली अद्वितीयता ही है। 'फिलहाल' में उनकी मुद्रा उस व्यक्ति की जान पड़ती है, जिस पर साहित्य का सारा उत्तरदायित्व आ पड़ा है। वह भीतरी हड़बड़ी और प्रदर्शित आश्वस्त स्वर के बीच रातों रात सारे बन्दोबस्त कर लेना चाहता है, ताकि सुबह हो और अनुपस्थिति, उत्सवधर्मिता, सरलीकरण, सामान्यीकरण, अमानवीकरण - सब कविता से गायब हो जाएं। फिर आश्वस्त स्वर से कहना सम्भव हो सके कि अब तानाशाही का कोई खतरा नहीं है। यह 'फिलहाल' के लेखक का बहुत बड़ा भ्रम है कि विद्रोही युवा कवि मानव-विरोधी भूमिका निभा रहा है। अब आमिजात्य और वैचारिक यूटोपिया से जुड़ी समझ को कैसे समझाया जाए कि यह अमानवीयकरण नहीं, अमानवीयकरण का प्रोटेस्ट है। विज्ञान ने मनुष्य की अर्थवत्ता को जिस स्तर तक सीमित कर दिया है, उसके कारण अमानवीयकरण आधुनिक जीवन की अभिशप्त नियति है। इसी सन्दर्भ में महत्व बोध के क्षय को धार्मिक संवेदना के क्षय से जोड़ने का प्रयास उधार लिए विचारों के समाधान की चेष्टा है, जिसमें बौद्धिक प्रवचन ही अधिक है। आर्थिक कारणों को यहां विस्तृत कर दिया गया है। बिना धार्मिक संवेदना के, व्यापक सहानुभूति से जातीय जीवन का तादात्म्य सम्भव हो सकता है, शायद इलियट ने ऐसी बात नहीं कही है। 'नये आचार्यत्व की दो मुद्राएं' और 'नये-पुराने का झगड़ा' फिजूल के लेख हैं। पर अज्ञेय और लक्ष्मीकान्त वर्मा में 'आचार्य-ग्रन्थि' की खोज लेखक के स्वयं के सन्दर्भ में निहितार्थ लगती है। 'आलोचना की भाषा' लेख में भाषा के सम्बन्ध में एक भी बात नहीं कही गई है। वह मोटे सरसरे तौर पर लिखा गया एक चालू लेख है।

कुल मिलाकर 'फिलहाल' एक अधूरी समीक्षा है । यह समकालीन कविता की समावेशी आलोचना का ग्रन्थ नहीं है, जैसा कि उसका दावा है। बड़बोलापन, पैगम्बराना अन्दाज़, जिनसे अशोक वाजपेयी को चिढ़ है, कम से कम उन्हें स्वयं को इनसे बचना था । कई महत्वपूर्ण समकालीन कवियों का नामोल्लेख तक न होना फिलहाल की सीमा है । अशोक वाजपेयी स्वयं एक महत्वपूर्ण कवि हैं, वे अपनी कविताओं से भी कुछ बातें स्पष्ट करते तो ज्यादा बेहतर होता । एक व्यंग्य - पत्रिका द्वारा उनके संग्रह की समीक्षा को दिया गया शीर्षक 'कलेक्टरी समीक्षा' 'फिलहाल' को ठीक परिभाषित नहीं करता । 'फिलहाल' अपनी सीमाओं के बावजूद अशोक वाजपेयी की प्रतिभा और शक्ति का सबूत है । समकालीन कविता-संदर्भ में यह भूमिका असंदिग्ध रूप से अनिवार्य मानी जाएगी ।

अतिशय पुनरावृत्तियों का 'दृश्यालेख' में उल्लेख किया गया है । पर अशोक वाजपेयी जैसे सतर्क और जिम्मेदार लेखक को प्रकाशन-पूर्व वांछित संशोधन करना चाहिए था । पुस्तक के व्यवसाय-सन्दर्भ ज्यादा होते हैं और उनकी यह नैतिक जिम्मेदारी थी । अन्त में अलेक्जेंडर पोप की 'An Essay on Criticism' की निम्न पंक्तियों के साथ अशोक बाजपेयी को उनके प्रथम विवादास्पद समीक्षा-ग्रन्थ के प्रकाशन पर बधाई —

"It is with our judgements as our watches none
Go just like, yet each believes his own."

* व्यावहारिक हिंदी-अंग्रेजी कोश

- गोपाल राय

आज से कुछ दिन पहले हमने 'समीक्षा' (वर्ष 2 : अंक 1) में ही फादर कामिल बुल्के द्वारा सम्पादित 'अंगरेज़ी हिन्दी कोश' की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और सम्पादक को उसके महत्वपूर्ण उपयोगी कार्य के लिए बधाई दी थी। लगभग उसी स्वर में और उसी उत्साह के साथ आज हम श्री महेन्द्र चतुर्वेदी और डॉ० भोलानाथ तिवारी को 'व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश' के सम्पादन के लिए तथा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली को उसके प्रकाशन के लिए बधाई दे रहे हैं। कोई भाषा कितनी महत्वपूर्ण है, यह जानने के लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त होगा कि उस भाषा में कितने सन्दर्भ ग्रन्थ (जिनमें शब्दकोशों का प्रथम स्थान है) हैं। हिन्दी अभी इस दृष्टि से बहुत समृद्ध नहीं है पर सन्दर्भ ग्रन्थों की बढ़ती हुई संख्या से उसके आशापूर्ण भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

विदेशी भाषाओं में हिन्दी का सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध अंग्रेजी से है और इस सम्बन्ध के और भी दृढ़ होने की ही सम्भावना है। कारण कि अंग्रेजी धीरे धीरे विश्वभाषा का रूप ग्रहण करती जा रही है। यह तय है कि अंग्रेजी का जुआ

* सम्पादक : महेन्द्र चतुर्वेदी : भोलानाथ तिवारी; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, दरियागंज, दिल्ली- 6; मूल्य : 2-00।

हम अपने कन्धों पर से उतारने जा रहे हैं पर उससे बराबरी का सम्मानजनक सम्बन्ध न बनाए रखने में कोई बुद्धिमानी नहीं है । हिन्दी के द्विभाषी शब्दकोश इस सम्बन्ध के लिए सेतु का काम करेंगे ।

हमारे पास 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश' कई हैं, जिनमें ज्ञानमंडल वाराणसी से प्रकाशित 'बृहद् अंगरेजी-हिन्दी कोश'[4] और फादर कामिल बुल्के द्वारा सम्पादित 'अंगरेजी हिन्दी कोश'[5] व्यावहारिक दृष्टि से पर्याप्त सन्तोषजनक है, पर हिन्दी-अंग्रेजी कोश का अभाव अब तक बेहद खटकता रहा है । नाम लेने को 'भार्गव हिन्दी-अंगरेजी कोश'[6] जरूर था, पर प्रबुद्ध पाठकों को उससे निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता था । इस प्रकार के शब्दकोश का अभाव इसलिए और भी खटकता था कि अब अनेक विदेशियों को हिन्दी सीखने की जरूरत पड़ रही है । जब तक अंग्रेजी भारत की प्रशासन भाषा और यहां के प्रबुद्ध भारतीय की भाषा थी तब तक विदेशियों का काम अंग्रेजी के माध्यम से चल जाया करता था । पर अब स्वभाषा के प्रति निष्ठा के बढ़ने तथा लोकप्रिय सरकारों के द्वारा प्रशासन में हिन्दी के प्रयोग पर जोर देने से स्थिति बदल रही है । अब विदेशियों को हिन्दी सीखनी ही पड़ेगी । प्रायः ये विदेशी अंग्रेजी जानते होते हैं, अतः वे अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी सीखने का प्रयत्न करेंगे । ऐसे हिन्दी सीखने वाले विदेशियों के लिए फादर कामिल बुल्के का अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश और समीक्ष्य 'व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश' अत्यन्त उपयोगी शब्द कोश है ।

भूमिका में कही इस बात का संकेत नहीं है कि इसमें कितने शब्द समाविष्ट किये गये हैं, पर ग्रन्थ के आकार प्रकार को देखते हुए प्रतीत होता है कि व्यावहारिक उपयोग के लिए यह काफी होगा । विशेष महत्व की बात यह है कि इसमें किसी शब्द के अधिक से अधिक पर्याय (चाहे उनका सम्बन्ध बहुत दूरारूढ़ क्यों न हो) जुटाने पर बल न देकर दो तीन सटीक पर्याय देने पर ही जोर दिया गया है । इससे हिन्दी सीखने वालों को अपने मतलब का शब्द चुनने में भटकना नहीं पड़ेगा । मैंने इस कोश का अवलोकन बहुत सावधानी के साथ किया है और यह कहते हुए मुझे सन्तोष होता है कि इसमें अंग्रेजी शब्दों के बहुत ही सटीक पर्याय दिए हुए हैं ।

समीक्ष्य शब्दकोश के विषय में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें हिन्दी शब्दों का उच्चारण देने का प्रयत्न किया गया है जो कोशविज्ञान के नियमों के अनुसार है । इस दृष्टि से यह प्रथम प्रयास है । हिन्दी के बारे में एक भ्रम

यह है कि यह नागरी लिपि में जैसी लिखी जाती है वैसी ही पढ़ी भी जाती है। पर बात ऐसी नहीं है। यद्यपि नागरी लिपि अंग्रेजी आदि भाषाओं की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते भी हैं और इसी प्रकार, जैसा लिखते हैं वैसा ही बोलते भी हैं। सच तो यह है कि लिपि और ध्वनि का शत प्रतिशत तालमेल बैठ पाना सम्भव नहीं है। हमारे उच्चारण अनेक कारणों से परिवर्तित होते रहते हैं, जब कि लिपि में जल्दी कोई परिवर्तन नहीं होता। इस बात को ध्यान में रखते हुए शब्दकोशों में हिन्दी शब्दों का उच्चारण देना बहुत जरूरी हो गया है। इस कार्य की कठिनाइयां अनेक हैं। उच्चारण का कौन सा रूप परिनिष्ठित माना जाए इसे तय करना मामूली बात नहीं है। हिन्दी का उच्चारण उसकी अनेक उपभाषाओं के अतिरिक्त उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला, आदि भारतीय भाषाओं से प्रभावित होता है। पश्चिमी भारत के लोगों का उच्चारण पूर्वी भारत के लोगों के उच्चारण से भिन्न होता है। यह स्वतन्त्र समस्या है और कालक्रम से इसका भी समाधान होगा, यह निश्चित है। फिलहाल जरूरत इस बात की है कि शब्दकोशों में हिन्दी शब्दों का उच्चारण दिया जाए और मेरा सुझाव है कि एकरूपता के लिए संस्कृत की उच्चारण-पद्धति ही ली जाए न कि क्षेत्रीय उच्चारण-पद्धतियां। समीक्ष्य कोश के सम्पादकों ने दिल्ली के आसपास की उच्चारण-पद्धति को आधार रूप में ग्रहण किया है, जो उचित नहीं कहा जा सकता। दिल्ली वाले 'कहता' को 'कैता', 'बहन' को 'बेऽन' जैसा बोलते हैं, जो कतई शुद्ध उच्चारण नहीं कहा जा सकता इसी प्रकार यह सही है कि कुछ लोग --'नाना' को 'नांनां' 'उपन्यास' को 'उपन्यांस', 'आवश्यकता' को 'आवश्यक्ता' जैसा बोलते हैं, पर इसे ही परिनिष्ठित उच्चारण मानकर शब्दकोश में स्थान देना उच्चारण को और भी भ्रष्ट करने की दिशा में किया गया प्रयास होगा। यह सही है कि लोगों के बोलने पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, पर कोशग्रन्थ उच्चारण के नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार जहां हिन्दी शब्दों का उच्चारण देकर कोश के सम्पादकों ने एक ऐतिहासिक शुरूआत की है, वहां दिल्ली की उच्चारण-पद्धति को आधार मानकर उन्होंने हिन्दी भाषा का भारी अहित भी किया है।

फादर कामिल बुल्के के कोश से इस कोश की तुलना करने पर कई बातें ध्यान खींचती हैं। सबसे पहले तो शीर्षक की वर्तनी ही द्रष्टव्य है। 'हिन्दी' और 'हिंदी' में तथा 'अंग्रेजी' और 'अंगरेजी' में किस वर्तनी को शुद्ध माना जाए? मेरे विचार से तो फादर कामिल बुल्के की वर्तनी ही (हिन्दी, अंगरेजी)

शुद्ध है। (दिल्ली में अनुस्वार-प्रेम की महामारी जोरों से फैली हुई है, जिससे समीक्ष्य कोश के सम्पादक भी अपने को बचा नहीं पाए हैं। अब तो भारतेन्दु की पंक्ति याद कर सन्तोष करना पड़ता है : 'एक जो होय तो ज्ञान सिखाइय, कूपहि में यहां भांग परी है'।) छपाई सफाई दोनों की स्तरीय है पर फादर बुल्के के कोश की पृष्ठ संख्या 891 होने पर भी उसका मूल्य केवल पन्द्रह रुपए है, जब कि नेशनल पब्लिशिंग हाउस के कोश की पृष्ठ संख्या 738 होने पर भी उसका मूल्य बीस रुपए है। शायद यह चीज इसकी लोकप्रियता में कुछ बाधक सिद्ध हो।

इसके बावजूद, जैसा शुरू में ही कह चुका हूं, नेशनल का यह प्रयास अभिनन्दनीय है और इस कोश की हिन्दी सीखने वालों के लिए निस्सन्देह प्रयोगार्ह कहा जा सकता है।

['समीक्षा' से साभार]

ભાષા-સંગમ

विशिष्ट सम्मेलन

चतुर्थ अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन

— एस० लक्ष्मण शास्त्री

चतुर्थ अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन 16 से 20 नवम्बर तक दिल्ली में सम्पन्न हुआ।

इस सम्मेलन में अल्जीरिया, बहरिन, सिंहल, कांगो, दहोमे, जांबिया, गिनी, घाना, जापान, केनिया, लेबनान, मडगास्कर, मरूसस, मंगोलिया, मोरोक्को, मोजांबिक, फिलस्तीन, सेनेगाल, सोमालिया, तुर्की, संयुक्त अरब गणराज्य, अप्पर वोल्ट, सोवियत संघ, उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम, नेपाल इन सब देशों से प्राय: सवा सौ प्रतिनिधि आये थे। भारत के प्राय: सभी भागों से प्राय: ढाई सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी आदि के भाषण तथा विभिन्न देशों के प्रतिनिधि मण्डलों के नेताओं की रिपोर्टें भी काफी साहित्यिक महत्व की हैं। लेकिन ये सब निबन्ध और भाषण अंग्रेज़ी में हैं। इन्हें हिन्दी में अनुवाद करा कर प्रकाशित किया जाय तो समकालीन अफ्रो-एशियाई लेखक आन्दोलन का एक जीता-जागता स्फूर्तिदायक चित्र पाठकों को उपलब्ध होगा। इस के लिए कम से कम तीन हजार रुपये व्यय करने होंगे।

यह आसान कार्य नहीं हैं। इस कार्य को कोई प्रकाशक बन्धु करें तो बहुत ही उत्तम होगा।

अगला अधिवेशन

अफ्रो-एशियाई लेखक संघ का अगला अधिवेशन सन् 1973 के सितम्बर महीने में सोवियत संघ की कजाक गणतन्त्र की राजधानी अल्मा आता में करने का निश्चय हुआ है। इसके अतिरिक्त एक कविता सम्मेलन दिसम्बर 1971 में सेनेगाल की राजधानी डाका में आयोजित करने का भी निश्चय हुआ। लोटस त्रैमासिक और उसके प्रचार को आगे बढ़ाने का भी सम्मेलन ने फैसला किया।

सम्मेलन के अवसर पर भारतीय साहित्य' के सम्पादक द्वारा सम्पादित अंग्रेजी त्रैमासिक 'कण्टेम्परेरी इण्डियन लिटरेचर' का 66 पृष्ठों का विशेषांक निकाला गया, जिसकी 500 प्रतियां देश-विदेश से आये साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों में बांटी गयीं। इसके अतिरिक्त श्री अमृत राय द्वारा सम्पादित 'नई कहानियां' का अफ्रो-एशियाई कहानी विशेषांक, ऑल इण्डिया पीस कौंसिल द्वारा प्रकाशित 'पीस एन्ड सालीडारिटी' मासिक, अफ्रो-एशियाई लेखक संघ की ओर से काहिरा से प्रकाशित 'लोटस' त्रैमासिक की प्रतियां आदि भी प्रतिनिधियों के बीच निशुल्क बांटी गयीं। भारतीय तथा विदेशों से आये साहित्यकार इस साहित्य से लाभान्वित होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सम्मेलन की सफलताएं

इस सम्मेलन से उसमें शामिल लेखकों को निम्नलिखित लाभ हुए हैं:-

1. एशिया एवं अफ्रीका के बहुसंख्यक देश आज राजनीतिक तौर पर स्वतन्त्र तो हैं, लेकिन आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से अभी काफी पिछड़े हुए हैं। सब जगह लोग एक नयी समाज व्यवस्था के लिए संघर्षरत हैं। दक्षिण एवं मध्यपूर्व, दक्षिणी अफ्रीका, पोर्तगाल-शासित उपनिवेश इन देशों में साम्राज्यवादी प्रत्यक्ष और परोक्ष आक्रमण जारी है। सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों के भाषण, रिपोर्टें एवं वितरित साहित्य से इस बात का आभास हुआ है कि साम्राज्यवाद एवं जातिवाद कुचेष्टाओं और कुतन्त्रों को नाकाम कर समाजवाद जनतन्त्र का मार्ग प्रशस्त करने के लिए लेखकों को, वे किसी भी देश के रहने वाले क्यों न हों, बहुत कुछ करना होगा।

2. जैसे कि अफ्रो-एशियाई लेखक संघ के महासचिव ने ही बताया, दोनों भूखण्डों के लेखकों के अनुभव स्वतन्त्रता एवं संघर्षों से सम्बन्धित हैं। अफ्रो-एशियाई देशों के लेखकों का कर्तव्य है कि वे मानव की प्रतिष्ठा, स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत उपनिवेशों की करोड़ों जनता के सुख दुःख में भागी हों, उन्हें यथासंभव मदद पहुंचायें - यह भाव इस सम्मेलन के दौरान पहले से अधिक मुखर हुआ।

3. इस सम्मेलन के पहले भारत के बहुत सारे नये पुराने लेखकों को इस बात का सही ज्ञान नहीं था कि अफ्रो-एशियाई लेखक संघ का रूप क्या है, उसका आकार क्या है, उसके पीछे कौन से भाव काम करते हैं। सम्मेलन में दोनों भूखण्डों के लेखकों को उत्तरोत्तर नजदीक लाने सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार कर कुछ कदम उठाने का निर्णय किया गया। लेखकों में इस संगठन और उसकी गतिविधियों के बारे में ज्यादा जानकारी प्राप्त करने, अपने दृष्टिकोण को विपुल बनाकर आगे बढ़ने के संकल्प की प्रतिष्ठा हुई।

कमजोरियां

यह सम्मेलन और भी ज्यादा सफल होता यदि आरम्भ से भारतीय तैयारी कमेटी कुछ और दूरदर्शितापूर्ण ढंग से काम करती।

सन् 1956 के अनौपचारिक एशियाई लेखक सम्मेलन के बाद ताशकन्द, काहिरा, बेरूत में अफ्रो-एशियाई लेखक संघ की ओर से बाकायदा तीन वृहद सम्मेलन हुए हैं। भारत से भारतीय लेखकों के प्रतिनिधि होने का दावा कर बाकायदा चुने जाकर या अन्यथा कुछ लेखक इन सम्मेलनों में जाते रहे हैं। लेकिन उन्होंने अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन के बारे में न भारतीय लेखकों को अवगत कराया न भारत में कोई उल्लेखनीय संगठन बनाने की ओर ही ध्यान दिया।

दिल्ली में चतुर्थ सम्मेलन होने से प्रायः दो या ढाई मास पूर्व एकाएक चतुर्थ अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन के लिए भारतीय तैयारी कमेटी की रचना की गई। यह कमेटी कब, किसके द्वारा हुई - इसका स्वयं दिल्ली शहर में रहने वाले लेखकों तक को पता न था। इस मौलिक भूल से काफी गलतफह-मियां हुईं। संगठन कार्य को आगे बढ़ाने में बहुत कठिनाई हुई।

अक्तूबर के मध्य में हिन्दी के लेखकों की एक बैठक की गई थी जिस में विभिन्न विचारों को मानने वाले युवा लेखकों ने तैयारी कमेटी के मुख्य नेता डा० मुल्कराज आनन्द एवं श्री सज्जाद जहीर की न सिर्फ अभद्र तरीके

से आलोचना की, बल्कि यह धमकी भी दी कि यदि तैयारी कमेटी का जनतान्त्रिक ढंग से पुनः संगठन न किया गया तो वे इस सम्मेलन को ही नहीं होने देंगे। 8 नवम्बर को दिल्ली के लेखकों का एक विशेष सम्मेलन किया गया, लेकिन उसमें भी सम्मेलन के चोटी के नेता और युवा-पीढ़ी के बहुत से साहित्यकारों में आवश्यक सहभाव नहीं पैदा किया जा सका। इसका नतीजा यह हुआ कि दिल्ली जैसे शहर में इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को समुचित ढंग से चलाने और उसे पूरी तरह सफल बनाने के लिये पर्याप्त संख्या में लेखक बन्धु आगे नहीं बढ़े।

यद्यपि देश के कोने-कोने से ढाई सौ के करीब लेखक आये थे, प्रतिनिधि फीस 15 रु० देकर वे प्रतिनिधि भी हुए थे, लेकिन न उनमें से बहुतों के लिये रहने और खाने-पीने की कोई व्यवस्था थी, और न सम्मेलन के विभिन्न समारोहों में उनके शरीक होने की। 18 नवम्बर को विदेशों से आये प्रतिनिधि मण्डलों के नेताओं की खुले अधिवेशन में रिपोर्टें हो रही थीं। इसके लिए 75 लोगों के लिये बैठने का एक छोटा कमरा ही उपलब्ध था। लेकिन सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों की संख्या थी प्रायः 400, क्या किया जाये ? यह समस्या उत्पन्न हुई। भारतीय प्रतिनिधि बैठक में शरीक न हो सके। 19 को कार्यक्रम के अनुसार ऐसा कोई समारोह न हुआ जिसमें भारतीय लेखक भाग ले सकें। वे इधर-उधर घूमते-फिरते रहे। नतीजा यह हुआ एक खाली कमरे में अनौपचारिक बैठक की गयी, कुछ विचार विनिमय अवश्य हुआ और बाद को दो छोटी फिल्में दिखाने की व्यवस्था की गयी।

20 तारीख को ढाई बजे से समापन सम्मेलन की घोषणा की गयी थी। लेकिन एकाएक उस दिन सबेरे ही समापन सम्मेलन किया गया, जिससे बहुत सारे प्रतिनिधि उसमें शरीक नहीं हो सके। भारतीय प्रतिनिधि इससे काफी निराश हो गये।

सम्मेलन के व्यवस्थापकों को लेखकों का पर्याप्त सहयोग न मिलने से संगठनकर्ता सम्मेलन को ठीक ढंग से न चला सके। इससे भारतीय लेखकों में काफी असन्तोष उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक ही था। लेकिन, सम्मेलन असफल हुआ यह कहा नहीं जा सकता।

('भारतीय साहित्य' से साभार)

युवा लेखक सम्मेलन, पटना

—सुदर्शन नारंग

दो दिन और चार गोष्ठियों में विभक्त युवा लेखक सम्मेलन 'सिर्फ' के तत्वावधान में 27 और 28 दिसम्बर को पटना में बुलाया गया था। उन दिनों पटना में अत्यधिक ठंड थी जो सम्मेलन की गतिविधि पर भी पूरा समय हावी रही। बावजूद इसके कि फणीश्वरनाथ रेणु ने बार-बार सम्मेलन की मुर्दनी और जड़ता पर प्रहार कर डैलीगेट्स को उकसाने का प्रयत्न किया,पर वे लोहे की ठंडी कुर्सियों से चिपके जेबों से हाथ नहीं निकाल पाये। सम्मेलन के उद्देश्य के प्रति अस्पष्ट और किराये-भाड़े की गर्मी में भाग लेने वाले लेखकों के चेहरे प्रसन्नता से दमक रहे थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में शिवशंकर सिंह ने सम्मेलन के औपचारिक उद्देश्य एवं लक्ष्य पर बोलते हुए बड़े ही नाटकीय ढंग एवं अलंकृत भाषा में प्रतिनिधियों को बताया - 'जब भी किसी के जातीय जीवन में संकट गहन हो जाता है, अकेले-अकेले अपनी-अपनी परिधि में कोई उपाय नहीं सूझता, लेकिन सबके सब भीतर बाहर बेचैन होने लगते हैं तब बिरादरी की बैठक बुलायी जाती है और संकट के निवारण के रास्ते तय किये जाते हैं"। शिवशंकर सिंह को बोलते देख मुझे गीता का श्लोक 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति'... स्मरण हो आया था और लगा था भगवान श्री कृष्ण का विराट रूप प्रकट होने को है। इससे पूर्व सम्मेलन की जो रूपरेखा मन्त्री श्री नन्द किशोर नवल ने अपने स्वागत भाषण में प्रस्तुत की थी उसमें सम्मेलन का लक्ष्य

कुछ भिन्न प्रतीत हुआ था। समूचे सम्मेलन में बेचारे नवल साहित्यिक समस्याओं एवं युवा लेखकों की रणनीति के लक्ष्य को बघारते रहे जबकि उनके सूत्रधार एवं सम्मेलन के फाइनेंसर अपने गुप्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये छटपटाते रहे।

ऊपरी तौर पर सम्मेलन लेखन की समस्याओं पर विचार करने हेतु आयोजित किया गया जबकि संयोजकों का मूल उद्देश्य प्रस्तावित साप्ताहिक की रूपरेखा तैयार करने आये हुये साहित्यकारों से साप्ताहिक पर परामर्श लेने, साप्ताहिक के लिये संपादक खोजने और एकत्रित साहित्यकारों की सहानुभूति जीतने का था। साप्ताहिक संबंधी विशेष गोष्ठी के समय मंच पर पहुंचने की रुचि का नितान्त अभाव युवा लेखकों में स्पष्ट दृष्टिगोचर था और बेचारे नवल खींच-खींच कर लोगों को मंच पर ला रहे थे। केवल वे लोग जिनकी अभिलाषा संपादकीय कुर्सी हथियाने की थी, संयोजकों के आगे-पीछे होते रहे।

सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता उपस्थिति मानी जानी [चाहिये और संयोजकों की कुशलता की सराहना करनी पड़ती है कि उन्होंने इतनी अधिक संख्या में युवा एवं प्रौढ़ लेखकों को पटना में एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की।

सम्मेलन को बड़ी सूझ-बूझ से चार गोष्ठियों में नियोजित किया गया था। विषय थे : 1 - युवा लेखकों की रणनीति, 2 - कविता: सही भाषा की तलाश, 3 - कहानी : समकालीन आदमी को परिभाषित करने का एक मात्र जरिया, और 4 - आलोचना क्यों ? गोष्ठियों को प्रस्तुत करने का ढंग अपने में अनोखा था जिस पर मिश्रित प्रतिक्रियायें सुनने में आती रहीं। प्रत्येक विषय पर पहले आमंत्रित लेखकों द्वारा दो-तीन निबंध पढ़ने की व्यवस्था और फिर अनुसूचित वक्ताओं द्वारा पांच-छः मिनट तक पढ़े गये निबन्धों के संदर्भ में विषय पर चर्चा का नियोजन काफी रोचक रहा। कुछ लोगों को शिकायत थी कि इस प्रकार माइक के सामने केवल वही लोग बोल सकते हैं जो व्यवसाय से अध्यापक या राजनीतिज्ञ हों, जिन्हें मंच का मुहावरा रहता है। पहली गोष्ठी अर्थात युवा लेखकों की रणनीति में रमेश गौड़ और इब्राहीम शरीफ के लेख पढ़े गये। बहस में हिस्सा लेने वाले लोगों के प्रमुख थे डॉ० नामवर सिंह (जिन्होंने इस गोष्ठी की अध्यक्षता भी की), कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, नागेश्वर लाल, धूमिल, नवल किशोर, सुरेश सेठ आदि। दोनों निबन्ध वाचकों ने देश की राजनीतिक उथल-पुथल, स्वातंत्र्योत्तर अराजकता, स्वप्नभंगता की स्थिति आदि के संदर्भ में लेखन में आये परिवर्तन और सामयिक संदर्भों की चर्चा की। रमेश गौड़ का स्वर नकारा-]

त्मक और आक्रोशपूर्ण था। यह लेख रोमानी अन्दाज में दिया गया भाषण था जिसमें युवा लेखक की भूमिका और सार्थकता कतई स्पष्ट नहीं हो पाई। इब्राहीम शरीफ का लेख सही नुक्तों को उभारने वाला था और इसमें बहुरूपियों तथा धूर्त और गैर-साहित्यिक अवसरवादियों से बचने की रणनीति को ठानने की बात कही गयी थी। कविता गोष्ठी में 'कविता: सही भाषा की तलाश' पर चन्द्रकान्त देवताले, परमानन्द श्रीवास्तव और विजेन्द्र ने निबन्ध पढ़े। बहस में भाग लेने वाले प्रमुख श्रोताओं में थे डॉ० नामवर सिंह (जो चारों गोष्ठियों में मंच पर विराजमान थे), कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह (जिन्होंने इस गोष्ठी की अध्यक्षता भी की), नागेश्वर लाल, जगदीश चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, सौमित्र मोहन, ऋतुराज, धूमिल, नवल किशोर, नन्दकिशोर तिवारी आदि। इस गोष्ठी में समकालीन कविता के सन्दर्भ में भाषा की तलाश के प्रश्न को अनेक रूपों में सामने लाया गया पर सर्जनात्मक भाषा की प्रवृत्ति की खोज के बजाय रचनाकारों के व्यक्तिगत राग-द्वेष और नोंक-झोंक ज्यादा दिलचस्प रही।

तीसरी अर्थात कहानी गोष्ठी में विजय मोहन सिंह, जितेन्द्र भाटिया और अशोक अग्रवाल ने लेख पढ़े। विषय था 'कहानी : समकालीन आदमी को परिभाषित करने का एक मात्र जरिया'। इन तीनों लेखों में नयी पीढ़ी की कहानी में समकालीन आदमी के चेहरे को पकड़ने की कोशिश की गई थी। इस गोष्ठी की अध्यक्षता दूधनाथ सिंह ने की जो अपने में एक मजेदार बात थी। बहस में हिस्सा लेने के लिए सबसे पहले ममता कालिया मंच पर आईं। उन्होंने पूर्व निश्चित मुहावरे में व्यावसायिक पत्रों और तथाकथित समझौतापरस्त अर्थात नई पीढ़ी के लेखकों की भर्त्सना की तथा समकालीनों के गुण गाती लौट गईं। एक ही मीटर से बोलते हुये रवीन्द्र कालिया, डॉ० गंगा प्रसाद विमल, गिरिराज किशोर और अमर गोस्वामी लौट गये और उनकी बातों को किसी ने गम्भीरता से नहीं लिया। जगदीश चतुर्वेदी, कामता नाथ, काशीनाथ सिंह, सुरेश सेठ और विश्वेश्वर ने कुछ ठोस एवं काम की बातें कीं। जगदीश चतुर्वेदी ने विमल के कथन की आलोचना की और नई पीढ़ी के प्रति उनके रुख को भ्रामक ठहराया। अधिकांश श्रोताओं का स्वर नई पीढ़ी के कहानीकारों के समर्थन एवं उनमें छिपी गहरी संभावनाओं के प्रति आश्वस्ति का था।

चौथी अर्थात् आलोचना गोष्ठी में 'आलोचना क्यों'? विषय पर गंगा प्रसाद विमल, नागेश्वर लाल, और नवल किशोर ने लेख पढ़े। इस गोष्ठी की अध्यक्षता अशोक वाजपेयी ने की। बहस में भाग लेने वाले लोगों में प्रमुख थे नन्द चतुर्वेदी, नरेन्द्र मोहन, परमानन्द श्रीवास्तव, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, धूमिल,

बलदेव वंशी, विजेन्द्र, प्रभात कुमार त्रिपाठी आदि । नन्द चतुर्वेदी ने समीक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर सारगर्भित एवं सुलझे हुये विचार व्यक्त किये । नरेन्द्र मोहन ने ऐसे रचनाकार आलोचकों को आड़े हाथों लिया जो आलोचना को सीमित और सतही रूप में ग्रहण करके रचना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं मानते । उन्होंने आलोचना को शास्त्र से मुक्त करके समकालीन रचनाशीलता के आधार पर नयी समीक्षा धारणा को विकसित करने पर बल दिया ।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यापक पैमाने पर आयोजित यह युवा लेखकों का पहला सम्मेलन था और इस अर्थ में इसका महत्व है ही । युवा लेखन की समस्याओं पर, अस्पष्ट रूप में ही सही, बातचीत की शुरूआत तो हुई । इस बातचीत को अधिक ठोस आधार और दिशा मिल सकती थी अगर कुछ लेखक दल बांध कर साहित्य की समाजवादी व्याख्या न करते और मुक्त चिन्तन को हेय ठहरा कर उसे अवरुद्ध करने का प्रयत्न न करते ।

['संचेतना' से साभार]

प्रदेशों में हिन्दी

आंध्र प्रदेश में हिन्दी का प्रचार-प्रसार

आंध्र प्रदेश के साथ हिंदी का संबंध पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही जोड़ा जा सकता है जब वहां दक्खिनी हिंदी का रूप विकसित होने लगा था। कुछ विद्वान तो इसी कारण आंध्र प्रदेश को आधुनिक हिंदी की जन्मभूमि तक मानते हैं।

संभवतः इसी निकट संबंध के कारण आंध्र प्रदेश के लोगों का हिंदी के प्रति हमेशा ही आकर्षण रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में देशव्यापी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना ने हिंदी को जब सामान्य सम्पर्क भाषा का दायित्व उठाने के लिए चुना तो आंध्र प्रदेश ने बड़े उत्साह से उसका स्वागत किया। 1918 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की स्थापना के साथ-साथ आंध्र प्रदेश में हिंदी के प्रचार में गति आई। 1937 में विद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन को सरकार ने मान्यता प्रदान की। 1937 से 1949 तक की अवधि में हिंदी का प्रचार नगरों और कस्बों से आगे गांवों तक फैल गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी के प्रचार-प्रसार में और भी वृद्धि हुई। इस समय आंध्र प्रदेश में न केवल हिंदी का अध्ययन व्यापक रूप से हो रहा है अपितु आंध्र प्रदेश के अनेक मेधावी लेखक मौलिक लेखन तथा शोध एवं अनुवाद द्वारा हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि भी कर रहे हैं। स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में सर्वत्र ही

महान योगदान दिया है। आंध्र प्रदेश में ये संस्थाएं पीछे नहीं रही हैं। इन संस्थाओं में प्रमुख है, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, जिसकी परीक्षाओं में औसतन 41823 विद्यार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं।

स्कूल स्तर पर हिंदी का शिक्षण

स्कूल स्तर पर हिन्दी का शिक्षण चतुर्थ दशक में ही प्रारंभ हो गया था। 1965-66 से पहले तेलंगाना में चौथी कक्षा से और शेष आंध्र प्रदेश में छठी कक्षा से हिंदी दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी। अब समस्त राज्य में समान शिक्षा प्रणाली लागू की गई है जिसके अनुसार हिंदी समस्त आंध्र प्रदेश में पांचवीं कक्षा से अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है, यहां तक कि एस० एस० एल० सी० तथा एच० एस० की परीक्षाओं के लिए भी हिन्दी एक अनिवार्य विषय है। विभिन्न कक्षाओं में अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी के शिक्षण के लिए प्रति सप्ताह घंटे इस प्रकार नियत किए गए है :-

कक्षा	आंध्र	तेलंगाना	
	(हाई स्कूल)	(हाई स्कूल)	(हायर सेकेण्डरी स्कूल)
पांचवीं	4	4	
छठी	4	4	
सातवीं	4	4	
आठवीं	2	5	
नवीं	2	4	6
दसवीं	2	4	5
ग्यारहवीं	2	4	5
बारहवीं	3		5

31-3-64 तक के सर्वेक्षण के अनुसार आंध्र प्रदेश में विभिन्न प्रकार के स्कूलों की संख्या 42732 थी जिनमें से 41681 स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती थी। शेष 1051 स्कूल विशिष्ट शिक्षा के स्कूल थे अतः वहां हिंदी नहीं पढ़ाई जाती थी। उपर्युक्त स्कूलों में विभिन्न कक्षाओं में हिंदी पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या कुल मिलाकर 1426083 थी। अनेक स्कूलों में हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम है। ऐसे स्कूलों की संख्या 40 है। इनमें से अधिकांश तेलंगाना क्षेत्र में स्थित हैं।

प्रशिक्षण की व्यवस्था

इतनी भारी संख्या में विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने के लिए योग्य तथा प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए राज्य में दो प्रकार के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू किये गए हैं :-

(1) वरिष्ठ हिंदी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम
(2) कनिष्ठ हिंदी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

वरिष्ठ हिंदी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम फिलहाल हैदराबाद तथा नेल्लूर स्थित गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेजों में चल रहे हैं। कुर्नूल में इसी प्रकार का एक पाठ्यक्रम शुरू करने की स्वीकृति मिल चुकी है किन्तु छात्र संख्या कम होने से अभी इसे शुरू नहीं किया जा सकता। उधर हैदराबाद के ट्रेनिंग कालेज में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए भारत सरकार शतप्रतिशत अनुदान देती है।

कनिष्ठ हिंदी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सात केन्द्रों में चल रहे हैं :- 1. एल्लूरु, 2. राज महेन्द्री, 3. विजय नगरम्, 4. विजयवाड़ा, 5. पामड्डु (कृष्णा), 6. तेनाली (नगरपेट), 7. तेनाली (मोरिसपेट)। इन केन्द्रों का प्रबंध एवं संचालन सहायता प्राप्त संस्थाएं कर रही हैं। बी० एड० परीक्षा में हिंदी प्रणाली को चुनने की सुविधा गवर्नमेंट कालेज, हैदराबाद और वारंगल में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त उस्मानिया यूनिवर्सिटी कालेज आफ एजूकेशन में भी इस प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हैं।

विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी का शिक्षण

आन्ध्र प्रदेश में कुल तीन विश्वविद्यालय हैं - आन्ध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेयर; उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद; श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति। तनों विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है।

राजकीय स्तर पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार

राजकीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार का काम सक्रिय रूप से 1958 में शुरू हुआ जब वहां के शिक्षा निदेशालय में हिंदी शिक्षा अधिकारी के पद का निर्माण किया गया। 1964-65 में हिंदी शिक्षा अधिकारी के पद को स्थाई बना दिया गया है। हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास संबंधी योजनाओं

के अंतर्गत राज्य के हिंदी विभाग की देखरेख में इस समय निम्नलिखित कार्य हो रहे हैं :-

1. स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं की परीक्षाओं को राज्य सरकार की मान्यता प्रदान कराना ।

2. संगोष्ठियां (सेमीनार) आयोजित करना ।

3. सलाहकार समिति की बैठकों का आयोजन करना ।

4. हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न स्वैच्छिक संस्थाओं को अनुदान स्वीकार करना ।

5. स्वैच्छिक संस्थाओं को राज्य सरकार की मान्यता प्रदान करना ।

इस समय राज्य सरकार पंद्रह हिन्दी संस्थाओं को हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अनुदान दे रही है ।

हिंदी प्रचार को आगे बढ़ाने के लिए और हिंदी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य सरकार ने विभिन्न हिंदी संस्थाओं की परीक्षाओं को मान्यता प्रदान की है । माध्यमिक स्कूलों में हिंदी पंडित की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित योग्यताओं को मान्यता प्रदान की गई है :-

1. किसी भारतीय विश्वविद्यालय की बी० ए० डिग्री जिसमें हिंदी विशेष (वैकल्पिक) विषय हो,

2. उस्मानिया विश्वविद्यालय की बी० ओ० एल० डिग्री (हिंदी),

3. आंध्र विश्वविद्यालय का हिन्दुस्तानी भाषा प्रवीण प्रमाण-पत्र,

4. मद्रास विश्वविद्यालय की विद्वान उपाधि अथवा विद्वान 2 (क) जिसमें दो भाषाओं में से एक भाषा हिन्दी हो, अथवा विद्वान 2 (ख) जिसमें हिंदी मुख्य भाषा हो अथवा 'विद्वान' 2 (घ) केवल हिन्दी में.

5. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की 'प्रवीण' उपाधि,

6. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास का 'विशारद' डिप्लोमा,

7. हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद का हिंदी भूषण अथवा विद्वान डिप्लोमा,

8. हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद की विशारद उपाधि,

9. हिन्दी विद्यापीठ, देवघर का साहित्य भूषण डिप्लोमा,

10. हिन्दी विद्यापीठ, देवघर का साहित्य भूषण डिप्लोमा,

11. श्री काशी विद्यापीठ,बनारस की 'शास्त्री' अथवा 'हिंदी कोविद उपाधि,

12. अखिल भारतीय हिंदी परिषद् आगरा का हिंदी पारंगत डिप्लोमा,

13. केन्द्रीय हिंदी संस्थान आगरा की 'हिंदी शिक्षण प्रवीण' अथवा हिंदी शिक्षण पारंगत अथवा हिंदी शिक्षण निष्णात,

14. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,वर्धा की राष्ट्र भाषा रत्न परीक्षा।

अध्यापकों को हिंदी शिक्षण की आधुनिक पद्धतियों से अवगत कराने के लिए विभिन्न जिलों में हिंदी सेमिनार आयोजित किए जाते हैं।

हिन्दी में बातचीत करने की आदत को प्रोत्साहन देने के लिए माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए जिला स्तर पर हिंदी में वाद-विवाद प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं और सबसे अच्छे विद्यार्थियों को योग्यता प्रमाण पत्र के साथ-साथ नकद पुरस्कार वितरित किए जाते हैं।

हिंदी और तेलुगु भाषी लोगों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए तेलुगु से हिंदी और हिंदी से तेलुगु में अनेक सुंदर पुस्तकों के अनुवाद पारिश्रमिक देकर कराये जाते हैं।

अध्ययन-अध्यापन के स्तर को उन्नत करने के साथ-साथ राज्य सरकार भाषा तथा साहित्य के सृजनात्मक पक्ष को प्रोत्साहन दे रही है। राज्य के विभिन्न विद्वानों द्वारा हिन्दी और तेलुगु के तुलनात्मक अध्ययन विषयक शोध निबंध तैयार कराए गए हैं।

साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ, माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी के अध्ययन की दृष्टि से हिंदी के भाषा-शास्त्रीय पक्ष की ओर भी राज्य सरकार ध्यान दे रही है। 1958-59 में एक समिति की नियुक्ति की गई जिसे विभिन्न माध्यमिक

कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों के लिए शब्दावली के चयन आदि का काम सौंपा गया। समिति ने पाठ्य पुस्तकों की रचना के लिए मूलभूत शब्दावली तैयार की है।

1965-66 की अवधि में पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की योजना के अंतर्गत पांचवीं, छठी और सातवीं कक्षा में दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी के माध्यम के लिए तीन पाठशालाएं भी तैयार की गईं। सरकार ने सहायता प्राप्त स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्य के पर्यवेक्षण के लिए एक सलाहकार समिति बनाई है।

सरकारी कर्मचारियों में हिंदी-शिक्षण को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने आदेश जारी किए हैं जिनके अंतर्गत सभी कर्मचारियों के लिए दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी की परीक्षा पास करना अनिवार्य कर दिया गया है। इसके लिए स्वैच्छिक हिंदी संस्थाएं कार्यालय के समय के बाद सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी कक्षाएं चला रही हैं।

केरल में हिन्दी का प्रचार प्रसार

केरल में हिन्दी का श्रीगणेश संभवत: उस समय हुआ जब वहां के देव-मंदिरों में और गोसाईं-मठों में उत्तर भारत के साधु-संतों और तीर्थ यात्रियों के सत्कार के लिए दुभाषियों की आवश्यकता हुई। वहां द्विभाषी कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है जो प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त हिंदी (गोसाईं भाषा) भी जानते हों। इस भाषा का ज्ञान कराने वाली मलयालम में लिखी कुछ प्राचीन पुस्तकें भी मिलती हैं।

तिरूवितांकुर के महाराजा स्वाति नक्षत्रज राजवर्मा जी 'गर्भ-श्रीमान' और 'स्वाति तिरूनाल' के नाम से लिखते थे, अनेक भाषाओं के पण्डित, संगीतज्ञ और उच्च कोटि के कवि थे। बृजभाषा में लिखे उनके अनेक पद सूर आदि भक्त कवियों की रचनाओं के समान मधुर एवं भावपूर्ण हैं।

हिन्दी प्रचार आन्दोलन : केरल में व्यापक स्तर पर हिंदी प्रचार का आन्दोलन सन् 1922 में प्रारम्भ हुआ जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की एक शाखा केरल में श्री दामोदरन उण्णि की देख-रेख में स्थापित हुई। उन्होंने न केवल स्थान-स्थान पर हिन्दी की कक्षाएं चलाईं अपितु अपने विद्यार्थियों में से प्रचारक भी तैयार किये। 1925 में श्री के० केशवन् नायर और श्री के० आर० शंकरानन्द को भी केरल में हिन्दी प्रचारक नियुक्त किया

गया। 1928 में सभा के प्रचार मन्त्री डब्ल्यू० पी० इग्नेशियस के प्रयत्नों से कोचीन रियासत के हाई स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाने लगी। 1932 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने एरणाकुलम में तथा कुछ समय बाद तिरुवनन्तपुरम में शाखाएं खोल दीं जिनका कार्यभार क्रमशः प्रो० ए० चन्द्रहासन और पं० देवदत्त विद्यार्थी ने सम्भाला। 1936 से ये सभी शाखाएं केरल प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा की देख-रेख में समेकित होकर काम करने लगीं और हिन्दी प्रचार कार्य बड़ी तीव्र गति से होने लगा। केरल के हिन्दी सेवियों में उपर्युक्त व्यक्तियों के अलावा सर्वश्री पी० के० नारायणन नायर, एन० सुन्दर अय्यर, एस० महालिंगम्, के० आर० विश्वनाथन्, जी० सुब्रह्मण्यम्, नारायण देव तथा एन० वेंकटेश्वरन् के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कर्मठ तथा उत्साही हिन्दी प्रेमियों की सेवाओं के फलस्वरूप इस समय तीन जिला कार्यालय, बीसों शाखा कार्यालय, पचासों हिंदी प्रचार मण्डल, सैंकड़ों विद्यालय तथा अनेक हिन्दी पुस्तकालय स्थापित हो चुके हैं। इस समय 3000 से अधिक प्रचारक हिन्दी प्रचार-कार्य में लगे हुए हैं और प्रति वर्ष 25000 से अधिक विद्यार्थी सभा की परीक्षाओं में बैठते हैं।

केरल प्रांतीय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अलावा केरल हिन्दी प्रचार सभा नाम की एक अन्य संस्था भी वर्षों से यहां हिन्दी प्रचार कर रही है जिसकी स्थापना श्री के० वासुदेवन् पिल्ले ने की थी। इस संस्था की परीक्षा को भी केरल सरकार ने मान्यता प्रदान की है।

स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के अतिरिक्त केरल में सरकारी तथा विश्वविद्यालय स्तरों पर भी हिन्दी का प्रचार हो रहा है। केरल विश्वविद्यालय की ओर से हिन्दी विद्वान परीक्षा चलाई जाती है। प्रायः सभी कालेजों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हो चुकी है और कुछ प्रमुख कालेजों में एम० ए० तक हिन्दी पढ़ाई जाती है।

राज्य स्तर पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार :

जैसा पहले कहा जा चुका है, स्वाधीनता प्राप्ति के पहले भी केरल राज्य के स्कूलों तथा कालेजों में एक स्वतन्त्र विषय के रूप में हिन्दी पढ़ाई जाती थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में राज्य के सभी स्कूलों में

हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था करने के लिए एक हिन्दी शिक्षा अधिकारी की नियुक्ति की गई थी।

इस अवधि में हिन्दी - मलयालम कोश का काम हाथ में लिया गया। इस पर 3500 रुपये खर्च किये गये। हिन्दी - मलयालम द्विभाषी पत्रिका प्रकाशित करने के लिए समस्त केरल साहित्य परिषद् को 10000 रुपये का अनुदान दिया गया।

दूसरी योजना की अवधि में हिन्दी अध्यापन और प्रचार के काम पर निगरानी रखने के लिए एक विशेष हिन्दी अधिकारी की नियुक्ति की गई। हिन्दी शिक्षा अधिकारी का यह पद सहायक निदेशक (हिन्दी शिक्षा) के नाम से विद्यमान है।

स्कूल स्तर पर :

यहां हिन्दी छठी कक्षा से तीसरी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। राज्य में 2280 से ऊपर उच्च प्राइमरी स्कूल तथा 1020 से कुछ अधिक हाई स्कूल हैं। कुल मिलाकर लगभग 11 लाख विद्यार्थी हिन्दी पढ़ रहे हैं।

कालेज स्तर पर :

राज्य में 10 सरकारी और 37 गैर-सरकारी डिग्री कालेज हैं। इनके अतिरिक्त 30 से कुछ अधिक जूनियर कालेज भी हैं। इन सभी कालेजों में हिन्दी अतिरिक्त वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। चौथे चार्ट में मुख्य वैकल्पिक विषय के रूप में हिन्दी के अध्ययन की व्यवस्था भी की गई है। कालेजों में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी अध्ययन की व्यवस्था है। विभिन्न स्तरों पर इस समय 16000 से अधिक विद्यार्थी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठते हैं।

केरल ग्रंथशाला संघम्

केरल ग्रंथशाला संघम् से सम्बद्ध लगभग 2000 पुस्तकालय तथा वाचनालय हैं। इन्हें सरकार की ओर से वार्षिक अनुदान मिलता है। इनमें से कुछ पुस्तकालयों में हिन्दी कक्षा भी हैं। इन पुस्तकालयों से हिन्दी प्रेमी जनता को हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करने की सुविधाएं मिल सकती हैं।

हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण व्यवस्था :

हिन्दी अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए, केन्द्र सरकार की योजना के अन्तर्गत 1962 में रामवर्मापुरम (त्रिचुर) में एक प्रशिक्षण कालेज स्थापित किया गया। इसे केन्द्र सरकार की ओर से शत प्रतिशत अनुदान मिलता है। प्रति वर्ष 210 प्रशिक्षार्थियों को डिप्लोमा पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग छात्रावासों की व्यवस्था शीघ्र ही की जा रही है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में तिरुवनन्तपुरम और कोषिकोड में दो और प्रशिक्षण कालेज खोलने का प्रस्ताव है।

जम्मू और कश्मीर में हिन्दी की प्रगति

अत्यन्त प्राचीन काल से कश्मीर भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा का प्रमुख केन्द्र रहा है। साहित्य कला और दर्शन के क्षेत्र में कश्मीर की भूमि ने समस्त भारत को प्रभावित किया है। सम्भवतः इसी प्राचीन सम्बन्ध के कारण कश्मीरवासियों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम और उत्साह है।

राज्य की वर्तमान शिक्षा नीति के अनुसार इस समय पहली से आठवीं कक्षा तक शिक्षा का माध्यम एक ही भाषा अर्थात् सरल उर्दू है। पुस्तकें फारसी तथा देवनागरी दोनों लिपियों में छपती हैं। इतिहास, भूगोल, समाज शास्त्र आदि विषयों को विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार हिन्दी अथवा उर्दू की पुस्तकों से पढ़ सकते हैं। हाई स्कूल में विज्ञान के छात्रों के लिए उर्दू, हिंदी अथवा पंजाबी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़नी पड़ती है।

हाल ही में शिक्षा नीति में कुछ परिवर्तन हुआ है। इसके अनुसार अगले वर्ष से कश्मीरी, डोगरी अथवा बोधी भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा दी जाने लगेगी।

इस समय राज्य में लगभग 450 हाई स्कूल हैं। हिन्दी अध्यापकों की कमी होने पर भी इस समय कुल 38 प्रतिशत छात्र हिन्दी पढ़ रहे हैं। हाई स्कूल की कक्षाओं में हिन्दी के लिए प्रति सप्ताह तीस-तीस मिनट के 12 पीरियड रखे गये हैं। हिन्दी पढ़ने के लिए विद्यार्थियों में बड़ा उत्साह है।

कालेज स्तर पर हिन्दी वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। बी० ए० पाठ्यक्रम में हिन्दी लेने वाले विद्यार्थियों के लिए पहले भाग में एक और दूसरे भाग में दो प्रश्न पत्र होते हैं।

जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में उच्च अध्ययन की व्यवस्था है।

जम्मू और कश्मीर में हिन्दी का प्रचार करने में प्राध्य भाषा संस्थानों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। इन संस्थानों में श्रीनगर स्थित महिला विद्यालय, हिंदू कन्या महाविद्यालय, विश्व भारती कन्या महाविद्यालय, रूपादेवी शारदा विद्यापीठ तथा जम्मू स्थित श्री रघुनाथ महाविद्यालय, सनातन धर्म कन्या महाविद्यालय और आर्य कन्या विद्यालय के नाम उल्लेखनीय हैं। इन संस्थानों में रत्न, भूषण और प्रभाकर की परीक्षाओं के लिए अध्यापन की व्यवस्था है। कुछ संस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थी तैयार करते हैं। इन संस्थानों के कारण महिलाओं में हिन्दी विशेष रूप से लोकप्रिय हुई है।

राज्य में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने वाली स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं में जम्मू व कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति प्रमुख है। यह समिति राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से संबद्ध है। इसकी स्थापना 1956 में हुई थी। इसकी देख-रेख में राज्य के 54 केन्द्रों में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की विभिन्न परीक्षाओं के लिए पठन-पाठन की व्यवस्था है। सभा ने श्रीनगर में एक पुस्तकालय की स्थापना भी की है जिसमें 4,000 पुस्तकें हैं। दो छोटे पुस्तकालय भी स्थापित किए हैं।

इन सरकारी और गैरसरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप जम्मू और कश्मीर राज्य में हिंदी के प्रचार और प्रसार की दिशा में प्रगति हो रही है।

मध्यप्रदेश भाषा विभाग - संगठन और कार्यकलाप

भारत का संविधान 26 जनवरी, 1949 को अंगीकृत तथा अधिनियमित हुआ। संविधान के अनुच्छेद 345 में यह व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 346 और 347 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा। इस व्यवस्था के अनुसार समस्त राज्यों को अपनी-अपनी राज-भाषा घोषित करने और उसके माध्यम से राज-काज करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

पुराने मध्यप्रदेश में प्रयुक्त होने वाली भाषाएं हिन्दी और मराठी थीं। राज-काज में अंग्रेजी के स्थान पर इन दोनों प्रादेशिक भाषाओं को प्रतिष्ठित करने की दिशा में आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए सन् 1950 में स्वतंत्र रूप से भाषा विभाग की स्थापना की गई।

नए मध्यप्रदेश के निर्माण के अवसर पर चारों राज्यों के मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में यह महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया था कि नए मध्यप्रदेश के राज-काज की भाषा हिन्दी ही होगी।

राज्य के पुनर्गठन के अनंतर भाषा संचालनालय नागपुर से भोपाल में स्थानान्तरित हुआ और उसने अपना कार्य आरम्भ किया। उस समय सचिवालयीन स्तर पर शासन की भाषा नीति के निर्धारण का कार्य शिक्षा विभाग के अधीन

था। दिनांक 1-7-63 से सचिवालयीन स्तर पर स्वतंत्र भाषा की स्थापना की गई। इसके फलस्वरूप भाषा संबंधी मामले भाषा विभाग के अन्तर्गत आ गये।

सितम्बर सन् 1957 में मध्यप्रदेश राजभाषा अधिनियम पारित हुआ तथा दिनांक 7-2-58 से वह प्रभावशील हो गया। अधिनियम के उपबंधों के अनुसार शासन द्वारा समय-समय पर अधिसूचनाएं जारी करके कुछ अपवादों को छोड़ कर, जिनके लिये अंग्रेजी के उपयोग की छूट दी गई है, समस्त शासकीय कार्यों में हिंदी का उपयोग अनिवार्य किया गया है। तदनुसार राज-काज में हिंदी का उपयोग अधिकाधिक बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों की योजना एवं कठिनाइयों को दूर करने की व्यवस्था करना, भाषा विभाग का प्रमुख काम है। राजभाषा हिंदी से संबंधित अन्य कार्य जैसे अनुवाद, शब्द-निर्माण, केन्द्र तथा हिंदी राज्यों से हिंदी में पत्र व्यवहार संबंधी कार्यवाही, साहित्यिक संस्थाओं को सहायता अनुदान तथा अर्थाभावग्रस्त साहित्यकारों को वित्तीय सहायता आदि, भाषा विभाग को सौंपे गये हैं।

2. विभाग और उससे संलग्न तथा उसके अधीन कार्यालयों में किये जा रहे कार्यों का ब्यौरा

हिन्दी भाषा के उपयोग में गति लाने की दृष्टि से राज्य शासन ने निम्न-लिखित कदम उठाये हैं :-

1. राजकाज में हिन्दी के उपयोग का क्षेत्र

सरकारी कार्यालयों में हिन्दी में संपूर्ण कार्य सम्पादन करने के संबंध में दिनांक 13-8-68 को शासन द्वारा एक ज्ञापन जारी किया गया जिसके अनुसार शासन का यह निर्णय सूचित किया गया कि सचिवालय एवं शासकीय कार्यालयों में 15 अगस्त, 1968 से समस्त कार्य हिन्दी में किया जावे। इधर राजभाषा अधिनियम 1958 की धारा 3 के अधीन भाषा विभाग द्वारा दिनांक 6-9-68 को अधिसूचना जारी की गई है, जिसके अनुसार राजकाज में हिंदी के उपयोग का विस्तार अधिकतम सीमा तक किया गया है। उपर्युक्त अधिसूचना के अनुसार अब जिन मामलों के लिए अंग्रेजी के उपयोग की छूट दी गई है वे सर्वथा तकनीकी या संवैधानिक हैं और इस कारण उन्हें राजभाषा अधिनियम के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं किया गया। वे मामले इस प्रकार हैं :-

(क) दवाइयों के नुस्खे, शव परीक्षा प्रतिवेदन तथा चिकित्सा और विधि के मिले-जुले मामलों के प्रतिवेदन,

(ख) अंग्रेजी में कार्य करने वाली संस्थाओं, व्यावसायिक संस्थाओं तथा समाचारपत्रों आदि से होने वाला (करारों को मिलाकर) पत्र व्यवहार,

(ग) निम्नलिखित मामलों से संबंधित बातें -

1. किसी अभियुक्त के विरुद्ध आरोप का अभिलेखन,

2. चिकित्सा तथा अन्य विशेष साक्षियों द्वारा दिये गये अभिसाक्षों का अभिलेखन, तथा

3. मध्यप्रदेश के समस्त फौजदारी तथा दीवानी न्यायालयों के निर्णय एवं आदेश।

(घ) व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 137 की उपधारा (3) तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 356 की उपधारा (2) के अधीन आने वाले मामले।

शासन द्वारा ज्ञापन जारी किया गया है कि यदि कोई शासकीय अधिकारी या कर्मचारी जानबूझकर हिंदी कार्य करने संबंधी आदेशों का उल्लंघन करेगा तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जावेगी। शासन ने यह भी निर्णय किया है कि तृतीय श्रेणी के सभी शासकीय कर्मचारियों के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक है और जिन कर्मचारियों को हिंदी का ज्ञान नहीं है उन्हें 1 वर्ष के भीतर हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। साथ ही समय - समय पर अनिवार्य रूप से राज-काज में हिंदी का उपयोग करने के लिये विभागों और कार्यालयों का ध्यान आकृष्ट किया जाता रहा है।

2. अनुवाद

अनुवाद में विभागीय पुस्तिकाओं, नियमों, बजट सामग्री तथा अन्य प्रशासकीय सामग्री जैसे - आयोजनाओं, योजनाओं, प्रतिवेदनों, फार्मों आदि का अनुवाद किया जा रहा है। जिला विवरणिका (डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स) के अनुवाद का कार्य भी भाषा विभाग को सौंपा गया है। अधिनियमों, नियमों तथा अधिसूचनाओं का अनुवाद कार्य भाषा विभाग द्वारा किया जाता है परन्तु इन अनुवादों की अन्तिम जांच विधि विभाग द्वारा की जाती है। इन

प्रकार भाषा संचालनालय द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 5,000 पृष्ठों का हिंदी अनुवाद किया जाता है।

3. राजपत्र तथा विभागीय ज्ञापन, परिपत्र आदि की जांच

राजपत्र में प्रकाशित होने वाली सामग्री जैसे स्थानान्तरण, नियुक्ति, छुट्टी आदि के आदेश, विज्ञप्तियां एवं सभी प्रकार की सूचनाएं हिंदी में ही प्रकाशित होने लगी हैं। जहां ऐसा नहीं होता, वहां विभागों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है। शासकीय मुद्राणालय के अधीक्षक को आदेश दिया गया है कि वे उक्त प्रकार की अंग्रेजी में प्राप्त सामग्री को प्रकाशित न करें।

4. प्रशिक्षण

(क) हिन्दी शीघ्रलेखकों एवं मुद्रलेखकों की कमी को पूरा करने के लिए राज्य शासन की ओर से राज्य के प्रत्येक संभाग में एक-एक प्रशिक्षण केन्द्र चालू किये गये हैं और प्रयत्न किया जा रहा है कि अधिक से अधिक प्रशिक्षत शीघ्रलेखक और मुद्रलेखक उपलब्ध हो सकें। इस अभाव की पूर्ति के लिये दि० 15-9-70 से जगदलपुर में एक नया शीघ्रलेखन मुद्रलेखन प्रशिक्षण केन्द्र प्रारंभ किया गया है।

31-12-70 तक इन प्रशिक्षण केन्द्रों से 821 शीघ्रलेखक और 4189 मुद्रलेखक हिन्दी शीघ्रलेखन और मुद्रलेखन में प्रशिक्षित किए जा चुके हैं।

(ख) सचिवालय के अहिन्दी-भाषी कर्मचारियों को हिन्दी में प्रशिक्षित करने के लिए मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहयोग से कक्षाएं चलाई जा रही हैं और समिति को कहा गया है कि राज्य के अन्य स्थानों पर, जहां आवश्यक हो, ऐसी कक्षाएं खोली जाएं।

5. हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली :

भाषा विभाग द्वारा एक अंग्रेजी-हिन्दी प्रशासन शब्दकोश प्रकाशित किया जा चुका है जिससे प्रशासनिक कार्यों के लिए आवश्यक हिन्दी

पर्यायों की समस्या बहुत अंशों में सुलझ गई है । 'हिन्दी सहायिका' के प्रकाशन से प्रशासकीय कामकाज हिन्दी में करने में पर्याप्त सहायता मिली है । 'हिन्दी सहायिका' के अब तक 17 अंक प्रकाशित हो चुके हैं ।

6. मुद्रलेखन - यन्त्र शीघ्रलेखक और मुद्रलेखक :

हिन्दी के उपयोग को बढ़ाने की दृष्टि से ये आदेश किए गए हैं कि अंग्रेजी के शीघ्रलेखक और मुद्रलेखक न भर्ती किए जाएं और अंग्रेजी के मुद्रलेखन यन्त्र न खरीदे जाएं । विशेष परिस्थिति में ही अंग्रेजी के मुद्रलेखन यन्त्र खरीदने की अनुमति दी जाती है ।

हिन्दी कार्य करने में गतिरोध को दूर करने के लिए शासन द्वारा वर्ष 1970-71 में हिन्दी के एक हजार टाइपराइटर खरीदे गये हैं और इतने ही अगले वित्तीय वर्ष में खरीदने का प्रस्ताव है ।

7. पुरस्कार योजना :

अखिल भारतीय केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्, दिल्ली की ओर से अखिल भारतीय स्तर पर प्रति वर्ष शीघ्रलेखन एवं मुद्रलेखन की प्रतियोगिताएं होती हैं । शासकीय कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिए वर्ष 1964 से राज्य में प्रथम स्थान पाने वाले शासकीय शीघ्रलेखक को 50 रु० तथा प्रथम तीन शासकीय मुद्रलेखकों को क्रमशः 50, 30, 20 रुपए के पुरस्कार राज्य शासन की ओर से देने की व्यवस्था है । शीघ्रलेखन और मुद्रलेखन की गति बनाए रखने के लिए गत वर्ष से शासन की ओर से भी एक प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था की गई है । इसी प्रकार लिपिकवर्गीय तथा अहिन्दी भाषी कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए भी प्रतियोगिता-परीक्षाओं की व्यवस्था की गई है ।

8. निरीक्षण :

शासन द्वारा आदेश दिए गए हैं कि जब कभी उच्च अधिकारी दौरे पर जाएं, तब वे देखें कि हिन्दी की प्रगति किस रूप में हो रही है और उसमें आने वाली कठिनाइयों को दूर करें । साथ ही विभिन्न शासकीय कार्यालयों के काम में हिन्दी के उपयोग की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए सक्षम अधिकारियों द्वारा निरीक्षण की व्यवस्था की गई है । इस दृष्टि से अब तक

राज्य के बहुत से जिलों के शासकीय कार्यालयों का निरीक्षण कार्य किया जा चुका है।

9. संस्थानों को अनुदान :

राज्य शासन की ओर से हिन्दी भाषा एवं साहित्य की उन्नति में लगी संस्थाओं को वित्तीय सहायता देने का प्रावधान है। यह कार्य भाषा संचालनालय के माध्यम से किया जा रहा है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद्, नागरी प्रचारिणी सभा, मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कालिदास समारोह समिति, तुलसी समारोह समिति आदि संस्थाओं को नियमित रूप से अनुदान प्राप्त हो रहा है। इस कार्य के लिए विभाग के प्रतिवर्ष के बजट में लगभग एक लाख रुपये का प्रावधान किया जाता है।

10. साहित्यकारों/कलाकारों को सहायता :

केन्द्र और राज्य शासन की मिली-जुली योजना के अन्तर्गत राज्य के अर्थाभाव ग्रस्त साहित्यकारों एवं कलाकारों को वित्तीय सहायता देने का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत राज्य के साहित्यकारों और कलाकारों को वित्तीय सहायता देने के लिए भाषा विभाग के प्रतिवर्ष के बजट में लगभग 70,000 रु० का प्रावधान किया जाता है। कुछ साहित्यकारों और कलाकारों को केन्द्र तथा राज्य शासन से पृथक पृथक भी सहायता दी जाती है।

11. अधीनस्थ अदालतों में हिन्दी का प्रयोग :

यद्यपि इस समय उच्च न्यायालय की कार्यवाही अंग्रेजी में होती है, फिर भी न्यायाधिपति ने रजिस्ट्रार की स्थापना शाखा में हिन्दी में काम करने के आदेश दे दिये हैं। जिला एवं सत्र न्यायालयों में तथा उनके अधीनस्थ न्यायालयों में चिकित्सा तथा अन्य विशेषज्ञ साथियों द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों के अभिलेखन और आदेश को छोड़कर अन्य साथियों के बयान हिन्दी में ही लिये जाते हैं। डिग्री तथा आज्ञाएं अंग्रेजी में होती हैं, किन्तु न्यायाधिपति ने इस आशय के आदेश जारी किए हैं कि द्वितीय श्रेणी के सिविल जज तथा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट अपने निर्णय हिन्दी में लिखें और हिन्दी में कार्य करने की क्षमता बढ़ायें।

भारत के संविधान में अनुच्छेद 348 के खण्ड (2) के उपबन्धों के अनुसार मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की (डिक्रियों, आदेशों तथा निर्णयों के अतिरिक्त) अन्य सभी कार्यवाही में हिन्दी के प्रयोग के लिए महामहिम राष्ट्रपति ने कुछ शर्तों के अधीन अपनी सहमति वैकल्पिक आधार पर दी है। इस विषय में राज्यपाल महोदय की अनुमति प्राप्त करने के लिए कार्यवाही की गई है और राजभाषा अधिनियम के अन्तर्गत जिन मामलों में फिलहाल अधीनस्थ न्यायालयों को अंग्रेजी के उपयोग की छूट है, उन्हें वापस लेकर अधीनस्थ न्यायालयों में सारा कामकाज हिन्दी में करने के प्रस्ताव पर उच्च न्यायालय का मत प्राप्त किया जा रहा है।

12. अन्तर्राज्यिक पत्र व्यवहार :

राज्य शासन ने उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र और दिल्ली प्रशासन के साथ देवनागरी लिपि में हिन्दी में पत्र व्यवहार करने का समझौता किया है और हिमाचल प्रदेश से भी देवनागरी लिपि हिंदी में पत्र व्यवहार किया जा सकता है। पंजाब सरकार से हिन्दी में पत्र व्यवहार करने के आदेश जारी करने की कार्यवाही की जा रही है।

13. भावी कार्यक्रम

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भाषा विभाग के लिए वर्ष 71-72 में एक लाख रुपयों की व्यवस्था है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य की विभिन्न बोलियों के शब्दों तथा प्रयोगों के संकलन और छानबीन करने तथा उन्हें सम्पादित कर प्रशासनिक उपयोग के अनुसन्धान योग्य बनाने की दृष्टि से दो अनुसंधान इकाइयों की स्थापना तथा त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रस्तावित है।

मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति

मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना मध्य प्रदेश निर्माण के साथ हुई। इसके पूर्व इसका नाम भोपाल मध्य भारत राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति था। सन् 1 जुलाई, 1954 से श्री बैजनाथ् प्रसाद दुबे इसके मन्त्री संचालक नियुक्त हुए और महू छावनी में इसका कार्यालय खोला गया। समिति ने राष्ट्रभाषा की परीक्षाएं प्रारम्भ कर अहिन्दी भाषा भाषियों में कार्य प्रारम्भ किया। नये मध्य प्रदेश के निर्माण के साथ इसका कार्यालय भोपाल स्थानांतरित हुआ। प्रदेश के प्रथम मुख्य मन्त्री पं० रविशंकर शुक्ल का आशीर्वाद प्राप्त कर मन्त्री संचालक श्री दुबे जी ने भोपाल के उर्दू भाषा भाषियों में कार्य प्रारम्भ किया। बैरागढ़ में सिन्ध से आए हुए विस्थापितों में भी हिन्दी का प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया। कार्य की प्रणाली यह थी कि उर्दू भाषियों में उर्दू हिन्दी का और सिन्धी भाषियों में सिन्धी लोगों से हिन्दी शिक्षण का कार्य कराया गया। इसके थोड़े ही समय में इन भाषा भाषियों में हिन्दी लोकप्रिय हुई।

राज्य में हिन्दी को उच्च स्तर से लेकर साधारण जनता तक आदर मिले, इस दृष्टि से सन् 1958 में अखिल भारत राष्ट्रभाषा सम्मेलन किया गया, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन शिक्षा राज्य मन्त्री डॉ० कालूलाल श्रीमाली ने की और उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने किया। इस अवसर पर श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन की अध्यक्षता में एक महिला परिषद्

भी आरम्भ की गई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन संसद सदस्या महारानी विजया राजे सिन्धिया ने किया। महिला वर्ग में, इसकी अच्छी प्रतिक्रिया हुई और प्रदेश में कई महिला वर्ग खुले जिनमें प्रौढ़ शिक्षण का कार्य चला। सन् 1959 में इन्दौर से 18 मील दक्षिण में गोली पलासिया ग्राम में प्रदेश राष्ट्रभाषा सम्मेलन किया गया, जिसका उद्घाटन तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयंगर ने किया। एक महिला प्रशिक्षण केन्द्र भी चला, जिसमें प्रदेश से आई हुई 10 महिलाओं को प्रमाण पत्र दिए गए।

इसी वर्ष हैवी इलैक्ट्रिकल्स्, पिपलानी में जनरल मैनेजर श्री एस० सारंगपाणी के सहयोग से राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया गया। यह भारतीय सांस्कृतिक समाज के माध्यम से चला। यहां क्षेत्रीय भाषाओं के वर्ग भी तत्कालीन राज्यपाल श्री हरिविनायक पाटस्कर द्वारा खोले गये, जिन पर तत्कालीन प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का शुभ संदेश प्राप्त हुआ। यहां जो कार्य चला वह इस प्रकार है :

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
1960-61	40
1961-62	47
1962-63	63
1963-64	69
1964-65	73
1965-66	77
1966-67	40
1967-68	51
1968-69	134
1969-70	128
1970-71	135
	857

9 जुलाई सन् 60 को शासन सचिवालय में कार्यरत तृतीय श्रेणी के अहिंदी भाषी कर्मचारियों के लिये समिति के तत्वावधान में राष्ट्रभाषा की कक्षायें खोली गईं। राज्य शासन ने समिति की परिचय परीक्षा को विभागीय परीक्षा (डिपार्टमेंटल इक्जामीनेशन इन हिंदी) के समकक्ष मान्य किया है। अतएव

सचिवालय में 2 वर्ष में परिचय परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये परिपत्र जारी किया गया। तत्कालीन मुख्य सचिव श्री एच० एस० कामथ ने हिंदी कक्षा का उद्घाटन किया। मंत्री - संचालक श्री दुबे ने इसे एक शुभारंभ की संज्ञा देते हुये राज्य शासन को धन्यवाद दिया। लगभग 1000 अहिंदी भाषी विद्यार्थियों ने कक्षाओं से लाभ उठाया। प्रगति चक्र नीचे लिखे अनुसार है :-

वर्ष	परीक्षार्थी संख्या
1960-61	52
1961-62	175
1962-63	107
1963-64	200
1964-65	213
1965-66	124
1966-67	77
1967-68	6
1968-69	5
1969-70	0
1970-71	0
	732

सन् 1965 से जेल बंदियों में हिंदी प्रचार को बल मिले इस दृष्टि से मंत्री-संचालक श्री दुबे ने राज्य में जेल महानिरीक्षक श्री नायडू से मिल कर कक्षायें प्रारंभ करने का निश्चय किया। 11 जुलाई, सन् 65 से कार्य प्रारंभ किया गया, जिसका विवरण नीचे लिखे अनुसार है :-

	जेलों का नाम	वर्ष 1965	66	67	68	69	70
1.	इन्दौर	105	76	230	197	63	39
2.	खंडवा	10	6	-	50	-	-
3.	छिंदवाड़ा	20	-	-	40	-	-
4.	भोपाल	11	17	-	-	-	31
5.	जबलपुर	22	39	33	10	45	35
6.	सागर	-	37	-	21	-	-

जेलों का नाम	वर्ष 1965	66	67	68	69	70
7. धार	-	14	21	15	15	-
8. सिवनी	-	14	29	24	26	36
9. ग्वालियर	-	40	-	9	24	46
10. नरसिंहपुर	-	-	18	-	-	34
11. रीवां	-	39	28	-	-	29
	168	282	339	524	173	250=1756

सरकारी विभागों में हिन्दी शिक्षण

वर्ष 70-71 में भाषा विभाग मध्य प्रदेश के सहयोग से अहिंदी भाषियों की एक सूची तैयार करायी गई। हिंदी भवन में इन समस्त अहिंदी भाषियों को प्रत्यक्ष भेंट के लिये बुलाया गया। जिन विभागों के अहिंदी भाषी कर्मचारियों को 'परिचय' परीक्षा उत्तीर्ण करनी है उनकी सूची इस प्रकार है :-

1.	संचालनालय आदिम जाति कल्याण, मध्य प्रदेश, भोपाल	47
2.	कार्यालय राज्य संपादक, जिला गजेटियर विभाग, म०प्र०	6
3.	महाविद्यालीन, शिक्षा संचालनालय, मध्य प्रदेश	4
4.	कार्यालय मुख्य वन रक्षक, मध्य प्रदेश	7
5.	अन्न एवं रसद संचालनालय, मध्य प्रदेश	2
6.	मत्स्योद्योग संचालनालय, मध्य प्रदेश	6
7.	कार्यालय नियंत्रक, मुद्रण तथा लेखन सामग्री	6
8.	कार्यालय लोक शिक्षण, मध्य प्रदेश	3
9.	कार्यालय पंजीयक, सहकारी संस्थाएं, म०प्र०	5
10.	कार्यालय पुलिस महानिरीक्षक, मध्य प्रदेश	32
11	मध्य प्रदेश शासन सामान्य प्रशासन (सचिवालय प्रशासन उप विभाग)	26
12.	मध्य प्रदेश, योजना एवं विकास	2
		146

पुलिस मुख्यालय में 13 जनवरी, 71 को पुलिस मुख्यालय के 24 कर्मचारियों जिनमें 6 महिला भी हैं, मंत्री संचालक की अध्यक्षता में राष्ट्

भाषा वर्ग का उद्घाटन श्री बी० एस० शुक्ल पुलिस निरीक्षक ने किया। अब आदिम जाति कल्याण विभाग व अन्य विभागों में राष्ट्र भाषा वर्ग खोलने की व्यवस्था शीघ्र की जा रही है।

राज्य में हिंदी के प्रचार प्रसार का श्रेय पं० रविशंकर शुक्ल को है जो पूर्व और नये मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री थे। अतः मध्य प्रदेश में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इनके निधन के बाद राजधानी भोपाल में हिंदी भवन बनाने का निश्चय किया। मंत्री संचालक श्री दुबे ने योजना तैयार की और 12 दिसम्बर, सन् 1964 को तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन द्वारा भवन का शिलान्यास करा दिया गया। निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ जिसमें केन्द्रीय शासन, राज्य शासन, रा० भा० प्रचार समिति, वर्धा, राष्ट्र भाषा कार्यकर्ता तथा जनता के सहयोग से भवन का निर्माण सन् 67 में पूर्ण हो गया। 6 अगस्त, सन् 67 को भवन का उद्घाटन मैसूर राज्य के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री एस० निजिलिंगप्पा द्वारा किया गया। मध्य प्रदेश रा० भा० प्रचार समिति का कार्यालय इसी में चल रहा है। भवन का ट्रस्ट भी बना दिया गया है।

मोतीलाल नेहरू स्मारक पुस्तकालय

राज्य शासन के पास मोतीलाल नेहरू शताब्दी समिति की 84, 638 रु० की राशि स्टेट बैंक में जमा थी जिसे पुस्तकालय खोलने के लिये मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को दी गई। समिति ने 2 व 3 अगस्त, 71 को पुस्तकालय के उद्घाटन और भवन का शिलान्यास कराने का निश्चय किया है। राज्य के मुख्य मंत्री पं० श्यामाचरण शुक्ल इसके अध्यक्ष हैं तथा श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे मंत्री संचालक हैं।

विभिन्न राज्यों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा

आंध्र प्रदेश

1965 से पहले आंध्र प्रदेश के आंध्र क्षेत्र के स्कूलों में हिन्दी कक्षा VI से कक्षा XI तक और तेलंगाना क्षेत्र के स्कूलों में कक्षा IV से कक्षा XI तक पढ़ाई जाती थी। 1965-66 से आंध्र और तेलंगाना, दोनों क्षेत्रों में हिन्दी कक्षा V से कक्षा VII तक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

परिशोधित एकीकृत पाठ्य-विवरण के अनुसार तथा पुरानी व्यवस्था के अनुरूप कक्षा VIII से XI तक तेलंगाना क्षेत्र के स्कूलों में हिन्दी के अध्यापन के लिए प्रति सप्ताह 4 घन्टे और आंध्र क्षेत्र के स्कूलों में प्रति सप्ताह 2 घन्टे निर्धारित किए गए हैं।

निम्नलिखित सारणी में विभिन्न कक्षाओं के लिए हिन्दी के अध्यापन के लिए निर्धारित किए गए घन्टे सूचित किए गए हैं :-

कक्षा	आंध्र हाई स्कूल	तेलंगाना हाई स्कूल
1 से IV	शून्य	शून्य
V से VIII	4	4
VIII	2	5
IX	2	4 6 केवल

कक्षा	आंध्र हाई स्कूल	तेलंगाना हाई स्कूल		
X	2	4	5	उच्च मा-
XI	2	4	5	ध्यमिक
XII	2	-	5	[illegible]
				लिए

आंध्र में हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है किन्तु इसमें पास होने के लिए न्यूनतम अंक केवल 15 प्रतिशत ही रखे गए हैं।

<u>शिक्षकों का प्रशिक्षण</u> - आंध्र में हिन्दी के शिक्षकों को हिन्दी पंडित नाम दिया गया है। हिन्दी पंडितों के प्रशिक्षण के लिए दो प्रकार के पाठ्यक्रम हैं। एक अवर हिन्दी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और दूसरा प्रवर हिंदी पंडित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम। इन दो पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण के लिए हैदराबाद में एक प्रशिक्षण कालिज स्थापित किया गया है और करनूल में एक और प्रशिक्षण कालिज खोलने का प्रस्ताव भारत सरकार के विचाराधीन है।

आंध्र में हिन्दी के शिक्षकों को वही वेतनमान दिया जाता है जो अन्य भाषाओं के शिक्षकों को दिया जाता है।

असम

असम राज्य में, माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी कक्षा IV से कक्षा VIII तक और उच्च माध्यमिक स्कूलों में कक्षा IV से X तक अनिवार्य है। कक्षा XI में हिन्दी अनिवार्य नहीं है।

कक्षा IV से VIII तक और कक्षा IX से X तक अहिन्दी माध्यम स्कूलों में हिन्दी के स्तर की तुलना क्रमशः हिन्दी स्कूलों की कक्षा III से VI और कक्षा VII से VIII से की जा सकती है।

<u>ऐच्छिक परीक्षा</u> - असम में माध्यमिक अवस्था में हिन्दी में परीक्षा ऐच्छिक है।

<u>छात्रों की संख्या</u> - माध्यमिक स्कूलों में कक्षा IX और X में हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः 4500 और 4000 है।

हिन्दी शिक्षकों की संख्या - दूसरी और तीसरी योजना की अवधि में नियुक्त किए गए हिन्दी शिक्षकों की संख्या इस प्रकार है:-

दूसरी योजना		तीसरी योजना	
पहला वर्ष	124	पहला वर्ष	26
दूसरा वर्ष	140	दूसरा वर्ष	60
तीसरा वर्ष	71	तीसरा वर्ष	60
चौथा वर्ष	71	चौथा वर्ष	90
पांचवा वर्ष	113	पांचवा वर्ष	64
	519		300

ऐसे हिन्दी शिक्षकों की संख्या जो न्यूनतम शैक्षिक योग्यता रखते हैं किन्तु प्रशिक्षित नहीं हैं, 1384 है।

हिन्दी शिक्षकों का वेतनमान और योग्यताएं-

हिन्दी शिक्षकों को मिडिल स्कूलों में रु० 140-275 का वेतनमान दिया जाता है। उनकी हिन्दी की योग्यता हिन्दी विषय में इंटरमीडिएट के समकक्ष होनी चाहिए और वे कम से कम मिडिल पास होने चाहिए यद्यपि मैट्रिक को तरजीह दी जाती है।

हाई और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी शिक्षकों को रु० 200-500 का वेतनमान दिया जाता है। उनकी हिन्दी योग्यता हिन्दी में बी० ए० परीक्षा के बराबर होनी आवश्यक है। कम से कम उन्हें मिडिल होना आवश्यक है, यद्यपि मैट्रिक को तरजीह दी जाती है।

हिन्दी शिक्षकों की आवश्यकता:-

योजना वर्ष	संख्या
पहला वर्ष	250
दूसरा वर्ष	250
तीसरा वर्ष	250
चौथा वर्ष	250
पांचवां वर्ष	250
	1250

गुजरात

अनिवार्य हिन्दी- गुजरात राज्य में हिन्दी कक्षा V से XI तक अनिवार्य है। हिंदी के अध्ययन के लिए प्राथमिक कक्षाओं में प्रति सप्ताह चार घन्टे और माध्यमिक कक्षाओं में प्रति सप्ताह पांच घन्टे दिए गए हैं। गुजरात सरकार ने हिन्दी में कोई भी पाठ्यपुस्तक प्रकाशित नहीं की है। अतएव अनुमोदित पाठ्य-पुस्तकों का इस्तेमाल होता है। स्कूलों के पुस्तकालयों में हिंदी की पुस्तकें विद्यमान हैं और लगभग सभी हाई स्कूलों में हिंदी की पत्रिकाएं खरीदी जाती हैं।

हिंदी शिक्षक- मोटे तौर से गुजरात के माध्यमिक स्कूलों में हिंदी के लगभग 1500 शिक्षक हैं। कक्षा V से VII तक के अध्यापन के लिए जूनियर हिंदी शिक्षक सनद वाले अंडरग्रेजुएट शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं। कक्षा VIII से XI तक के अध्यापन के लिए सीनियर हिंदी शिक्षक सनद वाले ग्रेजुएट शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं।

माध्यमिक स्कूलों में अंडरग्रेजुएट/ग्रेजुएट और बी० ए० बी० टी० शिक्षकों के वेतनमान क्रमशः रु० 115-180, रु० 150-245 और रु० 160-370 हैं।

तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान राज्य सरकार ने रु० 16,53,564 मांगे थे और रु० 3,33,487 की अतिरिक्त रकम की भी मांग की थी।

प्रशिक्षण की सुविधाएं - गुजरात विद्यापीठ में 1962-63 से एक शिक्षक प्रशिक्षण कालिज चल रहा है। यह कालिज ग्रेजुएट शिक्षक प्रशिक्षार्थियों को 'हिंदी शिक्षक विशारद' और मैट्रिक प्रशिक्षार्थियों को 'हिंदी शिक्षक विनीत' के प्रमाण-पत्र देता है।

राज्य में शिक्षक प्रशिक्षण के 13 कालिज और 3 ग्रेजुएट बेसिक प्रशिक्षण केंद्र हैं। इनमें, अन्य विषयों के अतिरिक्त शिक्षकों को हिंदी अध्यापन की विशेष पद्धतियों में प्रशिक्षित किया जाता है।

राज्य सरकार दो परीक्षाओं का संचालन करती है- सीनियर हिंदी शिक्षक सनद और जूनियर हिंदी शिक्षक सनद। सीनियर हिंदी शिक्षक सनद के लिए न्यूनतम योग्यता बी० ए० है और जूनियर शिक्षक सनद के लिए मैट्रिक। सरकार की ओर से इन परीक्षाओं के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा कक्षाएं

चलाई जाती हैं और कुछ शिक्षक निजी तौर पर भी इन परीक्षाओं में बैठने की तैयारी करते हैं। प्रति वर्ष दोनों, सीनियर हिंदी शिक्षक और जूनियर हिंदी शिक्षक सनद परीक्षाओं में 150 शिक्षक बैठते हैं। हिंदी के साथ बी० ए० बी० टी० को पूरी तरह प्रशिक्षित ग्रेजुएट माना जाता है। बी० ए० सीनियर हिंदी शिक्षक सनद वाले को बी० ए०, एस० टी० सी० के बराबर माना जाता है और उसे दो अतिरिक्त वार्षिक वेतन- वृद्धियां मिलती हैं। डिप्लोमा एस० एच० एच० प्रमाणपत्र, जूनियर और सीनियर, एस० टी० प्रमाणपत्र परीक्षाओं के समकक्ष माने जाते हैं।

छह विस्तार केंद्रों और एककों में पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिसमें हिंदी भी शामिल है। ऐसे पाठ्यक्रमों का सामान्यत: एस० टी० टी० कालिज में आयोजन किया जाता है।

राज्य सरकार के सामने हिंदी के अध्यापन के विषय में कोई विशेष रूप से उल्लेखनीय समस्या नहीं है।

जम्मू और कश्मीर

कश्मीर में भाषा की स्थिति: भाषा के अध्यापन की स्थिति कुछ विचित्र सी है।

जम्मू और कश्मीर राज्य की मुख्य क्षेत्रीय भाषाएं, कश्मीरी, डोगरी और बौधी हैं किंतु इनमें से कोई भी भाषा प्राइमरी स्तर पर भी शिक्षा का माध्यम नहीं है ; यद्यपि जम्मू और कश्मीर सरकार ने उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में प्राइमरी शिक्षा के माध्यम के रूप में लागू करने का फैसला किया है।

पिछले बीस वर्षों में जम्मू और कश्मीर सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में सरल उर्दू की नीति पर अमल किया है जो फारसी या देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। अतएव, इस राज्य में क्षेत्रीय भाषा अथवा हिंदी की बजाय सरल उर्दू भी अनिवार्य है।

राज्य सरकार ने 'जान पहचान' शीर्षक से एक प्राइमर प्रकाशित की है जिसमें एक ही विषय-वस्तु को फारसी और देवनागरी, दोनों लिपियों में, एक ही जिल्द में प्रस्तुत किया गया है और छात्र अपनी मन-पसन्द लिपि में पढ़ सकते हैं।

कक्षा I से V तक की भाषा की पुस्तकें –

भाषा की पुस्तकों की विषय-वस्तु, उर्दू अथवा हिंदी पढ़ने वाले छात्रों के लिए एक ही है, अंतर केवल लिपि का है ।

कक्षा VI से VIII तक साहित्यिक उर्दू या हिंदी –

कक्षा VI से साहित्यिक उर्दू या हिंदी शुरू की जाती है किंतु विषय-वस्तु में अंतर है । दूसरे शब्दों में छात्र हिंदी या उर्दू कोई भी विषय ले सकते हैं । पंजाबी छात्र, यदि चाहें तो पंजाबी भी ले सकते हैं ।

हाई स्कूलों इत्यादि में भाषा:- हाई स्कूल या उच्चतर माध्यमिक स्तर में विज्ञान के छात्रों के लिए कोई भी भाषा अनिवार्य नहीं है किन्तु कला के छात्रों के लिए हिंदी या उर्दू अथवा पंजाबी अनिवार्य है ।

एक माध्यम: जम्मू और कश्मीर राज्य सरकार ने कक्षा VIII तक के लिए सभी विषयों में पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की हैं । ये पुस्तकें फारसी अथवा देवनागरी लिपि में हैं । देवनागरी की पुस्तकें मौलिक हिंदी पुस्तकों का अनुवाद नहीं है बल्कि फारसी लिपि का हिंदी में सरल रूपांतर मात्र हैं । यहां तक की गणित या ज्यामिति जैसे विषयों में तकनीकी शब्दावली फारसी की ही है और उसे देवनागरी में लिख दिया गया है । इस प्रकार, जम्मू और कश्मीर राज्य में एक प्रकार के समान पाठ्यपुस्तकों के रूप में एक ही माध्यम प्रचलित है ।

कुछ विषयों की पाठ्यपुस्तकों में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों को भारत सरकार द्वारा अनुमोदित नई शब्दावली से अवगत करवाने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर हुआ है । नए पारिभाषिक शब्दों को या तो अध्याय के आरंभ में कोष्ठकों में दिया गया है या जहां वे पहली बार आए हों वहां पर ।

हाई स्कूल इत्यादि में माध्यम: हाई स्कूल या उच्चतर माध्यमिक स्तर में, अर्थात कक्षा IX से X तक, शिक्षा का माध्यम विशेष रूप से (क) विज्ञान, (ख) गणित, (ग) शरीर, और स्वास्थ्य विज्ञान के लिए अंग्रेजी ही है ।

जहां तक इतिहास, भूगोल और सामाजिक अध्ययन जैसे विषय हैं उनमें छात्र हिंदी या उर्दू, किसी भी भाषा की पुस्तकें पढ़ सकते हैं ।

अनिवार्य अंग्रेजी: कक्षा VI से XI तक, अथवा हाई स्कूल में कक्षा X तक, अंग्रेजी अनिवार्य विषय है, किंतु हिंदी या उर्दू में अनुवाद के लिए गद्यांश दिए जाते हैं ।

मोटे तौर से प्रतिशतता: जम्मू और कश्मीर राज्य के स्कूलों में हिंदी लेने वाले छात्रों की मोटे तौर से प्रतिशतता 38 है। वास्तव में, हिंदी के छात्रों की प्रतिशतता, राज्य के विभिन्न जिलों की आबादी की पैटर्न पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, जम्मू क्षेत्र के तीन जिलों में यह सर्वाधिक है और कश्मीर घाटी के तीन जिलों में संभवत: न्यूनतम है।

भाषा शिक्षा: इस राज्य में भाषा के शिक्षकों के वेतनमान अन्य विषयों के शिक्षकों के समकक्ष हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण: इस राज्य में हिंदी के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष प्रबंध नहीं है सिवाए इसके कि जो सामान्य शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए उपलब्ध है।

अतिरिक्त हिंदी शिक्षक: जम्मू और कश्मीर सरकार के शिक्षा निदेशालय ने राज्य के शिक्षा सचिव से 120 शिक्षकों की मांग की है, जिसे भारत सरकार को भेज दिया गया है।

केरल

अनिवार्य हिन्दी : केरल में कक्षा V (अपर प्राइमरी) से कक्षा X तक के लिए हिन्दी तृतीय भाषा के रूप में एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

कक्षा V के लिए केवल दो घंटे प्रति सप्ताह रखे गए हैं जबकि कक्षा VI से X तक के लिए 45 मिनट की अवधि के तीन घंटे प्रति सप्ताह हिन्दी के लिए रखे गए हैं।

उत्तीर्णांक : अगली उच्च कक्षा में चढ़ाने के लिए और (एस० एस० एल० सी०) परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए न्यूनतम 85 प्रतिशत निर्धारित किए गए हैं। इससे छात्रों को भाषा के सभी अनिवार्य साधनों का पता चल जाता है और हिन्दी साहित्य का परिचय भी मिल जाता है।

पाठ्य-पुस्तकें : केरल राज्य सरकार ने विस्तृत अध्ययन के लिए भी पाठ्य पुस्तकें तैयार करवाई हैं। केरल के स्कूलों में सामान्य अध्ययन के लिए सहायक पुस्तकें भी इस्तेमाल की जा रही हैं।

हिन्दी शिक्षक : केरल में कक्षा IV से X तक में हिन्दी पढ़ाई जा रही है इसलिए शिक्षा के अपर प्राइमरी और हायर सैकेंडरी स्तरों के लिए हिन्दी शिक्षक हैं । प्रत्येक स्तर के हिन्दी शिक्षकों की संख्या नीचे दी गई है :-

हाई स्कूल	2094
अपर प्राइमरी	3340
कुल	5434

शिक्षकों और छात्रों का अनुपात 1: 103 है । हिन्दी केवल हिन्दी शिक्षकों द्वारा पढ़ाई जा रही है ।

हिन्दी शिक्षकों की संख्या : विभिन्न योजनाओं में हिन्दी शिक्षकों की संख्या निम्नलिखित है :

	दूसरी योजना		तीसरी योजना
वर्ष	नियुक्त किए गए हिन्दी शिक्षकों की सं०	वर्ष	नियुक्त किए गए हिन्दी शिक्षकों की सं०
1956-57	163	1961-62	460
1957-58	166	1962-63	433
1958-59	184	1963-64	399
1959-60	210	1964-65	461
1960-61	202	1965-66	465

चौथी योजना

वर्ष	अपेक्षित शिक्षकों की सं०
1966-67	467
1967-68	340
1968-69	324
1969-70	329
1970-71	313

योग्यता और वेतनमान:

केरल में हिन्दी शिक्षकों की योग्यताएं और वेतनमान निम्नलिखित हैं:-

मिडिल स्कूल:

वेतनमान: 85-160

योग्यताएं: एस० एम० एल० सी० और हिन्दी भूषण या हिन्दी विद्वान या राष्ट्र भाषा विशारद।

माध्यमिक स्कूल:

वेतनमान: 130-250

योग्यताएं: बी०ए०, बी०एड० (हिन्दी ऐच्छिक) एस० एस० एल० सी० और शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र के साथ पूर्वीय उपाधि धारी।

शिक्षकों का प्रशिक्षण : शिक्षा विभाग के अधीन त्रिचूर में हिन्दी शिक्षकों का एक प्रशिक्षण कालिज है। 1967-68 के दौरान त्रिवेन्द्रम में एक और कालिज प्रारम्भ करने की मंजूरी दी जा चुकी है।

त्रिचूर स्थित हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण कालिज में प्रशिक्षित किए गए हिन्दी शिक्षकों की संख्या निम्नलिखित हैं:-

वर्ष	प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम	डिप्लोमा पाठ्यक्रम
1961-62	36	37
1962-63	49	70
1963-64	49	110
1964-65	95	125
1965-66	-	210

शैक्षिक वर्ष 1965-66 के दौरान प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम समाप्त कर दिया गया था।

पुनश्चर्या पाठ्यक्रम: राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में हाई स्कूल के हिन्दी शिक्षकों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गई है। हिन्दी प्रशिक्षण कालिज के प्राध्यापक तथा विभाग के योग्यता प्राप्त अध्यापक और प्रधान अध्यापक जो इन पाठ्यक्रमों में संचालक के रूप में काम करते हैं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संस्थान में नियमित कार्य करेंगे।

मद्रास

मद्रास राज्य में कक्षा IX से कक्षा ने XI में हिन्दी दूसरी भाषा के रूप में अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है, परन्तु छात्र के लिए एस० एस० एल० सी० परीक्षा में हिन्दी में उतीर्ण होना आवश्यक नहीं है। छात्रों के लिए हिन्दी की परीक्षा के दिन केवल परीक्षा हाल में उपस्थित होना ही पर्याप्त है।

मद्रास राज्य के माध्यमिक स्कूलों (कक्षा IX से XI) की भाषा योजना के अनुसार छात्र भाग I (जिसमें हिन्दी भी भाषा के रूप में शामिल है) के अन्तर्गत प्रादेशिक भाषा या मातृ भाषा तथा भाग II के अन्तर्गत भाग I के अन्तर्गत न ली गई कोई अन्य भारतीय भाषा (इसमें भी हिन्दी को भाषा के रूप में रखा गया है) ले सकता है। सामान्यत: जिन छात्रों की मातृभाषा हिन्दी है वे हिन्दी भाग I लेंगे और छात्रों के लिए हिन्दी सभी प्रयोजनों के लिए अनिवार्य है। जो छात्र भाग II के अन्तर्गत हिन्दी (भाग I के अन्तर्गत ली गई भाषा से भिन्न) लेंगे उनके लिए इस भाषा का अध्ययन ऐच्छिक होगा। यदि कोई छात्र शैक्षिक पाठ्यक्रम में 5 से कम अंकों की कुल कमी से एक या एक से अधिक विषयों में फेल हो जाता है तो ऐसी कमी को माफ कर दिया जाता है, यदि उसने कुल मिला कर, भाग II की भाषा के प्राप्तांकों को शामिल करने के बाद, 40 प्रति-

शत से अधिक अंक प्राप्त किए हों और साथ यह भी शर्त है कि भाग II के अधिकतम अंक 50 से अधिक न हों ।

परिवर्तन: इस वर्ष से माध्यमिक स्कूलों में अंग्रेजी और तमिल का अध्ययन अनिवार्य होगा तथा तीसरी भाषा अर्थात् उच्च तमिल या हिन्दी या अन्य किसी भाषा का अध्ययन छात्रों की इच्छा पर छोड़ दिया जाएगा। छात्रों को अगली कक्षा में चढ़ाने के लिए तीसरी भाषा में प्राप्त किए गए अंकों को, कम से कम इस नए सूत्र को लागू करने के प्रारम्भिक वर्षों में, नहीं गिना जाएगा।

हिन्दी शिक्षकों को वही वेतनमान दिया जाएगा जो अन्य विषयों के शिक्षकों को दिया जाता है ।

महाराष्ट्र

अनिवार्य हिन्दी: महाराष्ट्र राज्य में कक्षा V से कक्षा XI के लिए हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य है । एस० एस० एल० सी० परीक्षा और इसकी समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए भी यह अनिवार्य है। 35 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को विषय में उत्तीर्ण माना जाता है । अगली उच्च कक्षा में चढ़ने के लिए हिन्दी में उत्तीर्ण होना आवश्यक है ।

विभिन्न कक्षाओं में हिन्दी शिक्षा के लिए प्रति सप्ताह नियत किए गए घंटों की संख्या निम्नलिखित है:-

प्रदेश	घंटे प्रति सप्ताह							
	V	VI	VII	VIII	IX	X	XI	XII
पश्चिमी महाराष्ट्र	4	4	4	5	5	4	4	-
महाराष्ट्र	3	3	3	3	6	5	6	5
विदर्भ	5	5	5	5	3	3	3	-

सभी कक्षाओं में सभी विषयों के लिए कुछ घंटों की संख्या 45 है । घंटे की अवधि 40 मिनट है ।

हिन्दी पुस्तकों पर आने वाले व्यय के लिए अनुदान दिए जाते हैं ।

जहां तक पाठ्य पुस्तकों का सम्बन्ध है, स्कूलों को यह स्वतन्त्रता है कि वे हिन्दी की शिक्षा के लिए कोई भी पाठ्य पुस्तकें और शिक्षण सामग्री इस्तेमाल करें।

हिन्दी शिक्षक: हिन्दी शिक्षक को अन्य सभी शिक्षकों के बराबर माना जाता है। प्राइमरी स्कूलों में कक्षा VII तक प्रमाणपत्र प्राप्त प्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं।

माध्यमिक स्कूलों में प्रवर हिन्दी शिक्षक सनद परीक्षा पास उन व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है जो मैट्रिक पास या स्नातक हैं। इस परीक्षा के पाठ्यक्रम की अवधि दो वर्ष है। एक वर्ष की अवधि का एक और पाठ्यक्रम अवर हिन्दी शिक्षक सनद परीक्षा है और अवर हि०शि० स० में प्रशिक्षित शिक्षक भी माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण के लिए पात्र माने जाते हैं।

छात्र-शिक्षक अनुपात माध्यमिक स्कूलों में 25 छात्रों के लिए 1 और प्राथमिक स्कूलों में 37 छात्रों के लिए 1 है।

राज्य में अलग हिन्दी शिक्षक नहीं हैं और क्योंकि प्रत्येक शिक्षक एक से अधिक विषयों को पढ़ाता है इसलिए सभी शिक्षक हिन्दी पढ़ाते हैं।

हिन्दी शिक्षकों का प्रशिक्षण: राज्य में हिन्दी शिक्षकों के लिए कोई अलग प्रशिक्षण कालिज नहीं है परन्तु मनमाड में केवल हिन्दी शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कालिज खोलने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है।

बान्द्रा स्थित सरकारी बेसिक शिक्षक प्रशिक्षण कालिज में केवल हिन्दी शिक्षकों के लिए आरक्षित 40 शिक्षकों के एक प्रभाग की व्यवस्था है। वर्ष में दो बार चार महीनों की अवधि के चार अल्पकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। इस प्रकार प्रति वर्ष आठ पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं और प्रत्येक पाठ्यक्रम में 40 शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता है।

महाराष्ट्र के शिक्षकों को समय-समय पर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में भी प्रतिनियुक्त किया जाता है।

मैसूर

मैसूर राज्य में कक्षा VI से X तक हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है किन्तु एस०एस०एल०सी० की परीक्षा में हिन्दी की परीक्षा में

बैठना और उसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं है। यदि कोई छात्र इस परीक्षा में हिन्दी का पर्चा देना चाहता है तो हिन्दी में उत्तीर्ण होने के लिए केवल 25 प्रतिशत अंकों की आवश्यकता है।

हिन्दी ऐच्छिक विषय के रूप में

कक्षा IX और X में हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में भी पढ़ाया जाता है। प्रत्येक कक्षा में रजिस्टर में दर्ज छात्रों की कुल संख्या में से हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में लेने वालों छात्रों की प्रतिशतता मोटे तौर पर लगभग 25 प्रतिशत है।

प्रति सप्ताह घंटे

हिन्दी को अनिवार्य / ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाने के लिए प्रति सप्ताह नियत किए गए घंटों की संख्या निम्नलिखित है:-

कक्षा	प्रति सप्ताह घंटों की सं०		
	अनिवार्य	ऐच्छिक	अभ्युक्ति
VI	3 -प्रत्येक 40 मिनट का	–	–
VII	जैसे ऊपर	–	–
VIII	3 -प्रत्येक 45 मिनट का	–	–
IX	4 -प्रत्येक 45 मिनट का	5	–
X	3 -प्रत्येक 45 मिनट का	5	–

सीनियर प्राइमरी स्कूल (VI से VII) के अन्त तक छात्र को हिन्दी की खासी कामचलाऊ जानकारी ही जाती है और वह साधारण वाक्य बनाने तथा सामान्य दैनिक प्रयोग की शब्दावली को इस्तेमाल करके बातचीत करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। हाई स्कूल स्तर के अन्त में छात्र कन्नड़ या मातृ भाषा में हिन्दी अंशों की व्याख्या करने और हिन्दी निबन्ध लिखने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

पाठ्य पुस्तकें

पाठ्य पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की योजना के अन्तर्गत शिक्षा विभाग ने अनिवार्य हिन्दी के लिए पाठ्य पुस्तकों के रूप में निर्धारित किए जाने के लिए हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें तैयार की हैं । राज्य सरकार हिन्दी की विशेष पाठ्य पुस्तकें बनाने के लिए भी तैयार है ।

हिन्दी शिक्षक

हिन्दी शिक्षकों की संख्या और ग्रेड निम्नलिखित हैं :-

7000 हिन्दी शिक्षक, वेतनमान रू० 80-150

1300 हिन्दी शिक्षक, वेतनमान रू० 130-230

इसके अतिरिक्त, जिन स्कूलों में हिन्दी शिक्षक नहीं हैं वहां नियमित शिक्षक भी स्कूल विषय के रूप में हिन्दी पढ़ा रहे हैं बशर्ते कि उनके पास राज्य सरकार द्वारा निर्धारित हिन्दी में अपेक्षित योग्यता हो । ऐसे शिक्षकों की संख्या लगभग 1,000 है ।

शिक्षकों का प्रशिक्षण

तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत सरकार की 100 प्रतिशत सहायता से तीन हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण कालिज खोले गए थे । ये कालिज इस समय रायचूर, बागलकोट और मैसूर में चल रहे हैं । योजनावधि के अंत तक पूरा व्यय भारत सरकार द्वारा दिया जा रहा था । वर्ष 1966-67 से ये सारे कालिज सामान्य बजट के अन्तर्गत लाए जा चुके हैं और इन कालिजों के अनुरक्षण का व्यय राज्य सरकार द्वारा पूरा किया जा रहा है ।

हिन्दी शिक्षकों के लिए हिन्दी पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों की व्यवस्था भी राज्य सरकार की निधियों से की जाती है ।

शिक्षकों की कमी

राज्य सरकार के सामने एक समस्या यह भी है कि केन्द्र प्रायोजित योजना के अन्तर्गत मंजूर पदों को भरने के लिए हिन्दी शिक्षक पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हैं ।

उड़ीसा

अनिवार्य हिन्दी : उड़ीसा में सभी माध्यमिक स्कूलों में कक्षा VI से कक्षा XI तक हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य है ।

कक्षा VI से कक्षा IX तक के लिए 35-35 मिनट के दो घण्टे और कक्षा X और XI के लिए 40-40 मिनट के घण्टे होते हैं ।

पाठ्यपुस्तकों का निर्धारण माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा किया जाता है । निजी प्रकाशक पाठ्य पुस्तकें बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । इस समय हिन्दी सीखने वाले छात्रों के लिए पाठ्यपुस्तकें तैयार करने और उन्हें प्रकाशित करने की योजना बोर्ड के विचाराधीन है ।

हिन्दी शिक्षक : इस समय राज्य में 390 शिक्षक हैं । उनका वेतनमान निम्न प्रकार है :-

(i) सरकारी स्कूलों में - रु० 115-220
(ii) गैर-सरकारी स्कूलों में - रु० 110-195

हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति पर राज्य सरकार हर साल राज्य निधि से 3.16 लाख रु० व्यय करती है । 1965-66 में भारत सरकार की ओर से राज्य सरकार को इस मद में व्यय के लिए 1.5 लाख रु० नियत किए गए थे ।

हिन्दी शिक्षकों के लिए मैट्रिक परीक्षा अथवा साहित्याचार्य के साथ हिन्दी की कोविद या प्रवीण परीक्षा पास होना आवश्यक है । इसके बाद हिन्दी में दस मास का प्रशिक्षण भी होना चाहिए ।

हिन्दी शिक्षकों को प्रशिक्षण : हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण कालेज, भुवनेश्वर और प्रशिक्षण संस्थान, कटक माध्यमिक स्कूलों के लिए हिन्दी शिक्षकों को प्रशिक्षण देता है । इनमें से प्रथम प्रवीण पाठ्यक्रम का प्रमाण पत्र देता है और दूसरे में हिन्दी शिक्षक प्रमाण - पत्र पाठ्यक्रम की व्यवस्था है । अब तक 169 शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है ।

राज्य सरकार चाहती है कि केन्द्र सरकार द्वारा किए गए अनुदानों से प्रत्येक हाई स्कूल आदि में लिंग्वाफोन, टेप रिकार्डर आदि दृश्य काव्य साधनों की और पाठ्य पुस्तकों के लिए पुस्तकालयों की व्यवस्था की जाए ।

पंजाब

प्रथम और द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी

पंजाब के एक भाषाई पंजाबी भाषी राज्य के रूप में पुनर्गठित हो जाने के बाद पंजाब में हिन्दी का स्थान और साथ ही सम्पूर्ण भाषा नीति विचाराधीन है। लेकिन इस समय जो स्थिति है, वह निम्न प्रकार है :-

पंजाब में हिन्दी का अध्ययन प्रथम या द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य है।

सच्चर फार्मूले के अनुसार पहले के पंजाब के क्षेत्रों में प्राइमरी की पहली कक्षा से हिन्दी प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। सप्ताह में हिन्दी की पढ़ाई के लिए पांचवी कक्षा तक नौ घण्टे और छठी कक्षा से ऊपर के लिए आठ घण्टे नियत हैं।

जो छात्र हिन्दी को प्रथम भाषा के तौर पर नहीं पढ़ते, उनके लिए द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य है। इन्हें तीसरी कक्षा से हिन्दी पढ़ाई जाती है। इन्हें पांचवी कक्षा तक सप्ताह में चार घण्टों में और छठी कक्षा से ऊपर तीन घण्टों में हिन्दी पढ़ाई जाती है।

किसी कक्षा की परीक्षा पास करने के लिए प्रथम भाषा की परीक्षा को पास करना अनिवार्य है। लेकिन जिन छात्रों ने हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में लिया होता है, उन्हें हिन्दी की परीक्षा पास किए बिना भी अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाता है।

प्रथम कक्षा से आठवीं कक्षा तक की सभी पाठ्य पुस्तकों का, जिनमें हिन्दी की पुस्तकें भी सम्मिलित हैं, राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है।

हिन्दी शिक्षक : हिन्दी शिक्षकों का वर्तमान वेतन मान रु० 60-120 है। भाषा शिक्षकों को तीन वेतन वृद्धियां दी जाती हैं। इस प्रकार उनका वेतन रु० 70 से शुरू होता है। इस वेतनमान में 50 प्रतिशत पद हैं, बाकी 35 प्रतिशत और अवशिष्ट पद क्रमशः रु० 120-175 और रु० 140-320 के वेतनमान में हैं। सभी जे० बी० टी० शिक्षक हिन्दी पढ़ा सकते हैं क्योंकि इन शिक्षकों के लिए हिन्दी अनिवार्य विषय है। मैट्रिक ओ० टी० योग्यता वाले शिक्षक मिडिल और हाई स्कूल कक्षाओं को पढ़ाते हैं। इन्हें प्रभाकर

के साथ-साथ ओ० टी० प्रशिक्षण के दौरान हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है।

पश्चिमी बंगाल

अनिवार्य तृतीय भाषा

पश्चिमी बंगाल में उन छात्रों को कक्षा V से VII तक हिन्दी अनिवार्य तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है जिनकी प्रथम भाषा बंगाली होती है। उपरिलिखित सभी कक्षाओं में हिन्दी पढ़ाने के लिए प्रति सप्ताह तीन घण्टे (एक घण्टा 40 मिनट का होता है) निर्धारित होते हैं। राज्य सरकार ने खुले तौर पर पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित नहीं की हैं। राज्य सरकार ने यह भी सूचना दी है कि राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने अहिन्दी भाषा-भाषी राज्यों के लिए हिन्दी पाठ्य पुस्तकें तैयार करने की योजना हाथ में ली है। इसी प्रकार इस राज्य के लिए अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में पाठ्य पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। इसलिए पश्चिमी बंगाल सरकार ने पाठ्य पुस्तकें तैयार करवाने की कोई ऐसी योजना शुरू नहीं की है।

हिन्दी शिक्षक : सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक स्कूलों में लगभग तीन सौ हिन्दी शिक्षक हैं। सामान्यत: प्रत्येक माध्यमिक स्कूल में हिन्दी पढ़ाने के लिए एक शिक्षक नियुक्त किया जाता है। हिन्दी शिक्षकों के वेतनमान अभी विचाराधीन हैं।

(i) राज्य सरकार द्वारा राज्य निधि में से हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति पर व्यय की जाने वाली राशि,

(ii) केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों के लिए नियत राशि। इन दोनों मदों के वार्षिक आंकड़े नीचे दिए जा रहे हैं।

(i) वर्ष	सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं पर किया जाने वाला व्यय
1961-62	रु० 1,66,064/-
1962-63	रु० 2,08,282/-
1963-64	रु० 2,52,054/-

(i) वर्ष		सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं पर किया जाने वाला व्यय
1964-65	रु०	2,88,245/-
1965-66	रु०	2,89,806/-
कुल जोड़	रु०	12,04,451/-

(ii) वर्ष		भारत सरकार द्वारा इस प्रयोजन के लिए मंजूर रकम
1961-62	रु०	48,216/-
1962-63	रु०	1,60,000/-
1963-64	रु०	4,00,000/-
1964-65	रु०	2,80,000/-
1965-66	रु०	7,00,000/-
कुल जोड़	रु०	15,88,216/-

हिन्दी शिक्षक की न्यूनतम निर्धारित योग्यता मैट्रिक के साथ कोविद है।

<u>शिक्षकों को प्रशिक्षण</u> : हिन्दी शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए 1964 में हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण कालेज की स्थापना की गई।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है और इन पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण पाने के लिए पश्चिमी बंगाल सरकार हिन्दी शिक्षकों को नियुक्त करती है।

नागालैण्ड

नागालैण्ड में तीसरी से आठवीं कक्षा तक हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। प्रति सप्ताह हिन्दी के अध्ययन के लिए दो घण्टे होते हैं। इन कक्षाओं में हिन्दी पास करने के लिए न्यूनतम 30 प्रतिशत अंक प्राप्त करने आवश्यक हैं। तीसरी से आठवीं कक्षा तक कक्षा में पास होने के लिए हिन्दी में पास होना जरूरी है। हिन्दी का शिक्षण स्वतंत्र विषय के रूप में भी होता है।

त्रिपुरा

त्रिपुरा में चौथी से आठवीं कक्षा तक हिन्दी पढ़ाई जाती है। सप्ताह में हिन्दी की पढ़ाई के दो घण्टे रखे गये हैं। छठी से आठवीं कक्षा तक हिंदी की परीक्षा ली जाती है। परीक्षा पास करने के लिए न्यूनतम 30 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है। यदि कोई छात्र हिन्दी को छोड़ कर अन्य विषयों में पास हो जाते हैं तो उसे अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाता है। ●

नेफा क्षेत्र

नवीं कक्षा तक हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। हिन्दी के अध्ययन के लिये प्रति सप्ताह हर एक कक्षा के लिये छः घंटे नियत किये गये हैं। एक घण्टे की अवधि 40 से 45 मिनट है। ●

दादरा और नागर हवेली

यहां प्रारम्भिक स्तर पर अर्थात् पांचवीं से सातवीं कक्षा तक और माध्यमिक स्तर पर आठवीं से नवीं कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

हिन्दी के शिक्षण के घण्टों का नियतन निम्न प्रकार है :-

पांचवीं से सातवीं कक्षा तक	5 घण्टे
आठवीं से नवीं कक्षा तक	2 घण्टे
दसवीं कक्षा के लिये	4 घण्टे
ग्यारहवीं कक्षा के लिये	6 घण्टे

हिन्दी परीक्षा का एक विषय है। इसे पास करने के लिये न्यूनतम 35 अंक प्रतिशत प्राप्त करना आवश्यक है। कक्षा में पास होने के लिये हिन्दी में पास होना आवश्यक है।

जहां तक शिक्षकों का सम्बन्ध है, अलग से हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की जाती। इसी प्रकार यहां अलग से हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कोई संस्था नहीं है। ●

गोवा, दमण और दिव

हिन्दी तीसरी से ग्यारहवीं कक्षा तक अनिवार्य तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। महाराष्ट्र एस० एस० सी० शिक्षा बोर्ड पूना ने, जिसके साथ शिक्षा संस्थाएं सम्बद्ध हैं, दो वर्ष की अवधि के लिए - अर्थात् 1967 तक हिन्दी को एस० एस० सी० परीक्षा के लिये ऐच्छिक विषय बनाने का निर्णय किया है। इस समय छात्रों के लिये हिन्दी में पास होना आवश्यक नहीं है।

हिन्दी शिक्षकों को वही वेतन मान दिया जाता है जो अन्य विषयों के शिक्षकों को दिया जाता है। ●

पांडिचेरी

ऐच्छिक हिन्दी: पांडिचेरी में हिन्दी ऐच्छिक विषय है, लेकिन शत प्रतिशत छात्र हिन्दी पढ़ते हैं। माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा नवीं कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा तक दी जाती है। हिन्दी शिक्षण के लिए प्रति सप्ताह 40-40 मिनट के तीन घण्टे होते हैं। हिन्दी के ज्ञान की मात्रा को निम्नलिखित तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है:-

कक्षा IX	300 शब्द
कक्षा X	200 शब्द
कक्षा XI	200 शब्द

स्कूलों में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों से शिक्षा दी जाती है।

हिन्दी शिक्षक: हिन्दी शिक्षकों का पदनाम, वेतनमान और हिन्दी की योग्यताएं नीचे दी जा रही हैं :-

हिन्दी पण्डित ग्रेड II वेतनमान रू० 140-250; योग्यताएं-- एस० एस० एल० सी० के साथ हिन्दी का विशारद या उसके समकक्ष प्रमाणपत्र और माध्यमिक स्तर का प्रचारक प्रशिक्षण डिप्लोमा होना चाहिए।

हिन्दी पण्डित ग्रेड I: वेतनमान रू० 90-140 प्रति मास।

<u>योग्यताएं:</u> III कक्षा पास हो और हिन्दी की विशारद परीक्षा पास की हो। यथा संभव प्रशिक्षण प्रमाणपत्र भी होना चाहिए।

लक्षद्वीप

<u>अनिवार्य हिन्दी:</u> इस संघ शासित क्षेत्र में कक्षा IV से कक्षा X तक हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य है और परीक्षा पास करने के लिए न्यूनतम 35 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है। हिन्दी के अध्ययन के लिए निर्धारित घंटों का ब्योरा निम्न प्रकार है :-

कक्षा IV - दो घण्टे प्रति सप्ताह (एक घण्टा दस मि०)
कक्षा V से X -तीन घण्टे प्रति सप्ताह (एक घण्टा पैंतालीस मिनट)

जो पाठ्य पुस्तकें निकटवर्ती राज्य केरल में निर्धारित हैं वही इस संघ राज्य में भी पढ़ाई जाती हैं।

<u>हिन्दी शिक्षक:</u> हिन्दी शिक्षकों की संख्या 16 है और वे दो ग्रेडों में विभाजित है। ग्रेड-I में जो हिन्दी शिक्षक हैं उनका वेतनमान रू० 170-380/- है (वही वेतन जो ग्रेजुएट शिक्षकों और भाषा शिक्षकों को दिया जाता है)। ग्रेड II में जो हिन्दी शिक्षक हैं उनका वेतन मान रू० 130/-300/- है (वही वेतन जो ग्रेड II भाषा शिक्षकों को दिया जाता है)।

ग्रेड 1 हिन्दी शिक्षकों की योग्यताएं निम्न प्रकार हैं :

ऐसे प्रशिक्षित ग्रेजुएट जिन्होंने शास्त्री या इसके समकक्ष या तदनुरूपी हिन्दी परीक्षा पास की हो।

ग्रेड II हिन्दी शिक्षकों की योग्यताएं निम्न प्रकार हैं :

एस० एस० एल० सी० या इसके समकक्ष और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की राष्ट्रभाषा, विशारद या इसके समकक्ष परीक्षा पास की हो और शिक्षक प्रशिक्षण योग्यता प्राप्त हो।

विदेशों में हिन्दी

अमेरिका में हिन्दी

- वेदप्रकाश बटुक

अमेरिकन सरकार के शिक्षा आयुक्त ने 10 मार्च, 1959 को एक विज्ञप्ति प्रसारित की, जिसमें अरबी, चीनी, जापानी, पुर्तगीज, रूसी और हिन्दी-उर्दू को अमेरिकियों के लिए अत्यावश्यक बताया गया। फ्रैंच, जर्मन, इतालवी, स्पेनी भाषाओं को भी आवश्यक बताया गया था, पर उनकी समुचित व्यवस्था अमेरिका में पहले से ही थी।

'माडर्न लैंग्वेज एसोसियेशन' की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या 1958 में केवल 8 थी। 1959 में 20, 1960 में 106, 1961 में 161, 1962 में 177 और 1963 में केवल 171 थी। यह सब तब है जब कि केन्द्रीय अनुदान के अंतर्गत समस्त स्नातकोत्तर छात्रों को हिन्दी के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। भाषा को संस्कृति, राजनीति, अर्थ व्यवस्था आदि के साथ रखकर केन्द्रीय सरकार द्वारा 1966 तक 99 कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में भाषा-क्षेत्रीय शिक्षण-केन्द्रों की स्थापना की गई। इन केन्द्रों में 15 केन्द्र भारतीय भाषाओं के शिक्षण के लिए थे। इन 99 केन्द्रों पर लगभग डेढ़

करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है, जिसमें भारतीय भाषा और क्षेत्रीय शिक्षण के लिए लगभग बीस लाख रुपये प्रति वर्ष व्यय करने की व्यवस्था है।

1969 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार कॉलेज और विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या 1968 में 349 थी। यहां यह स्मरणीय है कि हिन्दी प्रशिक्षण की व्यवस्था कुल 2149 कॉलजों और विश्वविद्यालयों में से केवल 30 शिक्षा संस्थाओं में उपलब्ध है। संस्कृत के प्रशिक्षण की व्यवस्था लगभग 12 स्थानों में उपलब्ध है, जिनमें लगभग डेढ़ सौ छात्र भाषातत्व के लिए संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं। बंगाली पांच स्थानों पर हैं, जिनमें बीस के लगभग विद्यार्थी हैं। पांच स्थानों में तमिल के अध्ययन की व्यवस्था है, जहां तीस के लगभग छात्र हैं। तेलुगु केवल तीन विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। उर्दू सात विश्वविद्यालयों में। तेलुगु के छात्रों की संख्या दस है। उर्दू के विद्यार्थी तीस से अधिक नहीं हैं।

जहां भारतीय भाषाओं के पढ़ने वाले छात्रों को सरकार पच्चीस सौ डालर (18750 रु०) की मूल छात्रवृति तथा छः सौ डालर (4500 रु०) प्रति छात्र देती है (फीस के अतिरिक्त), वहां प्रशिक्षण सामग्री तैयार करने के लिए भी प्राध्यापकों को अनुदान देती है। 30 जून, 1968 को समाप्त होने वाली रिपोर्ट के अनुसार 540 ऐसे प्रशिक्षण ग्रंथ इन अनुदानों के अंतर्गत तैयार किए थे। प्रशिक्षण सामग्री में विशेष बल कोश, प्राथमिक सामग्री, माध्यमिक तथा उच्च सामग्री पर दिया गया है। साथ ही विभिन्न भाषाओं के प्रामाणिक भाषा तात्विक अध्ययन पर भी ध्यान दिया गया है। विभिन्न भारतीय भाषाओं पर तैयार की गई पुस्तकों की संख्या थी : बंगाली 14, गुजराती 1 (प्रामाणिक व्याकरण), हिन्दी 27 – सब स्तरों पर, कन्नड़ 4, मराठी 2, मुंडा परिवार 7, पंजाबी 4, पश्तो 5, तमिल 11, तेलुगु 7, उर्दू 8, कश्मीरी 1, (प्रामाणिक व्याकरण)।

इन प्रशिक्षण ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक साहित्य, भाषा तत्व सम्बन्धी पत्र पत्रिकाओं में भारतीय भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में लेख निकलते रहते हैं। इन लेखों तथा अन्य ग्रंथों की सूचना 'जरनल ऑव एशियन स्टडीज' की वार्षिक लेख ग्रंथ सूची में प्रकाशित होती रहती है।

प्रश्न उठ सकता है कि भारतीय भाषाओं के अध्ययन करने वाले कौन हैं? प्रायः तीन प्रकार के अमेरिकन छात्र हिन्दी आदि भाषाएं लेते हैं –

(1) जो अपना ज्ञान विकसित करते हुए विश्व-नागरिकता के निमित्त अपने को तैयार करते हैं। इनमें से अधिकांश सरकारी या निजी तौर पर भारत जाएंगे (2) जिनकी सच्ची रुचि होती है, (3) वे जो क्षेत्रीय अध्ययन में विशेषज्ञ बनना चाहते हैं। इनमें से अधिकांश छात्र हिन्दी आदि को या तो मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र आदि के सहायक रूप में लेते हैं या भाषा-तात्विक अध्ययन की दृष्टि से अथवा साहित्य के अध्येता के रूप में। इस श्रेणी के अधिकांश छात्र प्राध्यापक अथवा विशेषज्ञ बनना चाहते हैं। भाषा की अनिवार्यता उन लोगों के लिए भी है, जो भारत विद्या में 'डाक्टरेट' करना चाहते हैं। स्नातकोत्तर छात्र ही अधिकांश छात्रवृत्ति प्राप्त करते हैं।

ग्रीष्म सत्र में भाषा की 'सघन' शिक्षा दी जाती है, लगभग पांच घंटे दैनिक। ग्रीष्म सत्र में एक वर्ष का पाठ्यक्रम समाप्त किया जाता है। प्रायः कई विश्वविद्यालय मिल कर एक स्थान पर ग्रीष्म शिक्षण की व्यवस्था करते हैं। इस सत्र में कश्मीरी, गुजराती आदि भी पढ़ाई जाती है।

प्रारम्भिक वर्षों में मौखिक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। बाद में साहित्य सामग्री पर। जैसे, हिन्दी में दूसरे वर्ष में प्रेमचन्द की कहानियां काफी रोचक सिद्ध हुई हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, सुदर्शन, राकेश आदि का अध्ययन भी कालान्तर में किया जाता है। सामाजिक विषयों वाले छात्रों के लिए उनके विषय की सामग्री पढ़ाई जाती है।

भारतीय साहित्य के काफी अनुवाद विगत वर्षों में हुए हैं। कुछ अनुवाद तो शोध-ग्रंथ के लिए - एम० ए० की उपाधि के निमित - हुए हैं, कुछ स्वान्त सुखाय। टैगोर, वन्द्योपाध्याय, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, प्रेमचन्द, गालिब, तुलसी आदि के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, तमिल की कविताओं के संग्रह अनुवाद रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त शिकागो विश्वविद्यालय से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'महफिल' के कई विशेषांक भी विभिन्न साहित्यिक पहलुओं को लेकर प्रकाशित हुए हैं। विगत कुछ वर्षों में लोक साहित्य पर भी ध्यान गया है। इंडियाना विश्वविद्यालय के लोक-साहित्य संस्थान के अन्तर्गत भारतीय लोक-साहित्य पर ग्रन्थों और लेखों का संदर्भ ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। ●

['नया साहित्य' से साभार]

चेकोस्लोवाकिया और हिंदी भाषा का अध्ययन

— ओदोलेन स्मेकल

चेकोस्लोवाकिया— छोटा-सा, यूरोप के ठीक हृदय से लगा हुआ देश। उसके निवासियों की संख्या एक करोड़ से कुछ अधिक है। छोटा होने पर भी सुन्दर और समृद्ध देश। प्राचीन काल से मुख्य यूरोपीय व्यापारी मार्गों पर स्थित यह देश चेक और स्लोवाक— इन दो जातियों का स्लावोनिक राष्ट्र है। बोहीमिय और मोरेविय नामक प्रदेशों में चेक भाषा बोली जाती है और स्लोवाकिया में स्लोवाक भाषा। दोनों सगी बहनें हैं, एक दूसरे के ऐसी ही निकट जैसे हिन्दी और पंजाबी। उसकी राजधानी प्राहा— अंग्रेजी में प्राग-व्लतवा नदी के दोनों तटों पर अवस्थित प्राचीन नगर है। चिरकाल से प्राहा भिन्न-भिन्न देशवासियों और पर्यटकों का ध्यान अपनी सुन्दरता तथा पुरातन स्मृति चिन्हों से आकर्षिक करता रहा है। अनेक कवि लोग, संगीतज्ञ और विचारक एक स्वर से कहते हैं कि इस नगर का कोतूहल अवर्णनीय है।

प्राहा का विख्यात चार्ल्स विश्वविद्यालय मध्य यूरोप में सबसे प्राचीन और मध्य युग में समस्त यूरोप देशों का सांस्कृतिक, कलापूर्ण और वैज्ञानिक केन्द्र रहा है। विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान विभाग में संसार की प्रायः सभी मुख्य भाषाओं की शिक्षा दी जा रही है। स्लावोनिक परिवार की चेक, स्लोवाक, रूसा, बल्गेरियाई आदि सभी भाषाएं, जर्मन परिवार,

रोमीय परिवार की/आदि आदि भाषाएं भी सिखाई जाती हैं । प्राच्य भाषाओं का अध्ययन भी नियमित रूप से चल रहा है ।

चेकोस्लोवाकिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनको विदेशी भाषाएं सीखने में रुचि है । विदेशी भाषाएं जानना कुछ विशेष निवासियों के लिए अत्यावश्यक है । कुछ लोग अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त रूसी या जर्मन, अंग्रेजी या फ्रान्सीसी जानते हैं । बहुत से चेक निवासी हैं जो विदेशी भाषाएं विनोद और ज्ञान वृद्धि ही के लिए पढ़ते हैं । पुस्तकें मूल रूप में पढ़ना उनका प्रिय ध्येय है । हमारे जीवन में शुद्ध रूप से हमारी अपनी भाषा का पूर्णतया, सार्वत्रिक प्रयोग होता है : शिक्षा का माध्यम, विश्वविद्यालय में भी, हमारी अपनी चेक भाषा है । शासनकार्य, न्यायालयों का कार्य, संसद का कार्य हमारी अपनी ही भाषा में होता है । किसी विदेशी भाषा में नहीं । यूरोप के सभी देशों में – प्रत्येक राष्ट्र में ऊपर लिखित संस्थाओं का कार्य अपनी ही (जर्मनी में जर्मन, फ्रांस में फ्रांसीसी आदि) भाषा में होता है । केवल विद्यालयों में हम अपने पड़ोसियों की भाषाओं का अध्ययन करते हैं, जैसे रूसी या जर्मन । न केवल चेकोस्लोवाकिया में, वरन् सारे यूरोपीय देशों में इग्लैंड को छोड़ कर, अंग्रेजी के पढ़ने वालों की संख्या बहुत थोड़ी है । जो अंग्रेजी बोल सकें अथवा लिख सकें उनकी संख्या तो नगण्य है । यूरोप में अंग्रेजी की अपेक्षा जर्मन अधिक प्रचलित है । विदेशी भाषा पढ़ने का अर्थ अपनी भाषा की अवहेलना नहीं होता और न होना चाहिए ।

प्राहा विश्वविद्यालय के पूर्वी प्रभाग में कई उपविभाग हैं । एक विभाग में अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाएँ सिखाई जा रही हैं, दूसरा भारत का विभाग है, अगले उपविभाग में चीनी, जापानी आदि भाषाओं का शिक्षण प्रबंध है, चौथा विभाग अर्नेबी, युजीषी भाषाओं का है और इसके अतिरिक्त हिन्देशियाई, अफ्रीकी भाषाओं का है और इसके अतिरिक्त हिन्देशियाई, अफ्रीकी भाषाओं तथा प्राचीन लिपियों के अध्ययन के लिए भी अलग विभाग है। चेकवासियों की प्राच्य भाषाएँ सीखने में अभिरुचि बहुत है । भारतीय भाषाओं के लिए यह अभिरुचि अधिक उत्कट प्रतीत होती है । हमारे छात्रों का अनुराग विशेष रूप से आधुनिक भाषाओं के प्रति प्रवृत्त हो गया है । नवीन पूर्वी भाषाओं के प्रति झुकाव – आधुनिक चेक प्राच्य विद्या का प्रधान लक्षण है । हम इसे एक आमूल परिवर्तन कह सकते हैं, क्योंकि पहले अध्ययन का ध्यान प्रायः प्राचीन भाषाओं और विद्याओं तक ही सीमित था । नवीन भाषाओं और साहित्यों की शिक्षा पिछले समय तक अवहेलित रही । यह परिस्थिति आज तक

कई यूरोपीय देशों में विद्यमान है। यूरोप के प्रधान विश्वविद्यालयों में पुरानी भाषाओं में अच्छा गवेषणा कार्य हो रहा है और पुस्तकालय अनेक दुर्लभ ग्रन्थों से सुसज्जित हैं, पर नवीन प्राच्य भाषाओं के केवल व्यावहारिक भाषा के पाठ्य-क्रम हैं। हमें इस बात पर गौरव है कि चेकोस्लोवाकिया में हम प्राचीन प्राच्य भाषाओं के साथ ही आधुनिक पूर्वी भाषाओं तथा साहित्य का खोजपूर्ण अध्ययन करने लगे हैं और उनके विस्तारपूर्ण अध्यापन कार्य पर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

इस समय विश्वविद्यालय के भारतीय विभाग में हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त संस्कृत, बंगला और तमिल भाषाओं की शिक्षा दी जा रही है। हिन्दी का पाठ्यक्रम पांच वर्ष का है। (1) व्यावहारिक हिन्दी अथवा बोलचाल का अभ्यास, (2) सरल हिन्दी व्याकरण, (3) हिन्दी व्याकरण का गहरा अध्ययन, (4) हिन्दी में अनुवाद करने का अभ्यास, (5) हिन्दी और उर्दू शैली, (6) पुराने हिन्दी साहित्य का इतिहास, (7) नवीन तथा आधुनिकतम हिन्दी साहित्य का इतिहास, (8) संस्कृत भाषा और साहित्य, (9) अन्य भारतीय भाषाओं से परिचय (वैकल्पिक भाषा), (10) अन्य भारतीय साहित्यों से परिचय, (11) भारत का इतिहास, (12) भारत के धर्म और दर्शन-शास्त्र, (13) आधुनिक भारतीय जीवन के प्रधान लक्षण। विद्यार्थी को प्रत्येक विषय की परीक्षा देनी पड़ती है। पांचवें शिक्षण वर्ष के अंत में इन सब विषयों की फिर से एक संयुक्त परीक्षा होती है। अन्तिम दो वर्षों में विद्यार्थी अपना उपाधि-निबन्ध तैयार करता है। अपना शोध-कार्य पेश करके उसे इस बात का प्रमाण देना आवश्यक होता है कि वह अपने विषय में पर्याप्त प्रवीण तथा हिन्दी में गवेषणा-कार्य करने योग्य है। इस समय तक हमारे विभाग में 11 विद्यार्थियों ने हिन्दी की शिक्षा समाप्त करके इसमें उपाधि प्राप्त की है। हिन्दी की शिक्षा चेकोस्लोवाकिया में विश्वविद्यालयीन स्तर पर सन् 1948 से दी जाने लगी है।

प्राहा विश्वविद्यालय के अतिरिक्त प्राग में एक और विद्यालय है, जहां हिन्दी भाषा की पढ़ाई हो रही है। वह विदेशी भाषाओं का विद्यालय है। उसका उद्देश्य विश्वविद्यालय की तुलना में कुछ दूसरा है। विश्व-विद्यालयीन शिक्षा का लक्ष्य, विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक गहरी, बहुमुखी और व्यापक हिन्दी की जानकारी प्रदान करना है। विदेशी भाषाओं का विद्यालय ऐसी संस्था है, जहां अपनी इच्छानुसार छोटे या बड़े, सभी, जिनको प्राच्य भाषाओं में रुचि है, उपयुक्त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके छात्र कर्मचारी, वाणिज्य अधिकारी, श्रमिक, इंजीनियर लोग, युवक

और युवतियां जो शिक्षा ज्ञानवर्धन और विनोद दोनों के लिए सप्ताह में दो बार शाम को दो घन्टों के पाठ्य काल में हिन्दी भाषा सीख लेते हैं। पूरा पाठ्यक्रम 6 वर्ष का होता है। सारी शिक्षा विशेष कर व्यावहारिक अथवा बोलचाल की हिन्दी पर केन्द्रित है। आजकल हिन्दी की तीन कक्षाएं हैं। पढ़ने वालों की संख्या सब मिलाकर पन्द्रह है। प्रचलित वर्ष तक 9 शिक्षार्थियों ने हिन्दी का पूरा पाठ्यक्रम समाप्त किया है।

इन हिन्दी के चेक प्राध्यापकों में, जो साथ ही हिन्दी पाठ्य पुस्तकें तैयार करते हैं तीन हैं— प्राध्यापक ओताकर पेतोल्दि जिनको हमारे देश में हिन्दी के प्रचार के लिये अधिक श्रेय प्राप्त है। उनके प्रयत्नों से चैकोस्लोवाकिया में हिन्दी सबसे पहले आई। डा० पेतोल्दि ने सन् 1925 में उच्च वाणिज्य महाविद्यालय में हिन्दी की शिक्षा देनी आरम्भ की। उन्होंने चेकोस्लोवाकिया में हिन्दी की पहली पाठ्य पुस्तक सन् 1930 में प्रकाशित की थी। इस पुस्तक के अनुसार दो दशकों तक हिन्दी पढ़ाई गई। दूसरे प्राध्यापक का नाम डा० वि० पोरीज्का है। वे विशेषकर हिन्दी व्याकरण तथा ऐतिहासिक व्याकरण में खोज कार्य कर रहे हैं। अब तक उन्होंने हिन्दी का व्याकरण' और पिछले वर्ष 'हिन्दी' नामक एक शोध पूर्ण पाठ्य-पुस्तक लिख कर प्रकाशित कर दी थी। तीसरा हिन्दी का चेक प्राध्यापक प्रस्तुत निबन्ध का लेखक है। दस वर्ष पूर्व मैंने हिन्दी प्रेमियों के लिए पाठ्य-पुस्तक तैयार की थी। वह तो मेरा केवल प्राथमिक प्रयास था। इसके अनुसार हम अब भी पढ़ा रहे हैं। दस वर्षीय हिन्दी अध्यापन-कार्य में अनुभव प्राप्त करके इससे अब पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हूं और दूसरी एकदम नई पाठ्य-पुस्तक के कार्य में संलग्न हूं।

पिछले सात वर्षों के प्रयत्न से मैंने हिन्दी के अध्ययन के विकास के लिए 'हिन्दी वार्तालाप' नामक पाठ्य पुस्तक को प्रकाशनार्थ तैयार किया है। वह मेरे विचार में न केवल चेक हिन्दी प्रेमियों के लिये परन्तु सारे यूरोपवासी हिन्दी हितैषियों के लिये सहायक होगी। वह इसलिये कि उसमें हिन्दी और चेक वाक्यों के साथ-साथ अंग्रेजी के भी वाक्य दिये गये हैं। भारत में रहते समय मैंने इस पुस्तक के लिये सामग्री का संचय किया था। ऊपर उल्लिखित पुस्तक में दैनिक जीवन के प्रत्येक आवश्यक विषय की चर्चा है। उसमें न केवल प्रचलित सुगम बातचीत के वाक्य, अधिक प्रयोग में होने वाले शब्द, बोलचाल के ढंग पर सामाजिक जीवन के सम्पर्क में प्रयुक्त होने वाले शिष्ट वाक्य, अपितु प्राविधिक तथा औद्योगिक क्षेत्र के लिए विशिष्ट वाक्यों की

सामग्री भी मिलती है। ऐसी पुस्तक की मेरे विचार में हमारे शिक्षार्थियों को प्रोत्साहन तथा हिन्दी बोलने में सिद्धहस्तता प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है। पुस्तक अगले वर्ष के प्रारम्भ में ही प्रकाशित होने वाली है।

चेकोस्लोवाकिया में हिन्दी के अध्ययन का स्तर और महत्व दिनों दिन बढ़ रहा है, हिन्दी के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है। चेक छात्रों को हिन्दी का समुचित प्रशिक्षण प्राप्त होता है, हिन्दी साहित्य का पठन-पाठन बड़े चाव से होता है, उसके क्षेत्र में शोध कार्य किया जाता है। हमें भारतीय हिन्दी भाषियों, हिन्दी के प्रचारकों तथा शिक्षकों और वैज्ञानिकों से निकटतर और ज्यादा सक्रिय सम्पर्क स्थापित करने की अभिलाषा है। जिस हिन्दी को भारतीय विधान में महत्वपूर्ण स्थान मिला, उसी के माध्यम से हमारे विचारों तथा अनुभवों का पारस्परिक आदान-प्रदान हो, अंग्रेजी के माध्यम से नहीं। हमें दृढ़ विश्वास है कि भारत जैसा संस्कृतियों का विशाल और ध्यान योग्य विचारों तथा प्रसिद्ध कलापूर्ण कृतियों और साहित्यिक उत्कर्ष के लिए प्रसिद्ध देश जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं से संसार भर के विचारवान लोगों को आकर्षित करता रहता है, वह देश अपनी राष्ट्रभाषा के रूप में सभी परिस्थितियों में हिन्दी को स्वीकार करेगा और उसका उपयोग करेगा। हम हिन्दी के अनेक वर्षीय अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि हिन्दी इसी समय से राष्ट्रभाषा के योग्य है, भारतीय सरकार का सारा कारोबार उसमें चल सकता है। कोई भी वास्तव में बहुमुखी निधि से समृद्ध देश आधुनिक संसार में विदेशी भाषा का उपयोग नहीं कर सकता। इसलिए हमें हिन्दी के उज्जवल भविष्य में विश्वास है। इसलिए चेकोस्लोवाकिया के अनेक शिक्षार्थी हिन्दी भाषा को आत्मसात् करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

[राष्ट्रभारती से साभार]

सोवियत रंगमंच पर रामायण

—गेन्नादी पेचनिकोव

सोवियत रंगमंच पर पिछले दस वर्षों से रामायण को प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले दस वर्षों में जब-जब रामायण का मंचीकरण किया गया तब हाल दर्शकों से खचाखच भरा रहा। इसके अलावा रामायण का प्रदर्शन टेलिविजन पर हुआ है और इसे रेडियो से भी अनेक बार प्रसारित किया गया है।

हमारे दर्शकों में अधिकांश किशोर और किशोरियां हैं, परन्तु वयस्क दर्शक भी इस नाटक को बड़े चाव से देखते हैं। इन दर्शकों में देश के कई ख्यातनामा लेखक, मंत्रिगण, संगीतकार और बड़े-बड़े कलाकार भी हैं।

मुझे रामायण का एक भी ऐसा प्रदर्शन याद नहीं, जिसमें हमारे भारतीय मित्र शामिल न हुए हों। लेकिन, इनमें से एक दिन ऐसा है, जिसे हम सभी कलाकार बड़ी श्रद्धा से याद रखते हैं। सितम्बर, 1962 के उस विशेष दिन रामायण का प्रदर्शन देखने श्री जवाहरलाल नेहरू हमारे थियेटर में पधारे थे। तब वे एक अल्पकालीन यात्रा पर मास्को आये हुए थे। समय की कमी के बावजूद उन्होंने थियेटर में आने के लिए वक्त निकाल ही लिया। मध्यांतर के समय मंच पर आकर उन्होंने अभिनेताओं से बातचीत की और उनके काम की तारीफ भी की।

रामायण नाटक के प्रदर्शन को दस वर्ष पूरे हो चुके हैं। आजकल हम इस नाटक की दसवीं जयंती मना रहे हैं। इस मौके पर हम बड़ी कृतज्ञता के साथ उन लोगों को याद करते हैं, जिन्होंने इस नाटक की तैयारी में हमें भरपूर

सहायता प्रदान की। मेरा तात्पर्य मास्को स्थित भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन और उनकी पत्नी से है। वे वस्तुतः हमारी टोली के सदस्य बन गये थे। जब हम भारतीय कपड़े पहनते हैं और जब हमारे भारतीय मित्र हमारे पहनने के तरीके को सही बताते हैं, जब वे हमारे नाटक के नायकों के भाव प्रदर्शन की प्रशंसा करते हैं और कविता की भावना में हमारी पैठ की तारीफ करते हैं तो हम उनके सुखद शब्दों को श्री मेनन की ओर मोड़ देते हैं। वे वस्तुतः सही अर्थों में हमारी कंपनी के एक सदस्य थे।

मुझे वह दिन याद है जब भारत-विद्याविद् गुसेवा (रामायण के लिए नेहरू पुरस्कार विजेत्री) पहले-पहल रामायण नाटक ले कर आयी थीं। हम इस नाटक के मंचीकरण की समस्याओं से घबरा से गये। प्राचीन भारत की इस पौराणिक गाथा की मदद से बीसवीं सदी के मनुष्यों में हम कौन से विचार और भावनाओं को उद्वेलित करना चाहते हैं? दो-तीन घंटे के कार्यक्रम में इतनी अधिक सामग्री का समावेश किस प्रकार कर सकते हैं? यूरोपीय रंगमंच पर प्रस्तुत करने में भारतीय काव्य का यह रत्न कहीं विकृत तो नहीं हो जायेगा? इनके अलावा हमें उद्वेलित करने वाले और भी कई सवाल थे। हमने इन्हें हल करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया, परंतु यह कहना दर्शकों के हाथ था कि हम अपने प्रयत्नों में सफल हुए या नहीं।

दर्शक अपनी बात कह चुके हैं। पहली घंटी की आवाज गूंजने के साथ ही हमें दर्शकों की सांसों का, उनके साथ संपर्क का एहसास होने लगता है। जब दर्शक सीता को रावण की बातें सुन कर लक्ष्मण द्वारा खींची रेखा को पार करते देखते हैं, तो 'मत जाओ, मत जाओ' की पुकार लगाने लगते हैं।

रामायण के नायक का मानववाद, सौंदर्य और ईमानदारी, अपने देश के प्रति उनका प्रेम, जन सेवा तथा जनता की स्वतंत्रता व आत्म निर्भरता की रक्षा तथा बुराई के विरुद्ध संघर्ष की उनकी आकांक्षा— इन सब बातों से सिर्फ सोवियतदर्शकों के ही नहीं, बल्कि अभिनय करने वाले कलाकारों के हृदयों में आवेगपूर्ण प्रतिक्रिया होती है। यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि इस नाटक को प्रस्तुत करने वालों में भारत के प्रति दिलचस्पी ही नहीं जगी, बल्कि भारत ने उन्हें भावाद्वेलित भी किया है। यह कोई संयोग नहीं कि रामायण नाटक में भाग लेने वाले कलाकार, वी० मेल्कोव्स्काया, जी० स्तेपानोवा, एम० लुकाशेविच और के० कोरेनेवा भारतीय महिलाओं के बारे में आयोजित एक अखिल संघीय प्रतियोगिता के पुरस्कार विजेता भी बन

गये हैं । सोवियत संघ में भारत के राजदूत श्री डी० पी० धर ने उन्हें ताजमहल की एक नन्ही प्रतिकृति भेंट की । आजकल यह प्रतिकृति हमारे थियेटर के केन्द्रीय हाल को सुशोभित कर रही है ।

भारत के विशिष्ट उत्सवों के दिनों रामायण को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हुए हमें दस साल हो चुके हैं । महात्मा गांधी की सौवीं जन्मतिथि के मौके पर नाटक के निम्नांकित शब्द हमारे रंगमंच पर गूंजे थे :

"इस पृथ्वी के रत्न सुदूर भारत में,
आबाल वृद्ध सभी रामनाम के गीत
अभी तक गाते हैं ।
धरती पर न्याय, शांति का राज्य,
तभी से रामराज्य कहलाता है ।"

['धर्मयुग' से साभार]

रूस में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन

भारत और रूस के संबंध संभवत: दो हजार वर्ष पुराने हैं। उज़्बेकिस्तान, ताज़िकिस्तान और तुर्कमानिया में की गई खुदाई में उपलब्ध अभिलेख इसके प्रमाण हैं। पिछले पांच सौ वर्षों से भारत और रूस के सांस्कृतिक संबंध लगातार बढ़ते गए हैं। रूसी विद्वान भारत में आते रहे हैं और भारतीय संस्कृति, साहित्य और विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करते रहे हैं। रूसी भाषा भारतीय भाषा परिवार में नहीं मानी जाती, किन्तु संस्कृत-ईरानी भाषा वर्ग से उसका घनिष्ठ संबंध है। वह संस्कृत के बहुत समीप है। उदाहरण के लिए कुछ रूसी शब्द देखिए। वोद (उदक), द्वारे (द्वार), त्रि, चतिरि (चतुर), द्वा, वाम्, ग्रीवा, एस्त (अस्ति), स्नोसा (स्नुषा) आदि।

सोवियत रूस में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार का आरंभ अक्टूबर 1917 से समझना चाहिए, जब वहां राष्ट्रनेता लेनिन के आदेश से महान् रूसी साहित्यकार गोर्की के नेतृत्व में प्राच्य विद्या विभाग की स्थापना हुई। इसी विभाग के अंतर्गत भारत-विद्या (इंडोलाजी) का भी अध्ययन प्रारंभ हुआ। इस प्रकार भारतीय संस्कृति, दर्शन, शास्त्र, साहित्य और भाषाओं का विधिवत् अध्ययन प्रारंभ हुआ।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद सोवियत संघ में आधुनिक भारतीय भाषाओं और साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि जागृत हुई। भारतीय भाषाओं

के प्रख्यात साहित्यकारों की कृतियों का रूसी में अनुवाद प्रारंभ हुआ। संस्कृत, पाली, हिन्दी, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध रूसी विद्वान वारान्निकोव ने (प्रेमसागर) और (रामचरित-मानस) का रूसी अनुवाद किया जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

हिन्दी लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द रूस में बहुत लोकप्रिय हैं। उनकी 16 रचनाएं अब तक रूसी में प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी के अन्य लेखकों में कामता प्रसाद गुरु, किशोरीदास वाजपेयी, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, बच्चन, दिनकर, यशपाल, जैनेन्द्र, डा० रामकुमार वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाएं रूसी में अनूदित हो चुकी हैं।

सोवियत संघ के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था है। इंस्टीट्यूट ऑफ ईस्टर्न लेंग्वेजेज़, मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी, लेनिनग्राड स्टेट यूनिवर्सिटी, ताशकन्द स्टेट यूनिवर्सिटी, इंस्टीट्यूट ऑफ पीपुल्स ऑफ एशिया, एकेडेमी ऑफ साइन्सेज़, मास्को, अज़रबेजान यूनिवर्सिटी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा मास्को, लेनिनग्राड, ताशकन्द के कुछ स्कूलों में दूसरी कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा तक हिन्दी पढ़ाई जाती है।

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के प्रख्यात लेखकों की रचनाओं के रूसी अनुवाद भी हो रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र चटर्जी, नरेन्द्रनाथ रे, भवानी भट्टाचार्य, वल्लतोल, सुब्रह्मण्य भारती, शिवशंकर पिल्लई, गुरुज़ादा अप्पाराव, मुल्कराज आनन्द, मुहम्मद इकबाल, नज़रुल इस्लाम, ख्वाजा अहमद अब्बास, अली सरदार जाफरी, कृष्ण चंदर, अमृता प्रीतम आदि की रचनाएं रूस में बहुत लोकप्रिय हुई हैं। महात्मा गांधी की आत्म कथा', श्री नेहरू लिखित 'भारत की खोज", डा० राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा तथा डॉ० राधाकृष्णन रचित "भारतीय दर्शन" आदि पुस्तकें भी अनूदित हुई हैं। शिवदान सिंह चौहान लिखित 'हिन्दी के अस्सी वर्ष', एहतशाम हुसेन लिखित 'उर्दू साहित्य का इतिहास', गोपाल हालदार लिखित 'बंगला साहित्य का इतिहास' आदि पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं। रूसी-हिन्दी, रूसी-उर्दू कोशों के अलावा, रूसी-बंगाली, रूसी-तमिल, रूसी-मराठी आदि कोश भी प्रकाशित हो चुके हैं।

सोवियत संघ में हिन्दी और अन्य भारतीय साहित्य और भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन, शोध और प्रकाशन की ओर दिनोंदिन रुचि बढ़ती जा रही है।

मारीशस में हिन्दी का व्यापक प्रचार

हिन्द महासागर के नन्हें द्वीप मारीशस में न केवल हिन्दी बोली तथा समझी जाती है बल्कि वहां अनेक वर्षों से हिन्दी साहित्य का विधिवत् सर्जन भी हो रहा है। मारीशस के साथ भारतीयों का सम्बन्ध लगभग ढाई सौ साल पुराना है। वहां बसने वाले भारतीय बंगाल, बिहार, असम, उत्तर प्रदेश, गुजरात तथा दक्षिण के विभिन्न प्रदेशों से मजदूरों के रूप में ले जाए गए थे। सम्भवतः इनमें बिहार और पूर्वी उत्तर-प्रदेश के लोगों की संख्या अधिक थी अतः वहां भोजपुरी का व्यापक प्रचार है। इन लोगों ने अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए अपनी भाषा और अपनी संस्कृति की रक्षा की है।

मारीशस में हिंदी का प्रचार बीसवीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ था। वहां सन् 1909 में आर्य समाज के कार्यकर्त्ता डा० मणिलाल ने साप्ताहिक पत्र हिन्दुस्तानी का प्रकाशन आरंभ किया था। इसके बाद पंडित आत्माराम, पं० विष्णुदयाल, स्वर्गीय पं० रामावतार तथा पं० काशीनाथ ने अनेक पुस्तकें लिख कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इस समय वहां अनेक प्रतिभाशाली लेखक हिंदी साहित्य के निर्माण में लगे हुए हैं। इनमें सर्वश्री सोमदत्त बखौरी, जयनारायणराय, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, ब्रजेन्द्रकुमार मधुकर, डा० राम प्रकाश आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

पिछले साठ वर्षों में हिंदी में अनेक पत्रिकाएं निकली और बंद हुई हैं। इस समय वहां 'आर्योदय' और 'कांग्रेस' नाम के दो साप्ताहिक पत्र, एक अर्ध-साप्ताहिक(जनता) और एक पाक्षिक पत्र (ज़माना) निकल रहे हैं।

जापान में हिंदी का अध्ययन

पूर्वी देशों में जापान के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंध प्राचीन काल से रहे हैं अत: भारत के जनमानस को समझने के लिए जापान के लोग हमेशा उत्सुक रहे हैं। भारत के जनमानस को प्रतिबिंबित करने वाली हिंदी भाषा के प्रति उनका प्रेम इस बात का प्रमाण हैं।

हिन्दुस्तानी और तमिल पढ़ाने की व्यवस्था यहां सर्वप्रथम सन् 1909 में टोकियो के विदेशी भाषा विद्यालय में की गई थी। सन् 1911 में इन दोनों भाषाओं के लिए अलग-अलग विभाग स्थापित हो गए। कुछ वर्ष बाद तमिल का अध्यापन, संभवत: उपयुक्त अध्यापक न मिल सकने के कारण रुक गया किंतु हिंदी का अध्ययन-अध्यापन अनवरत चलता रहा। हिंदी विभाग के स्नातकों में सर्वश्री मीज़ूगुची, इनूयी, ताकाहाशी गामो, ओनिशी, ओगावा और सावा को जापान में भारतीय विद्याओं के विद्वान के रूप में आज भी आदर प्राप्त है। यह बात उल्लेखनीय है कि शुरू-शुरू में वहां हिंदी और उर्दू में भेद नहीं किया जाता था और विद्यार्थी को देवनागरी तथा फारसी दोनों लिपियां सिखाई जाती थीं।

हिंदी अध्यापकों की कमी वहां हमेशा रही है। प्रारंभिक दिनों में हिंदी अध्यापन के लिए प्राय: प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों अथवा व्यापारियों की सेवाएं उपलब्ध होती थीं। टोकियो विद्यालय में आरंभिक काल में जिन विदेशी सज्जनों ने कार्य किया उनके नाम इस प्रकार हैं – सर्वश्री देवीलाल सिंह चिटरानी, अटल, हेनरी ड्रमंड, सावरकर, बेरलास तथा बदरुलइस्लाम फज़ली। द्वितीय

विश्वयुद्ध के समय विद्यालय का हिन्दुस्तानी विभाग ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी भारतीयों की गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। नेताजी सुभाषचंद्र बोस भी एक बार विभाग में पधारे थे और उनसे प्रभावित होकर विभाग के अनेक जापानी स्नातकों ने आज़ाद हिंद फौज में दुभाषिये का काम सहर्ष स्वीकार किया था।

सन् 1945 में प्रोफैसर दोइक्यूया की नियुक्ति हिंदी विभाग में हुई और हिंदी तथा उर्दू विभाग अलग-अलग हो गए। प्रो० दोइ सन् 1953-55 में विशेष अध्ययन के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रहे। सन् 1948 के बाद भारतीय दूतावास के अधिकारियों के परिवार से श्रीमती रत्नम्, श्रीमती लाल और कु० प्रेमलता ने विभाग में हिंदी पढ़ाने का काम किया। जयपुर के श्री कृपालसिंह शेखावत भी, जो जापानी चित्रकला का अध्ययन करने वहां गए थे, कुछ समय तक हिंदी का अध्यापन करते रहे। भारतीय दूतावास के सैनिक सचिव कर्नल खन्ना की पत्नी ने तो अवैतनिक रूप से सप्ताह में आठ-आठ घंटे पढ़ा कर विभाग की इतनी सेवा की कि उनका आभार प्रकट करने के लिए विभाग की ओर से प्रतिवर्ष सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी को खन्ना रजत पदक दिया जाता है। विभाग में इस समय। प्रो० दोइ के अतिरिक्त श्री तानाका तथा श्रीमती यामादा नियमित रूप से काम कर रहे हैं। श्री तानाका ने भारत में कुछ समय रह कर श्री अज्ञेय की कृतियों का विशेष अध्ययन किया है।

जापान में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का दूसरा केन्द्र ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग है। इसकी स्थापना सन् 1922 में हुई थी और लगभग प्रारंभ से ही यहां हिंदी का अध्यापन होने लगा था।

सन् 1923 से सन् 1963 तक श्री सावा हिंदी विभाग का संचालन करते रहे। उन्होंने हिंदी जापानी शब्द संग्रह तथा जापानी में हिंदी भाषा का व्याकरण भी लिखा है जो जापान में ही प्रकाशित हुआ। इस विभाग को जिन भारतीयों की सेवाएं प्राप्त हुई उनके नाम इस प्रकार हैं: सर्वश्री महादेव, अतरलाल जैन, मदन लाल, संतराम वर्मा, रामसिंह गुलेरिया, राधेश्याम खेतान तथा जगदीश दुवे। सन् 1966 में वहां डा० लक्ष्मीधर मालवीय की नियुक्ति हुई। डा० मालवीय के अतिरिक्त इस समय वहां सर्वश्री कोगा, कुवाजिमा, तानीमुरा और मिजोकामी स्थायी रूप से अध्यापक पद पर काम कर रहे हैं।

लंदन साहित्य सभा का गुरु नानक जयंती समारोह

लंदन के उपनगर साउथाल में, लंदन हिंदी साहित्य सभा की ओर से नानक जयंती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस समारोह के आयोजन का श्रेय लंदन साहित्य सभा के मंत्री श्री जगदीश मित्र कौशल तथा लंदन विश्वविद्यालय के स्कूल आफ ओरिएण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज में हिंदी के अध्यापक डा० श्याम मनोहर पांडेय को है। समारोह में भारत के लंदन स्थित उच्चायुक्त श्री अप्पा बी० पंत तथा अनेक गणमान्य व्यक्ति शामिल हुए। समारोह का उद्घाटन शौधकर्ता श्री शिवशर्मा जोशी ने किया। उन्होंने अपने शोध के आधार पर गुरु नानक की रचनाओं की भाषा को हिंदी बताया। श्रीमती जैनीफर चौधरी ने, जो अंग्रेज महिला हैं किंतु बंगला तथा हिंदी पर समान अधिकार रखती है, संत परंम्परा में गुरु नानक के योगदान पर विद्वतापूर्ण भाषण दिया।

लंदन से हिंदी पत्रिका निकालने की योजना

लंदन साहित्य सभा के महासचिव श्री जगदीश मित्र कौशल ने राजधानी में 4 फरवरी को एक संवाददाता सम्मेलन में बताया कि लंदन की हिंदी साहित्य सभा ने ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की वृहद योजना बनाई है। उनकी भारत यात्रा का मुख्य उद्देश्य इंगलैंड में हिंदी का प्रेस खोलना और एक साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करना है। उन्होंने

इस सिलसिले में राष्ट्रपति से भी भेंट की। श्री कौशल ने बताया कि लंदन स्थित हिंदी साहित्य सभा पांच लाख भारतवासियों की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र है। •

विदेशी विश्वविद्यालय तथा संस्थाएं जहां हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था है।

संयुक्त राज्य अमेरिका

1. केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले – केलिफोर्निया
2. क्लेरमोंट ग्रेजुएट स्कूल, क्लेरमोंट, केलिफोर्निया
3. हवाई विश्वविद्यालय, होनोलुलु, हवाई
4. मिन्निसोटा विश्वविद्यालय, मिन्नियपोलिस, मिन्निसोटा
5. पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय, फिलाडेलिफिया, पेन्सिलवेनिया
6. सायराक्यूस विश्वविद्यालय, सायराक्यूस, न्यूयार्क
7. विस्कौन्सिन विश्वविद्यालय, मैडीसन, विस्कौन्सिन
8. शिकागो विश्वविद्यालय, इल्लिनोयस
9. कार्नेल विश्वविद्यालय, इथाका, न्यूयार्क
10. ड्यूक विश्वविद्यालय, डरहम, नार्थ केरोलिना
11. टेक्सास विश्वविद्यालय, आस्टिन, टेक्सास
12. मिशिगन विश्वविद्यालय, ऐन आरबर, मिशिगन
13. वेक फोरेस्ट कालेज, विस्टनसेलम, नार्थ केरोलिना
14. जान्स हाफ्किन्स विश्वविद्यालय, बाल्टीमोर, मागलैण्ड
15. अमेरिकन एशियाटिक एसोसियेशन, इंडिया हाऊस, न्यूयार्क – ४
16. अमेरिकन स्कूल आफ ओरिएण्टल रिसर्च येल स्टेशन, न्यू हैवन काऊन
17. अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी, येल स्टेशन, न्यू हैवन काऊन
18. एसोसियेट्स आफ एशियन स्टडीज़ अनुआखोर, मिशिगन

श्रीलंका

1. विद्यालंकार विश्वविद्यालय, श्रीलंका
2. विद्योदय विश्वविद्यालय, श्रीलंका
3. हिन्दी प्रचार सभा, कोलम्बो

जापान

1. तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज, तोक्यो
2. तोक्यो यूनिवर्सिटी, तोक्यो
3. ओसाका यूनिवर्सिटी आफ फारेन स्टडीज़, ओसाका
4. एशियन - अफ्रिकन लिंग्विस्टिक इन्स्टीट्यूट, मिताका, तोक्यो
5. क्योतो यूनिवर्सिटी ऑफ क्योतो

इंगलैंड

1. यूनिवर्सिटी आफ कैम्ब्रिज
2. बैलबोर्न स्कूल ऑफ ला एण्ड लेंग्वेजेज, लंदन (सायंकालीन कक्षाएं)
3. स्कूल आफ ओरिएण्टल एण्ड अफ्रिकन स्टडीज़

सोवियत संघ

1. ईंस्टीट्यूट आफ ईस्टर्न लेंग्वेज़ेज, मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी
2. लेनिनग्राड स्टेट यूनिवर्सिटी
3. ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी
4. ईंस्टीट्यूट आफ पीपुल्स आफ एशिया-एकेडेमी ऑफ साइंसेज़, मास्को

पश्चिमी जर्मनी

1. फ्री यूनिवर्सिटाट, बर्लिन
2. रिहीन्श फ्रीडरिख विल्हेल्मस्, यूनिवर्सिटाट, बोन
3. जोहान वोल्फगांग, गोएटे यूनिवर्सिटाट, फ्रैंकफर्ट
4. एल्बर्ट लुडविग्स यूनिवर्सिटाट, फ्रीबर्ग
5. जार्ज आगस्ट यूनिवर्सिटाट, गोएटिंगेन
6. हेम्बर्ग यूनिवर्सिटाट, हेम्बर्ग
7. रूप्रेरूट कार्ल यूनिवर्सिटाट, हीडलबर्ग
8. क्रिस्टियान अलब्रेरूट यूनिवर्सिटाट, कील
9. कील यूनिवर्सिटाट, कील
10. जोहानेस गूटनबर्ग यूनिवर्सिटाट, मेंत्स
11. फिलिप्स यूनिवर्सिटाट, मारबर्ग
12. लुडविग मेक्सिमिलियन्स, यूनिवर्सिटाट, म्यूनिख
13. वेस्टफेलिश विल्हेल्म यूनिवर्सिटाट, म्यून्स्टर

14. यूनिवर्सिटाट डेस सारलैंडस, सारबुकेन
15. एबरहार्ड कार्ल्स यूनिवर्सिटाट, ट्यूबिगेन

विविध

आर्य प्रचार सभा, ब्रिटिश गाइना (दक्षिण अमेरिका)।
अमेरिकन इन्टरनेशनल स्कूल, काबुल (अफगानिस्तान)।
उट्रेरूट विश्वविद्यालय, उट्रेरूट (नीदरलैण्डस)।
(ब्रूसेल्स) विश्वविद्यालय, ब्रूसेल्स (बेल्जियम)।
घेंट विश्वविद्यालय, घेंट (बेल्जियम)।
लीज विश्वविद्यालय, लीज (बेल्जियम)।
लावेन कैथोलिक विश्वविद्यालय, बेल्जियम ।
पैकिंग विश्वविद्यालय, पैकिंग, चीन ।
चार्ल्स विश्वविद्यालय, प्राग (चैकोस्लोवाकिया)।
बुडापेस्ट विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट, हंगरी ।
तेहरान विश्वविद्यालय, तेहरान (ईरान)।
20-टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, मारीशस
हिन्दी प्रचारिणी सभा, लार्ज माउंटेन, मारीशस ।
वारसा विश्वविद्यालय, वारसा (पोलैण्ड)।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और अन्य सरकारी विभाग

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की योजना और 1970 की उपलब्धियां

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमारे संविधान में यह व्यवस्था की गई थी कि देवनागरी लिपि में हिन्दी भारत-संघ की राजभाषा होगी और उसके विकास के लिए प्रयत्न करना भारत सरकार का कर्तव्य होगा। इस प्रसंग में संविधान के अनुछेद 343-351 दृष्टव्य हैं। इन अनुच्छेदों में निहित उद्देश्य को पूरा करने के लिए राजभाषा आयोग की स्थापना की गई थी। आयोग की रिपोर्ट के अनुसार एक संसदीय समिति संगठित की गई। उपर्युक्त समिति द्वारा सुझाए गए कार्यों की प्रगति का पुनरीक्षण करने और उनके संबंध में आवश्यक कार्रवाई करने का दायित्व उक्त आदेश के अनुसार शिक्षा मंत्रालय को सौंपा गया था। इस दायित्व के निर्वाह के लिए शिक्षा मंत्रालय के अधीन केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नामक एक अधीनस्थ कार्यालय की स्थापना मार्च,1960 में की गई थी। अक्टूबर 1965 तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय जिन विविध कार्यों में संलग्न था उनमें से दो मुख्य कार्य - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण और विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंप दिए गए। अक्टूबर 1961 में स्थापित आयोग तब

तक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का ही एक भाग था। अक्टूबर 1965 के बाद आयोग को एक अधीनस्थ कार्यालय के रूप में संगठित कर उसे निदेशालय से पृथक कर दिया गया।

निदेशालय के महत्वपूर्ण कार्यों का विवरण इस प्रकार है:-

1. अनुवाद

(क) संहिताओं, नियम-पुस्तकों और फार्मों का अनुवाद

केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों में प्रयुक्त होने वाली सभी असांविधिक संहिताओं, नियम-पुस्तकों, नियमावलियों, विनियमावलियों, फार्मों आदि का हिन्दी अनुवाद सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग के लिए आवश्यक समझा गया और राष्ट्रपति के तारीख 27 अप्रैल, 1960 के आदेश के द्वारा यह कार्य केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय को सौंपा गया था और इस कार्य के लिये निदेशालय में एक अलग अनुवाद एकक की स्थापना की गई थी।

1968-69 में 85 नियम पुस्तिकाएं (मानक पृष्ठ 6328) और 2454 फार्म (मानक पृष्ठ 3000) अनुवाद के लिए प्राप्त हुए। इनके अतिरिक्त 11 नियम पुस्तिकाएं (मानक पृष्ठ 144) और 524 फार्मों का हिन्दी अनुवाद पुनरीक्षण के लिए प्राप्त हुआ। इस वर्ष के दौरान 66 नियम पुस्तिकाओं (6050 मानक पृष्ठ) और 1614 फार्मों (लगभग 2000 मानक पृष्ठ) के हिन्दी अनुवाद को अंतिम रूप देकर संबंधित विभागों को वापस भेजा गया। 524 फार्मों के अनुवाद का पुनरीक्षण करके उन्हें भी लौटाया गया।

1969-70 में 150 नियम पुस्तिकाएं (17546 मानक पृष्ठ) और 2996 फार्म (20,500 मानक पृष्ठ) अनुवाद के लिए प्राप्त हुए। इनमें से 125 नियम पुस्तिकाओं (1000 मानक पृष्ठ) और 3950 फार्मों के अनुवाद को अंतिम रूप देकर संबंधित विभागों को भिजवाया गया। 17 नियम पुस्तिकाएं (1608 मानक पृष्ठ) और 2117 फार्म पुनरीक्षण के लिए प्राप्त हुए। इनमें से 4 नियम पुस्तिकाओं (मानक पृष्ठ 100) और 1000 फार्मों के हिन्दी अनुवाद का पुनरीक्षण करके संबंधित विभागों को भेजा गया। बाहर के अनुवादकों से अनुवाद कराने की योजना इस अवधि में भी जारी रही।

1970-71 में 141 नियम पुस्तिकाएं और 350 फार्म (मानक पृष्ठ 16,700) अनुवाद के लिए प्राप्त हुए। इनके अलावा 10 नियम पुस्तिकाए और

फार्मों (मानक पृष्ठ 650) का हिन्दी अनुवाद पुनरीक्षण के लिए प्राप्त हुआ। इस वर्ष 70 नियमपुस्तकोंऔर 900 फार्मों (मानक पृष्ठ 8600) के हिन्दी अनुवाद को अन्तिम रूप देकर संबंधित विभागों को भिजवाया गया और 12 नियम पुस्तिकाओं और 600 फार्मों के अनुवाद का पुनरीक्षण करके संबंधित विभागों को भेजा गया।

इसके अतिरिक्त सन् 1968 से फरवरी, 1971 तक हिन्दी भाषी राज्यों के विनियोजन लेखे, वित्त लेखे तथा लेखा परीक्षा रिपोर्टों का भी अनुवाद करके भेजा गया।

2. पत्राचार पाठ्यक्रम और पाठ्य तथा संदर्भ सामग्री

अहिन्दी भाषी भारतीयों एवं विदेशियों को हिन्दी सिखाने के लिये केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने पत्राचार पाठ्यक्रम की योजना प्रारम्भ की है। वे सभी व्यक्ति जो समयाभाव तथा अन्य कारणों से किसी शिक्षण संस्था में नियमित रूप से हिन्दी नहीं सीख सकते, इस योजना की सहायता से डाक द्वारा हिन्दी सीखने की सुविधा प्राप्त कर सकेंगे।

(क) सामान्य पाठ्यक्रम:- सामान्य पाठ्यक्रम में "हिन्दी प्रवेश" (द्विवर्षीय पाठ्यक्रम) और 'हिन्दी परिचय' (द्विवर्षीय उच्च पाठ्यक्रम) रखे गए हैं। 'हिन्दी प्रवेश' का आरम्भ हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान से होता है। इसे पूरा करने के बाद छात्र को हिन्दी भाषा का सामान्य ज्ञान हो जाता है। यह पाठ्यक्रम हिन्दी भाषी क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूलों में निर्धारित हिन्दी पाठ्यक्रम के समकक्ष है। हिन्दी परिचय पाठ्यक्रम हिन्दी भाषी क्षेत्रों के हाई स्कूल स्तर के हिन्दी पाठ्यक्रम के समकक्ष होगा तथापि इसमें हिन्दी साहित्य के बदले हिन्दी भाषा के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाएगा। सामान्य पाठ्यक्रम में 15 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले अहिन्दी भाषी भारतीय प्रवेश पा सकते हैं। केन्द्रीय सरकार के वे कर्मचारी जिनके लिये गृह मंत्रालय की हिन्दी शिक्षण योजना के अंतर्गत हिन्दी पढ़ने की व्यवस्था है, और स्कूल में अनिवार्य विषय के रूप में हिन्दी पढ़ने वाले छात्र इसमें भर्ती नहीं किये जाते। विश्व के किसी भी देश में रहने वाले भारतीय अथवा अभारतीय इसमें प्रवेश पा सकते हैं।

शिक्षण पद्धति:- विद्यार्थियों को 15 दिन में एक बार पाठ और उत्तर-पत्र भेजे जाते हैं। पाठों में दिए गए प्रश्नों का उत्तर विद्यार्थी उत्तर-पत्रों

में लिखकर निदेशालय को मूल्यांकन के लिए भेजते हैं । समुचित मार्गदर्शन, निर्देश और टिप्पणी के साथ ये उत्तर-पत्र विद्यार्थियों को लौटा दिए जाते हैं । आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को अनुपूरक साहित्य, मार्गदर्शक पुस्तकें और उपचार सामग्री भेजी जाती है । निदेशालय में प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति का विस्तृत ब्यौरा सुरक्षित रहता है जिसमें विद्यार्थी का काम तथा उसे दिए निर्देशों का संक्षेप दर्ज किया जाता है ।

पठन-सामग्री की पूर्ति के लिए और मौखिक अध्यापन तथा सीधे संपर्क के अभाव को दूर करने के लिए प्रतिवर्ष देश के विभिन्न केन्द्रों में दो सप्ताह के लिए व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं । इस कार्यक्रम के लिए स्थानों का चुनाव करते समय विद्यार्थियों के संकेन्द्रण का ध्यान रखा जाता है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कक्षागत शिक्षण की व्यवस्था रहती है और विद्यार्थियों को प्रेषित पाठों को संक्षेप में दोहराया जाता है । विद्यार्थियों को वार्तालाप, उच्चारण और संभाषण का प्रशिक्षण भी इस अवधि में दिया जाता है ।

पाठ तथा संदर्भ सामग्री

(अ) विदेशियों के लिए हिन्दी प्रवेशिकाएं

विदेशी पर्यटकों तथा भारत में आने वाले विदेशी छात्रों को हिन्दी सीखने में सुविधा हो इस विचार से भाषा वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित चार प्रवेशिकाओं और एक 'डैस्क बुक' की पांडुलिपियां तैयार की जा चुकी हैं और उन्हें मुद्रणार्थ भेजा जा चुका है ।

(आ) स्वयं शिक्षक पुस्तक

हिन्दी भाषियों के लिए हिन्दीतर भारतीय भाषाएं सीखना सुगम बनाने के लिए तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं की द्विभाषी स्वयं शिक्षक पुस्तकें तैयार की गई हैं जिनमें चित्रों की पर्याप्त सहायता ली गई है । 'तमिल स्वयं शिक्षक' प्रकाशित हो चुकी है । शेष पर काम की प्रगति संतोषजनक है ।

(इ) लिंग्वा -रेकार्ड और टेप

पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करने के उद्देश्य से निदेशालय ने हिन्दी लिंग्वा-रिकार्ड

का एक सैट तैयार करने की योजना बनाई है। इस सैट के 16 रिकार्डों में 32 पाठ होंगे। 8 पाठों के 4 रिकार्ड बिक्री के लिए तैयार हैं। शेष पाठों के रिकार्ड तैयार कराने की कार्यवाही 1971-72 में पूरा करने का लक्ष्य है।

(ई) सहायक पठन सामग्री

प्रतिवर्ष विद्यार्थियों को सहायक पठन सामग्री के रूप में तीन-चार पुस्तकें निःशुल्क भेजी जाती हैं ताकि अवकाश मिलने पर वे उन्हें पढ़ सकें।

(उ) द्विभाषी वार्तालाप पुस्तकें

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में द्विभाषी वार्तालाप मार्गदर्शक पुस्तकें तैयार करने के निमित्त संगठित विशेषज्ञ समिति के निश्चय के अनुसार मूलतः हिन्दी में तैयार की गई पुस्तक की पांडुलिपि अन्तिम स्वीकृति के लिए समिति के सदस्यों को भेजी जा चुकी है।

इस वर्ष 'हिन्दी प्रवेश पत्राचार पाठ्यक्रम' का तीसरा सत्र। जुलाई, 1970 से प्रारम्भ किया गया था। इसमें प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 1300 थी। 'प्रबोध पत्राचार पाठ्यक्रम' का दूसरा सत्र जनवरी-फरवरी, 1970 से आरम्भ किया गया। इसमें प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 323 थी। केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों तथा केन्द्रीय विद्यालय के शिक्षकों के लिए 'हिन्दी प्रवीण' नामक एकवर्षीय पाठ्यक्रम इसी वर्ष प्रारम्भ किया गया है। इसमें प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 428 है। सामान्य विद्यार्थियों के लिए 'हिन्दी परिचय' नामक द्विवर्षीय उच्च पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने का प्रश्न विचाराधीन है। यदि विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त हुई तो तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, बंगला, उड़िया और असमिया भाषाओं के माध्यम से हिन्दी पत्राचार पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने का निश्चय किया जा चुका है। योजना के अन्तर्गत इस वर्ष 3 लाख रुपये के व्यय की स्वीकृति प्राप्त हुई थी। विद्यार्थियों से प्राप्त शुल्क की रकम 72210 रुपये थी जिसमें रु० 20877-00 की विदेशी मुद्रा सम्मिलित है।

3. शब्दकोश और व्याकरण :-

हिन्दी में कोशों तथा विश्वकोशों का अभाव है। इसकी पूर्ति के लिए निदेशालय में कोश निर्माण की कुछ योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। इनके अन्तर्गत कुछ काम निदेशालय में ही होंगे और शेष के लिए स्वै-

च्छिक संस्थाओं और विश्वविद्यालय आदि को आर्थिक सहायता दी जाएगी। इस अवधि में नीचे लिखे काम हाथ में लिये गये हैं :-

1. हिन्दी अंग्रेजी कोश का संशोधित और परिवर्तित संस्करण :

2. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा निर्मित अंग्रेजी-हिन्दी कोश :

3. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना द्वारा संकलित मराठी-हिन्दी शब्दकोश :

4. श्री गोविन्द प्रसाद मैती द्वारा संकलित हिन्दी-बंगला कोश :

5. हिन्दी व्युत्पति कोश :

6. हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की समान शब्दावलियों के संशोधित और परिवर्तित संस्करण :

7. त्रिभाषी कोश :

8. हिन्दी प्रयोग कोश :- फाउलर कृत 'डिक्शनरी आफ इंग्लिश युसेज' की पद्धति पर 'हिन्दी प्रयोग कोश' बनाने का प्रस्ताव चतुर्थ योजना में स्वीकृत कर लिया गया है।

9. भारतीय संस्कृति कोश (खण्ड-।)

इस कोश के लिए भारतीय संस्कृति कोश मण्डल, पूना को देय सम्पूर्ण अनुदान दिया जा चुका है। कोश का पुनरीक्षण भी हो चुका है। 1971 के अन्त तक इस कोश के मुद्रित हो जाने की आशा है।

10. हिन्दी शब्द सागर (हिन्दी संशोधित संस्करण) :-

शिक्षा मंत्रालय के आर्थिक सहयोग से काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी 10 खण्डों में शब्द सागर का संशोधित संस्करण तैयार कर रहा है। इसके 5 खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

11. आधुनिक हिन्दी का मूल व्याकरण :- (ए बेसिक ग्रामर आफ माडर्न हिन्दी)

4. हिन्दी प्रचार - प्रसार की योजनाएं

देश के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से निदेशालय में कई योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। अहिन्दी भाषी जनता में हिन्दी के प्रति रुचि उत्पन्न करने तथा देश के हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विद्वानों, अध्यापकों, छात्रों तथा अन्य नागरिकों के बीच घनिष्ठ संपर्क स्थापित करने के उद्देश्य से विनियम कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित योजनाएं कार्यान्वित की जाती हैं :-

(क) अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी लेखकों के लिए कार्य-शिविरों का आयोजन ताकि उन्हें हिन्दी गद्य और पद्य लेखन की कला का प्रशिक्षण दिया जा सके।

(ख) अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी छात्रों की अध्ययन यात्राओं का आयोजन।

(ग) हिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी विद्वानों की अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी विद्वानों की हिन्दी भाषी क्षेत्रों में व्याख्यान यात्राओं का आयोजन।

1968-69 तथा 1969-70 में इन कार्यक्रमों के लिए 70,000 रुपए की बजट व्यवस्था की गई थी किन्तु प्रशासनिक अनुमोदन के अभाव में कोई भी कार्यक्रम हाथ में नहीं लिया जा सका। 1970-71 में उक्त कार्यक्रमों के लिए मंत्रालय ने 69,400 रु० की मंजूरी दी थी। जनवरी 1971 में बंगलौर और फरवरी 1971 में गौहाटी में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी लेखकों के प्रशिक्षण के लिए एक-एक सप्ताह के कार्य-शिविर आयोजित किए गए थे। बंगलौर में आयोजित कार्य-शिविर में 25 प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया था। इनमें से आंध्र प्रदेश, केरल, गोवा, तमिलनाडु और मैसूर से प्रशिक्षणार्थी आए थे। इन्हें कविता, कहानी और एकांकी लिखने का प्रशिक्षण दिया गया था। गोहाटी में आयोजित कार्य-शिविर में महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा से प्रशिक्षणार्थी आये थे।

व्याख्यान यात्राएं :

अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के 4 हिन्दी विद्वानों ने और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के 2 हिन्दी विद्वानों ने क्रमशः हिन्दी भाषी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की व्याख्यान यात्राएं कीं।

अनुसंधानकर्ताओं की यात्राएं :

पंजाब, गुजरात, केरल, महिला विश्वविद्यालय, बंबई और अन्नमलाई विश्वविद्यालयों से 20 अहिन्दी भाषी विद्यार्थियों ने इस योजना का लाभ उठाया और इनमें से प्रत्येक विद्यार्थी को रु० 350 यात्रा अनुदान दिया गया था ताकि वे हिन्दी क्षेत्रों में स्थित विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों में जाकर अपने शोध कार्य में सहायता प्राप्त कर सकें।

5. हिन्दी परीक्षाओं को मान्यता

भारत सरकार के अधीन विभिन्न नौकरियों में प्रवेश की योग्यता स्थिर करने के विचार से शिक्षा मंत्रालय ने विभिन्न स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं द्वारा संचालित हिन्दी परीक्षाओं को 1960 में 3 वर्ष के लिए मान्यता दी थी। 1963 के अंत में उन परीक्षाओं की मान्यता आगे बढ़ाने के संबंध में विचार किया गया था और अधिकांश परीक्षाओं की मान्यता दिसंबर, 1966 तक बढ़ा दी गई थी। 21-12-66 के बाद मान्यता बढ़ाने के प्रश्न पर मंत्रालय ने पुनः विचार किया था और इस संबंध में जांच के लिए नियुक्त दो समितियों की सिफारिश पर मान्यता की अवधि आगे बढ़ाई गई है।

6. अहिन्दी भाषी राज्यों के हिन्दी लेखकों और कवियों को पुरस्कार

अहिन्दी भाषी राज्यों के हिन्दी लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से 1963-64 में यह पुरस्कार योजना प्रारंभ की गई थी। यह पुरस्कार, कहानी, नाटक, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, निबंध और कविता की पुस्तकों को दिए जाते हैं। प्राप्त रचनाओं का मूल्यांकन मंत्रालय द्वारा मनोनीत 3 विद्वानों की एक समिति करती है। 28 मार्च, 1970 तक उक्त योजना के अंतर्गत 5 प्रतियोगिताएं क्रमशः 1961-62, 1966-67, 1967-68, 1968-69, 1969-70 में आयोजित की जा चुकी थीं। 1970-71 के पुरस्कार विजेताओं की सूची और पुरस्कृत रचनाओं के नाम नीचे दिए जा रहे हैं :-

लेखक	मातृभाषा	पुरस्कृत रचना
श्री तरुण आजाद डैका	असमिया	कवच
श्री परेशनाथ बैनर्जी	बंगला	भारत-रत्न
डा० चन्द्रशेखरन नायर	मलयालम	देवयानी
श्री कृ०गो०वानखड़े गुरुजी	मराठी	सन्त नामदेव

लेखक	मातृभाषा	पुरस्कृत रचना
श्री पी० वी० नरसिंह राव	तेलुगु	सहस्त्र कण
डा० पी० जयरामन	तमिल	कवि श्री सुब्रह्मण्य भारती
श्री हरिकृष्ण कौल	कश्मीरी	इस हम्माम में
श्री पी०वी० वज्रभट्टी	कन्नड़	मिट्टी के फूल
डा० के० मुदन्ना	कन्नड़	नील कमल
श्री रवीन्द्र कालिया	पंजाबी	नौ साल छोटी पत्नी
डा० पी० आदेश्वर राव	तेलुगु	अन्तराल

7. साहित्यिक कृतियों की शब्दानुक्रमणिकाएं

वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करते समय इस बात का अनुभव किया गया था कि हिन्दी के शब्द भंडार का भलीभांति आलोड़न करना जरूरी है ताकि पारिभाषिक संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले उपयुक्त शब्दों को संगृहीत किया जा सके। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हिन्दी के महत्वपूर्ण ग्रंथों की शब्दानुक्रमणिकाएं तैयार करने की योजना द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में प्रारंभ की गई थी। यह भी विचार किया गया था कि ये शब्दानुक्रमणिकाएं आगे चल कर हिन्दी के उच्च कोटि के कोश तैयार करने में सहायक होंगी। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस योजना के अन्तर्गत 12 शब्दानुक्रमणिकाएं तैयार हो चुकी हैं जिनमें से 4 मुद्रणाधीन हैं और शेष 6 के मुद्रण की व्यवस्था मुख्य नियंत्रक के परामर्श से की जा रही है।

8. सर्वसंग्रह ग्रंथ :

हिन्दी के नए पुराने प्रमुख कवियों और लेखकों की कृतियों को काल-कवलित होने से बचाने के लिए और उन्हें एक संग्रह के रूप में सुलभ कराने के उद्देश्य से द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में सर्वसंग्रह ग्रंथों के संकलन की योजना प्रारंभ की गई थी। इस योजना के अंतर्गत रहीम, गंग और नागरी दास के सर्व-संग्रह की पांडुलिपियां तैयार की जा चुकी हैं। गंग कृत रचनाओं का सर्वसंग्रह मुद्रित हो चुका है। शेष दो मुद्रणाधीन हैं।

फोर्ट विलियम कालेज के लेखक के सर्वसंग्रहों तथा रामप्रसाद निरंजनी कृत 'योग वाशिष्ठ' की पांडुलिपियां आवश्यक संशोधन के लिए कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा को भेजी गई थीं। विद्यापीठ के निदेशक डा० माता प्रसाद गुप्त के निधन के फलस्वरूप उक्त पांडु-लिपियों में अपेक्षित संशोधन नहीं हो पाया। चूंकि स्वर्गीय डा० विश्वनाथ प्रसाद

के विचार से यह कार्य संतोषजनक ढंग से संपन्न हो चुका था अत: उनके विचारों को मानते हुए निदेशालय ने पांडुलिपियां वापस मंगवा लीं और कार्य को संतोष-जनक मान लिया है। इस कार्य के लिए 12,830 रुपए की राशि अनुमोदित की गई थी। इसमें से 6,415 रुपए पहली किस्त के रूप में विद्यापीठ को दिए गए थे। सरकार ने निर्णय लिया है कि विद्यापीठ को दूसरी किस्त न दी जाए क्योंकि पहली किस्त के रूप में प्रदत्त राशि से ही यह कार्य पूरा हो गया है।

9. अष्टांग संग्रह और भारतीय वास्तु-शास्त्र का प्रकाशन

हिन्दी में तकनीकी और वैज्ञानिक ग्रंथों के प्रकाशन को प्रोत्साहन देने के विचार से निदेशालय समय-समय पर वित्तीय सहायता देता रहा है। इसी योजना के अन्तर्गत श्री अत्रिदेव विद्यालंकार द्वारा संपादित 'चिकित्सा शास्त्र' की पुस्तिका 'अष्टांग संग्रह' का प्रकाशन किया गया था और उसके लिए संपादक को 3,000 रुपए अनुदान स्वरूप दिए गए थे।

इसी प्रकार डा० डी० एन० शुक्ल द्वारा अनूदित और संपादित 'भारतीय वास्तु शास्त्र' के 6 खंडों के प्रकाशन का प्रस्ताव 1959 में स्वीकृत किया गया था। 1965-66, 1966-67 और 1967-68 तक डा० शुक्ल के 'भारतीय वास्तु-शास्त्र' के अन्तर्गत 'भवन निवेश' के 2 खंड, 'प्रसाद निवेश' के 2 खंड और 'यंत्र चित्रादि शिल्प' के 2 खंड प्रकाशित हो चुके हैं। डा० शुक्ल को अनुदान की राशि चुका दी गई है।

10. हिन्दी टाइपराइटर कुंजीपटल का मानकीकरण

भारत सरकार द्वारा नियुक्त हिन्दी टाइपराइटर समिति ने 1962 में हिन्दी टाइपराइटर के मानक कुंजीपटल को अंतिम रूप दिया था। इसी बीच महाराष्ट्र सरकार ने मराठी का अनंतिम देवनागरी कुंजीपटल तैयार कराया था। एक ही लिपि अर्थात् देवनागरी के लिए दो भिन्न-भिन्न कुंजीपटल स्वीकार करना वांछनीय नहीं समझा गया। अत: 1963 में भारत सरकार और महाराष्ट्र सरकार के प्रतिनिधियों की दिल्ली में बैठक हुई। विस्तृत चर्चा के बाद देवनागरी कुंजीपटल को अंतिम रूप दे दिया गया था। उक्त कुंजीपटल को भारत सरकार द्वारा दिनांक 15-3-64 को एक प्रेस विज्ञप्ति में प्रेषित किया गया था। इस कुंजीपटल के संबंध में विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सुझावों को विशेषज्ञ समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था। समिति से प्राप्त सुझावों के अनुसार आवश्यक संशोधन किए गए थे और 3 फरवरी, 1969 को प्रकाशित एक प्रेस विज्ञप्ति

द्वारा संशोधित कुंजीपटल की घोषणा कर दी गई थी। 1969 में घोषित टाइपराइटर कुंजीपटल के संबंध में समिति का ध्यान दो बातों की ओर दिलाया गया है। एक तो यह कि इस कुंजीपटल के आधार पर बने टाइपराइटर मशीनों पर कोई-कोई मात्राएं और संयुक्त अक्षर एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। अतः विशेषज्ञ समिति की बैठक में यह निश्चय किया गया था कि हिन्दी टाइपराइटर में प्रयुक्त होने वाले वर्णों के स्वरूप आदि के सम्बन्ध में सरकार टाइपराइटर निर्माताओं को खुली छूट दे ताकि एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा रहने पर वर्णों के स्वरूप को अधिकाधिक सुन्दर और सुस्पष्ट बनाने की क्रिया में कोई बाधा उपस्थित न हो।

टाइपराइटर की कुंजियों पर उँगली संचलन संबंधी एक रंगीन चार्ट निदेशालय में तैयार किया गया है। समिति ने सुझाव दिया है कि यह चार्ट सचिवालय प्रशिक्षणशाला द्वारा मुद्रित करा लिया जाए और इसका वितरण सरकारी कार्यालयों में किया जाए ताकि नये सिरे से हिन्दी टाइपराइटिंग आरंभ करने वाले टाइपकारों को सुविधा हो।

11. हिन्दी टेलिप्रिंटर कुंजीपटल

हिन्दी टेलिप्रिंटर कुंजीपटल को 1966 में अंतिम रूप से स्वीकार करने के बाद 29 मार्च, 1969 को संचार विभाग के राज्य मंत्री ने एक बैठक में यह विचार व्यक्त किया था कि हिन्दी टेलिप्रिंटर कुंजीपटल को देश की विभिन्न भाषाओं के उपयुक्त बनाने का काम हाथ में लिया जाए। उन्होंने अपने प्रारंभिक वक्तव्य में कहा था कि विभिन्न भारतीय भाषाओं, समाचार-पत्रों आदि के प्रतिनिधियों ने संचार मंत्रालय से निवेदन किया है कि देवनागरी टेलिप्रिंटर के वर्तमान कुंजीपटल में ऐसा परिवर्तन किया जाए कि हिन्दीतर भाषाओं के माध्यम से अपना कामकाज करने वालों को भी इस टेलिप्रिंटर से सहायता मिल सके।

विचार-विमर्श के बाद यह तय किया गया था कि देवनागरी टेलिप्रिंटर के वर्तमान कुंजीपटल में थोड़ा संशोधन कर दिया जाए और उसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों का समावेश भी किया जाए ताकि हिन्दीतर भारतीय भाषाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस कार्य के लिए गठित उपसमिति की सिफारिशों पर 14 अक्तूबर, 1970 को हिन्दी सलाहकार की अध्यक्षता में एक बैठक हुई और यह निर्णय किया गया था कि उपसमिति की सिफारिशों को यथावत् स्वीकार कर लिया जाए। बैठक में यह निर्णय भी किया गया था कि संचार विभाग द्वारा एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की

जाए जिसमें यह स्पष्ट किया जाए कि संशोधित कुंजीपटल को लेकर बनाए गए देवनागरी दूरमुद्रक द्वारा सभी भारतीय भाषाओं में देवनागरी लिपि के माध्यम से संदेश भेजे जा सकते हैं ।

12. आशुलेखन प्रणाली का मानकीकरण

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए मानक आशुलेखन प्रणाली तैयार करने के उद्देश्य से हिन्दी तथा 9 प्रमुख भारतीय भाषाओं के ध्वनि विश्लेषण की एक योजना तैयार की गई थी। इसे 'मानक आशुलिपि' शीर्षक पुस्तिका में संकलित कर प्रकाशित किया जा चुका है और इसकी प्रतियां विभिन्न मंत्रालयों, राज्य सरकारों, संस्थाओं तथा विशेषज्ञों को भेजी जा चुकी हैं ताकि यथोचित परिवर्तन के साथ इसे अन्य भारतीय भाषाओं के लिए अपनाने की कार्यवाही की जा सके ।

13. क्षेत्रीय कार्यालय :

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के हिन्दी क्षेत्रीय कार्यालय कलकत्ता और मद्रास में कार्य कर रहे हैं। इनकी स्थापना 1962 में की गई थी। कलकत्ता स्थित क्षेत्रीय कार्यालय के कार्य-क्षेत्र में पूर्वांचल के राज्य यथा-बंगाल, उड़ीसा, असम तथा मणिपुर, त्रिपुरा, नेफा, नागालैंड आदि प्रदेश हैं। मद्रास स्थित क्षेत्रीय अधिकारी के कार्य क्षेत्र में 4 राज्य तमिलनाडु, मैसूर, केरल और आंध्र प्रदेश हैं ।

क्षेत्रीय कार्यालय इस वर्ष अपने लिए निर्धारित हिन्दी प्रचार तथा प्रसार के कार्य करता रहा। क्षेत्रीय अधिकारी ने पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, असम और मणिपुर की स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं का निरीक्षण किया और उन्हें मार्ग-दर्शन दिया ताकि वे हिन्दी के विकास की योजनाओं को भली-भांति कार्यान्वित कर सकें। कुछ संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम को स्वीकृत किया गया और उन्हें मंत्रालय द्वारा आर्थिक सहायता दिलाई गई।

इस अवधि की विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि संस्थाओं को उनके अनुदान की मंजूरी वर्ष के प्रथम चरण में ही प्राप्त हो गई और कुल अनुदान की 25 प्रतिशत राशि उन्हें सौंप दी गई। परिणाम यह हुआ कि अपने कार्य-क्रम चलाने में उन्हें जिन आर्थिक कठिनाईयों का अनुभव पिछले वर्षों में हुआ करता था वह इस वर्ष नहीं हुआ।

इस अवधि में अन्य कुछ अध्यापन केन्द्र और हिन्दी टंकण प्रशिक्षण केन्द्र भी स्थापित किए गए। गोहाटी में हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए। भुवनेश्वर हिन्दी शिक्षण महाविद्यालय के छात्रों की प्रवेश संख्या 40 से बढ़कर 60 हो गई। दीमापुर (नागालैंड) में वर्तमान हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र को चालू रखने की कार्यवाही की गई।

मद्रास के क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा इस वर्ष नीचे दिये हुए विशेष कार्य किए गए :-

1. विधावनम् पब्लिक ट्रस्ट, पमारू (आंध्रप्रदेश) को भाषण प्रति-योगिता, वाद-विवाद, नाटक आदि कार्यक्रमों के लिए स्वीकृति दी गई।

2. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, तिरुचि द्वारा 1968-69 में एक अध्यापक वाले विश्वविद्यालयों में अध्यापक नियुक्त करने की स्वीकृति दी गई।

3. कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़ को पुस्तकों की खरीद के लिए स्वीकृति दी गई।

4. हिन्दी प्रचार सभा निधील को पहले 6 मास तक हिन्दी कक्षाएं चलाने की स्वीकृति दी गई थी। उनके कार्य को संतोषजनक पाकर यह अवधि 10 मास तक के लिए बढ़ाई गई और संस्था को तद्नुसार अनुदान दिया गया।

5. 27 और 28 जनवरी, 1969 को शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव ने मद्रास का दौरा किया और मद्रास के सदर्न लैंग्वेज बुक ट्रस्ट तथा अन्य प्रमुख प्रकाशकों के साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं के विकास कार्यक्रम के संबंध में चर्चा की। साहित्यिक संस्थाओं और लेखक संघों के साथ भी उनकी चर्चायें हुईं।

6. जून, 1969 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित विद्यार्थी मेले में क्षेत्रीय अधिकारी ने सक्रिय सहयोग दिया।

7. वित्त मंत्रालय के उप वित्त सलाहकार और शिक्षा मंत्रालय

के अवर सचिव ने जून के तीसरे सप्ताह में अपनी 5 दिन की यात्रा में तिरुचि और कोचीन हिन्दी शिविर संस्थाओं का निरीक्षण किया।

8. छात्रों और परीक्षार्थियों ने परीक्षा के प्रमाण-पत्र न दिये जाने आदि की शिकायत परीक्षा संस्थाओं के विरुद्ध की थी। क्षेत्रीय अधिकारी ने शिकायत की जांच कर के उनका समाधान किया।

14. भाषा त्रैमासिक

त्रैमासिक भाषा का प्रकाशन सन् 1961 में आरम्भ हुआ था। यह पत्रिका हर वर्ष मार्च, जून, सितंबर और दिसंबर में प्रकाशित होती है। 1964-65 के अंत तक भाषा त्रैमासिक के 16 सामान्य अंक तथा दो विशेषांक 'शांति-रक्षा' और 'द्विवेदी स्मृति' विशेषांक प्रकाशित किए जा चुके थे। 1968-69 में 'लिपि विशेषांक' प्रकाशित किया गया। 1969-70 में गांधी शताब्दी समारोह के अवसर पर 'गांधी विशेषांक' प्रकाशित किया गया। इसमें राष्ट्रपिता के भाषा सम्बन्धी विचार संगृहीत किए गए। साथ ही, महात्मा गांधी या उनकी विचारधारा से प्रेरित प्रत्येक भारतीय भाषा की एक-एक कविता देवनागरी लिप्यंतरण तथा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की गई।

यों त्रैमासिक में भारतीय भाषाओं की समस्याएं, भाषा और व्याकरण, शब्दश्री, स्फुट विचार, द्वाभा, स्रोतस्विनी, भारतीय भाषाविद्, भारतीय साहित्य आदि स्तम्भों के अंतर्गत सामग्री प्रकाशित की जाती है।

'भाषा' त्रैमासिक में विभिन्न भारतीय भाषाओं के भाषा-वैज्ञानिक पक्ष और उनके साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विशेष बल दिया जाता है। इस दृष्टि से यह अपने प्रकार की विशिष्ट पत्रिका है तथा संदर्भ और अनुसंधान की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है।

15. संकलन

'भाषा' त्रैमासिक के 'द्वाभा' तथा स्रोतस्विनी स्तंभों में प्रकाशित कृतियों को 'संकलन' शीर्षक से एक अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसमें प्रतिष्ठित भारतीय साहित्यकारों की कृतियां हिन्दी से हिन्दीतर भाषाओं में तथा हिन्दीतर भाषाओं से हिन्दी में किए गए अनुवाद सहित प्रकाशित की गई हैं।

'भाषा' त्रैमासिक के 'भारतीय भाषाविद्' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित लेखों का संग्रह 'संकलन-2' शीर्षक से पुस्तककार प्रकाशित किया जा चुका है।

16. हिन्दी पुस्तकालय

शिक्षा मंत्रालय में हिन्दी पुस्तकालय की स्थापना 1951 में की गई थी। 1960 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना के बाद पुस्तकालय का स्थानांतरण निदेशालय में हो गया था। 1952 में इस पुस्तकालय में केवल 1710 पुस्तकें थी। मार्च 1965 में पुस्तकों की संख्या बढ़कर 26,833 हो गई थी। 1 दिसंबर, 1967 में निदेशालय और शब्दावली आयोग के विभाजन के फलस्वरूप निदेशालय के पुस्तकालय में 15000 पुस्तकें शेष थी। 1968-69 में पुस्तकों की संख्या 17000 हो गई थी। 1968-69 में पुस्तकालय के लिए 20000 रुपए की बजट व्यवस्था थी। 1044 नई पुस्तकों के अतिरिक्त 31 पत्रिकाए और 6 समाचार-पत्र पुस्तकालय में मंगाए जाते थे।

1970-71 में हिन्दी पुस्तकालय के लिए 15,000 रुपए की बजट व्यवस्था थी। पुस्तकालय में उपलब्ध कुल ग्रंथों की संख्या 19250 हुई। 42 पत्र-पत्रिकाएं पुस्तकालय में मंगाई गईं। वर्तमान हिन्दी पुस्तकालय को हिन्दी संदर्भ के लिए आदर्श पुस्तकालय के रूप में विकसित करने के लिए एक रूपरेखा भी इस वर्ष तैयार की गई।

हिन्दी सलाहकार समिति के निर्णय के अनुसार हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में कोशों और विश्वकोशों की भी संदर्भिका तैयार की गई। हिन्दी में उपलब्ध संपूर्ण भारतीय पुस्तकों और सहायक पुस्तकों की विषयवार सूची तैयार करने का कार्य इसी वर्ष हाथ में लिया गया था। यह सूची 'साहित्येतर हिन्दी ग्रंथ' शीर्षक से 3 खंडों में साइकलोस्टाइल कराई गई है।

17. हिन्दी सूचना केन्द्र

भारत संघ की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप हिन्दी भाषा को सीखने और उसके साहित्य आदि के संबंध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए देश-विदेश में पर्याप्त रुचि जागृत हुई है। फलतः एक ऐसी एजेंसी की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के संबंध में तथा उसके प्रचार, विकास और समृद्धि के लिए चल रहे विविध कार्यक्रमों के बारे में प्रामाणिक जानकारी दे सके।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय अपनी स्थापना के समय से ही हिन्दी भाषा और साहित्य आदि के संबंध में जनता को प्रामाणिक जानकारी देता रहा है किन्तु सूचना-सेवा की मांग लगातार बढ़ने पर शिक्षा मंत्रालय के आदेशानुसार केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में हिन्दी सूचना केन्द्र नामक एक पृथक एकक की स्थापना सितंबर, 1966 से की गई।

सूचना केन्द्र नीचे लिखे विषयों से संबंधित सूचनाओं का संकलन और वितरण करता है।

(1) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के कार्यालयों में तथा सरकारी सहायता से चलने वाले संगठनों में हिन्दी का उत्तरोत्तर प्रयोग ;

(2) राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों में प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी का(अनिवार्य/ऐच्छिक विषय के रूप में) अध्ययन ;

(3) भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन की सुविधाएँ, अध्यापकों की योग्यता, अनुभव आदि का विवरण ;

(4) हिन्दी भाषा और साहित्य के विषय में विभिन्न विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में हो रहे शोधकार्य तथा अध्ययन-अध्यापन व्यवस्था का विवरण ;

(5) स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के संबंध में विविध जानकारी जैसे संस्था की स्थापना, कार्यकलाप, परीक्षाएँ और उनकी मान्यता, पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों का विवरण ;

(6) हिन्दी के पुस्तकालय, समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकाओं के संबंध में विवरण;

(7) विदेशों में हिन्दी का प्रचार करने वाली संस्थाओं तथा हिन्दी अध्ययन केन्द्रों के सम्बन्ध में जानकारी ;

(8) देवनागरी लिपि के मानकीकरण तथा उसके यांत्रिक प्रयोग के क्षेत्र में हो रही प्रगति।

सूचना केन्द्र छात्रों, अध्यापकों, शोधार्थियों तथा अन्य जिज्ञासुओं द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर भी देता है जैसे विषय-विशेष पर उपलब्ध हिन्दी ग्रंथों का विवरण, लेखक-

विशेष की रचनाओं का विवरण, हिन्दी के भाषा वैज्ञानिक पक्षों की जानकारी, शब्दों की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय, साहित्यिक विधाओं की अद्यतन जानकारी ।

सामान्यत: पत्रों के उत्तर एक सप्ताह के भीतर दे दिये जाते हैं । जिज्ञासु सूचना केन्द्र में स्वयं आकर अथवा टेलीफोन पर तत्काल सूचना प्राप्त कर सकते हैं । सूचना केन्द्र में स्वयं विविध स्रोतों से प्राप्त सामग्री को सम्पादन कर जनसाधारण की जानकारी के लिए 'हिन्दी समाचार जगत' पाक्षिक में प्रकाशित किया जाता रहा है । अब इस जानकारी का संकलन 'हिंदी वार्षिकी' नामक वार्षिक प्रकाशन में करने का निश्चय किया गया है।

18. <u>देवनागरी लिपि-मानकीकरण, परिवर्धन और प्रयोग</u>

देवनागरी लिपि को अखिल भारतीय लिपि का स्वरूप और क्षमता देने के विचार से अन्य भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए नये संकेत चिह्नों की आवश्यकता अनुभव की गई थी । इसके लिए शिक्षा मन्त्रालय ने एक भाषाविद् समिति संगठित की थी । 1963 - 64 में इस समिति ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की । यह रिपोर्ट विभिन्न राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं और इस विषय में रुचि लेने वाले विभिन्न व्यक्तियों को भेजी गई और उनसे अनुरोध किया गया कि वे इस सम्बन्ध में अपने सुझाव दें । विभिन्न सूत्रों से प्राप्त सम्मतियों और सुझावों को समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए 1964-65 में समेकित किया गया था । समिति ने सभी सुझावों पर विचार करके 1965 - 66 में अपनी अन्तिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं । ये सिफारिशें अन्ततः भारत सरकार ने स्वीकार कर लीं । सर्वसाधारण को इन सिफारिशों से परिचित कराने के उद्देश्य से 'परिवर्धित देवनागरी' नामक पुस्तिका प्रकाशित की गई । अखिल भारतीय लिपि की आवश्यकता और भाषाविद् समिति की सिफारिशें तुलनात्मक वर्णमाला चार्टों के साथ इस पुस्तिका में प्रकाशित की गई थीं । भारत सरकार द्वारा स्वीकृत परिवर्धित देवनागरी के हर पहलू पर विचार करने के उद्देश्य से 20 और 21 अक्तूबर, 1967 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में एक संगोष्ठी का आयोजन भी किया गया । परिवर्धित देवनागरी को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से सभी पहलुओं पर विचार करते हुए अन्ततः जो संकल्प स्वीकृत हुआ उसमें की गई सिफारिशों को कार्यान्वित

करने के लिये निदेशालय ने द्विभाषी साहित्य के प्रकाशन की एक योजना तैयार की। इस योजना से सम्बन्धित कार्य अब भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर को सौंप दिया गया है।

देवनागरी लिपि और परिवर्धित देवनागरी सम्बन्धी निम्नलिखित पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं :-

1. स्टैंडर्ड देवनागरी (अंग्रेजी)
2. परिवर्धित देवनागरी (हिन्दी)
3. मानक देवनागरी (हिन्दी)
4. परिवर्धित देवनागरी चार्ट (हिन्दी)
5. मानक देवनागरी चार्ट (हिन्दी)
6. देवनागरी थ्रू द एज़िज (अंग्रेजी)

'देवनागरी का क्रमिक विकास' और 'परिवर्धित देवनागरी' (हिन्दी) का दूसरा संस्करण मुद्रणाधीन है।

'परिवर्धित देवनागरी' के अंग्रेजी संस्करण के मुद्रण की व्यवस्था भी की जा रही है।

19. आदिवासी और अन्य उप भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि की जाँच और विकास

विभिन्न आदिवासी बोलियों और उपभाषाओं की ध्वनियों को देवनागरी में व्यक्त करने के लिए प्रतीकों और चिह्नों को अन्तिम रूप देने के विचार से एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया था। कोंकणी और भीली भाषाओं की उप समिति की बैठकों के अलावा इस समिति की दो और बैठकें नई दिल्ली में हो चुकी हैं। पहली बैठक 25 और 26 नवम्बर, 1968 को हुई। इसमें निम्नलिखित निर्णय किये गये :-

(1) चुनी हुई भाषाओं की परीक्षा तथा उनकी विशिष्ट ध्वनियों के लिए देवनागरी में अतिरिक्त संकेत चिन्हों का समावेश (2) इन भाषाओं में उपलब्ध साहित्य का संचयन तथा अनुवाद और प्रकाशन (3) साहित्य संकलन (4) इन भाषा और क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए व्याकरण और श्रेणी बद्ध सामग्री का प्रणयन।

27 और 28 जनवरी, 1969 को विशेषज्ञ समिति की दूसरी बैठक हुई। इस बैठक में कोंकणी, संथाली, हो, कुरुख, मुंडारी, सदनी, भीली, गोंडी तथा नेफा की बोलियों पर तैयार किए गए विवरण पर विचार किया गया। इन बोलियों के लिए देवनागरी में नये संकेत चिह्नों का समावेश करने के लिए आवश्यक अन्वेषण कार्य पूरा हो चुका है किन्तु उसे अंतिम रूप अभी नहीं दिया जा सका है। यह कार्य अब भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर को सौंप दिया गया है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग की स्थापना 1960 के राष्ट्रपति के आदेश के अधीन की गई थी। इसके प्रमुख कार्य ये हैं:-

1 - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का सर्वेक्षण
2 - इस शब्दावली का विकास और समन्वय सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण
3 - हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावलियों का अनुमोदन करना, तथा
4 - इन शब्दावलियों के आधार पर अनुवाद तथा मौलिक रचना द्वारा विश्वविद्यालय स्तर पर मानक ग्रन्थों तथा पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण।

आयोग ने उपलब्ध शब्दावली का पुनरीक्षण और समन्वय करते हुए भारतीय भाषाओं में समान रूप से उपयोग के लिए अपनी शब्दावली का निर्माण किया। उसने देश भर के सुप्रसिद्ध भाषाविदों के सहयोग से शब्दावली के निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण किया।

आयोग की शब्दावलियां :

इस समय तक विज्ञान तथा मानविकी के विभिन्न विषयों में आयोग 21 शब्दावलियां प्रकाशित कर चुका है। इनमें दो लाख से अधिक शब्दों का समावेश किया गया है। सैन्य विज्ञान की शब्दावली प्रेस में है।

अब तक विभिन्न विषयों के लगभग 3,97,250 पारिभाषिक शब्द बनाए जा चुके हैं और इनमें से 3,59,500 शब्दों को अन्तिम रूप दिया जा चुका है। इसका ब्योरा नीचे दिया जा रहा है :-

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के क्षेत्र में जनवरी 1971 तक हुए कार्य का सारांश

विषय	वर्ष भर में बनाए गए शब्द	वर्ष भर में जितने शब्दों को अंतिम रूप दिया गया	अब तक बने कुल शब्द	अब तक जितने शब्दों को अंतिम रूप दिया गया।
1	2	3	4	5
कृषि	--	1447	8053	7500
नृतत्व विज्ञान (भौतिक)	756	756	4806	4806
नृतत्व विज्ञान (सामाजिक)	--	--	5825	5825
वनस्पति विज्ञान	--	--	13272	13272
रसायन	--	1864	27680	27680
विभागीय	1200	1200	10204	6464
रक्षा	9398	6610	10580	10580
अर्थशास्त्र	--	--	6380	6380
वाणिज्य	1600	1600	5620	5620
शिक्षा	--	--	6079	6079
ललित कलाएं,	--	--	--	--

विषय	वर्ष भर में बनाए गए शब्द	वर्ष भर में जितने शब्दों को अंतिम रूप दिया गया ।	अब तक बने कुल शब्द	अब तक जितने शब्दों को अंतिम रूप दिया गया ।
1	2	3	4	5
मुद्रण और पत्रकारिता	928 --	928 --	9686	9686
भूगोल	--	--	16943	16943
भूविज्ञान	--	--	20110	20110
इतिहास	4	--	12034	12034
गृह विज्ञान	--	--	6638	6638
पुस्तकालय-विज्ञान	--	--	6842	6842
भाषा विज्ञान	--	--	5064	5064
साहित्य-समीक्षा	--	--	22550	22550
गणित	--	--	37857	37857
चिकित्सा-विज्ञान	--	--	38543	3146
भेषज विज्ञान	--	--	5754	5754
भौतिकी	--	550	15830	15830
राजनीति विज्ञान	--	--	15000	15000
मनोविज्ञान	--	---	5375	5375
समाज शास्त्र	--	--	9330	9330
प्राणि विज्ञान	--	---	2500	15500
इंजीनियरी (वैद्युत)	722	--	9067	5997
,, (गणित)	91	--	14682	9028
,, (सिविल)	392	--	19950	14816
,, (दूरसंचार)	--	--	5600	24240
जोड़	24489	17455	397257	359490

शब्दावलियों के अलावा आयोग ने अपने तत्वावधान में मानक ग्रन्थ योजना और प्रकाशक सहकार योजना के अन्तर्गत 230 पुस्तकें अब तक प्रकाशित

कराई, जिनमें हिन्दी पुस्तकों की संख्या 173 तथा क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकों की संख्या 22 है।

बृहत्तर योजना और हिन्दी :

68-69 से भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर ग्रन्थ निर्माण की एक बृहत्तर योजना चलाई है, जिसके अधीन प्रत्येक राज्य को एक करोड़ रुपये की निधि चौथी योजना की अवधि में दी जायेगी। पांचों हिन्दी भाषी राज्यों को इस योजना की निधि इस प्रकार पांच करोड़ रुपये मिलेगी। हिन्दी भाषी राज्यों के कार्य का समन्वय करने के लिए एक हिन्दी भाषी प्रतिनिधि सम्मेलन, उसकी समन्वय समिति और एक कोर समिति गठित की गई है। आयोग को इन तीनों निकायों का सचिवालय और तदनुसार इस क्षेत्र के समग्र कार्य में समन्वय करने का काम सौंपा गया है।

पांचों हिन्दी भाषी राज्यों में इस कार्य के लिए स्वायत्तशासी निकाय बनाये जा चुके हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

उत्तर प्रदेश-	विश्वविद्यालय स्तर पुस्तक निमणि निगम
बिहार	बिहार राज्य विश्वविद्यालय आयोग (अपने कार्यों के साथ यह भी कार्य करेगा)
मध्यप्रदेश-	विश्वविद्यालयीन रचना अकादेमी
राजस्थान-	राजस्थान ज्ञान-विज्ञान रचना केन्द्र
हरियाणा-	विश्वविद्यालय स्तरीय हिन्दी पुस्तक निर्माण मंडल

अब इस सबको 'हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी' कहा जाएगा।

मौलिक लेखन और अनुवाद के लिए पुस्तक चयन के बारे में सलाह देने के लिए 31 विषय नामिकायें गठित की जा चुकी हैं। इन नामिकाओं द्वारा अब तक अनुवाद के लिए 1290 और मौलिक लेखन के लिए 900 पुस्तकें सुझाई गई हैं। इस के अलावा कृषि में 12 उपनामिकायें और इंजीनियरी में 8 नामिकाएं और गठित की जा रही हैं। सम्मेलन और समन्वय समिति की बैठकों में यह निर्णय किया गया है कि आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और कृषि में पुस्तक निर्माण का कार्य एक केन्द्रीय अभिकरण के जरिये कराया जाय। यह काम शब्दावली आयोग को सौंपा गया है। विभिन्न विषयों में समीक्षा पत्रिकायें निकालने की

भी योजना है । ये पत्रिकायें भी आयोग के जरिये प्रकाशित की जायेंगी। साथ ही यह भी मान लिया गया है कि संदर्भ ग्रन्थों के निर्माण का कार्य केन्द्रित रूप से आयोग द्वारा ही निष्पादित किया जाय । तदनुसार कुछ बृहत् कोशों का निर्माण और विश्व कोशों के अनुवाद और प्रणयन की योजना तैयार की जा रही है ।.

उर्दू में पुस्तक प्रणयन:

उर्दू में पुस्तक निर्माण का समन्वय करने के लिए एक अलग तरक्की-ए-उर्दू बोर्ड की स्थापना की गई है । इस बोर्ड का सचिवालय कार्य भी आयोग संभाल रहा है । बोर्ड की पहली बैठक 31 जुलाई, 1969 को हुई थी । अब तक बोर्ड द्वारा विभिन्न विषयों की 25 नामिकाओं का गठन किया जा चुका है । बोर्ड ने निश्चय किया है कि विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों और संदर्भ ग्रंथों के अलावा लोकप्रिय विज्ञान, बाल-साहित्य, विश्वकोश तथा उर्दू-शिक्षण संबंधी पुस्तकें भी तैयार कराई जाए । योजना के अंतर्गत 583 पुस्तकों का चयन मौलिक लेखन अथवा अनुवाद के लिए किया जा चुका है और इनमें से 400 पुस्तकों के लेखनका काम विद्वानों को सौंपा जा चुका है ।

वित्त मंत्रालय (अर्थ विभाग) की हिन्दी शाखा

वित्त मंत्रालय की हिन्दी शाखा की स्थापना 1954 में की गयी थी। प्रारम्भ में इस शाखा का मुख्य कार्य बजट सम्बन्धी तीन प्रकाशनों का हिन्दी संस्करण तैयार करना था। ये पुस्तकें हैं - वित्त मंत्री का बजट-भाषण, बजट विवरण और बजट का व्याख्यात्मक ज्ञापन। हिन्दी को राजभाषा बना दिए जाने और राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा राजभाषा (संशोधन) अधिनियम 1967 के लागू हो जाने के परिणामस्वरूप इस शाखा के कार्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है बल्कि उनका आकार भी बहुत बढ़ गया है। उपर्युक्त अधिनियमों के लागू हो जाने और उनके अन्तर्गत गृह मंत्रालय द्वारा समय-समय पर जारी किये जाने वाले अनुदेशों के कारण भी इस शाखा के कार्य में काफी वृद्धि हुई है।

हिन्दी शाखा वित्त मंत्रालय द्वारा प्रकाशित विभिन्न प्रकार की सामग्री का हिन्दी संस्करण तैयार करने के लिए उत्तरदायी है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

1. सभी बजट-पत्रों का हिन्दी अनुवाद तैयार करना और उन्हें निर्धारित समय पर संसद में प्रस्तुत करने के लिए छपवाना;

2. बजट-पत्रों से भिन्न सामग्री जैसे - वित्त आयोग की रिपोर्ट, वित्त मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के कार्य की रिपोर्ट आदि का अनुवाद और प्रकाशन;

3. नियमों एवं विनियमों, पूंजी निर्गम नियंत्रक की तिमाही रिपोर्टों, विदेशों के साथ किये जाने वाले करारों का अनुवाद तैयार करना,

4. संसद में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तरों, वित्त मंत्री द्वारा संसद में दिये गये वचनों से सम्बद्ध विवरणों, प्रधान मंत्री तथा मंत्रालय के राज्य मंत्रियों द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्यों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, अल्पकालिक प्रश्नों के उत्तरों आदि का अनुवाद तैयार करना और संसद में प्रस्तुत करने के लिए उनकी प्रतियां तैयार करना;

5. मंत्रालय द्वारा जारी किये जाने वाले सभी कार्यलिय आदेशों, राजपत्र अधिसूचनाओं, कार्यलिय-ज्ञापनों, पत्रों आदि का हिन्दी अनुवाद तैयार करना;

6. जनता और हिन्दी भाषी राज्यों से मंत्रालय के नाम हिन्दी में आने वाले पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद तथा इन पत्रों के उत्तर हिंदी में तैयार करना;

7. संसद में वार्षिक बजट, वित्त विधेयक, अनुदानों की मांगों, अनुदानों की अनुपूरक मांगों तथा मंत्रालय से सम्बद्ध अन्य मामलों आदि के सम्बन्ध में बहस के दौरान हिन्दी में हुए भाषणों की अंग्रेजी में रिपोर्ट तैयार करना; और

8. हिन्दी पुस्तकों की समीक्षा करना, प्रधानमंत्री एवं वित्त मंत्री को प्राप्त निमंत्रणों आदि के लिए सन्देश तैयार करना।

हिन्दी-शाखा मुख्य रूप से अर्थ विभाग, बैंकिंग विभाग, आयोजना वित्त प्रभाग (व्यय विभाग) और सरकारी उद्यम कार्यलिय तथा वित्त-रक्षा प्रभाग का कार्य करती है। इस शाखा के तीन अनुभाग हैं: बजट अनुभाग, संसद अनुभाग और हिन्दी कार्यान्वियन अनुभाग जो क्रमशः हिन्दी अधिकारी और अनुभाग अधिकारियों (हिंदी) की देख-रेख में काम करते हैं।

31 मार्च, 1970 को समाप्त एक वर्ष की अवधि में हिन्दी शाखा ने निम्नलिखित प्रकाशन हिन्दी में निकाले :-

1. पब्लिक लॉ 480 सम्बन्धी लेनदेनों के मुद्रा-विषयक प्रभाग के बारे में विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट

2. वित्त मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1968-69
3. कार्य-संबंधी बजट खण्ड I, 1969-70
4. कार्य-संबंधी बजट खण्ड II, 1969-70
5. केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट, 1968-69
6. जीवन बीमा निगम की व्यय संबंधी जांच समिति (मोरारका समिति) की रिपोर्ट
7. वित्त आयोग की रिपोर्ट, 1969
8. विदेशी सहायता, 1967-68
9. अनुदानों की अनुपूरक मांगें, 1969-70 (अगस्त)
10. अनुदानों की अनुपूरक मांगें, (दिसम्बर)
11. अनुदानों की अनुपूरक मांगें, (मार्च)
12. अतिरिक्त अनुदानों की मांगे
13. प्रत्यक्ष कर-भार, 1963-64
14. आर्थिक समीक्षा, 1969-70

केन्द्रीय सरकार का बजट, 1970-71

(28 फरवरी, 1970 को संसद में प्रस्तुत)

15. वित्त मंत्री का भाषण — भाग 'क'
16. वित्त मंत्री का भाषण — भाग 'ख'
17. सामाजिक व्यय के साथ विकास की ओर
18. बचत योजनाएं और बचत प्रोत्साहन के लिए करों में रियायतें
19. केन्द्रीय सरकार का बजट
20. बजट का व्याख्यात्मक ज्ञापन - खण्ड I
21. बजट का व्याख्यात्मक ज्ञापन - खण्ड II
22. डाक-तार और टेलीफोन की दरों में प्रस्तावित संशोधन
23. अनुदानों की मांगों का परिशिष्ट (महत्वपूर्ण योजनाओं पर टिप्पणियां)
24. आयोजना और बजट का पारस्परिक संबंध, 1970-71
25. अनुदानों की मांगों का सारांश

26-49. अनुदानों की मांगें (24 खण्ड)

50. रक्षा सेवाओं के अनुमान 1970-71
51. लेखानुदान 1970-71

52. केन्द्रीय सरकार के 1970-71 के बजट का आर्थिक और कार्य-संबंधी वर्गीकरण

मणिपुर बजट (16 मार्च, 1970 को संसद में प्रस्तुत)

53. वार्षिक वित्तीय विवरण, 1970-71
54. व्याख्यात्मक ज्ञापन, 1970-71
55. अनुदानों की मांगें, 1970-71
56. अनुदानों की अनुपूरक मांगें, 1969-70
57. बजट-भाषण

पश्चिम बंगाल बजट (26 मार्च, 1970 को संसद में प्रस्तुत)

58. वार्षिक वित्तीय विवरण, 1970-71
59. अनुदानों की अनुपूरक मांगें, 1969-70
60. अनुदानों की मांगें, 1970-71
61. लेखानुदान, 1970-71
62. बजट भाषण

इसके अलावा, केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के कार्य की 1968-69 की रिपोर्ट और मंत्रालय की 1969-70 की वार्षिक रिपोर्ट के हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो गये हैं और ये दोनों प्रकाशन संसद के बजट सत्र में प्रस्तुत कर दिये गये थे।

उपर्युक्त प्रकाशनों के अतिरिक्त, हिन्दी शाखा ने आलोच्य अवधि में संसद में पूछे जाने वाले 1595 प्रश्नों के उत्तरों (जिनकी पृष्ठ संख्या लगभग 5,000 बैठती है), संसद में दिये गये 80 वचनों, 564 अधिसूचनाओं, परिपत्रों आदि, नियमों और 10 करारों का हिन्दी अनुवाद तैयार किया।

हिन्दी विश्वविद्यालयीन शिक्षा के माध्यम के रूप में

भारत के 87 विश्वविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय मानी गई संस्थाओं में से 39 ने अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों / परीक्षाओं के लिये हिन्दी को माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया है। इनकी सूची नीचे दी जा रही है :

विश्वविद्यालय	पाठ्यक्रम
आगरा	बी० ए०, एम० ए०, बी० एस० सी० (अर्थशास्त्र, भूगोल, सैनिक अध्ययन), बी० काम, एम० काम, बी० एड०, एम० एड०, एल० एल० बी०
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय	सभी पाठ्यक्रम (यह संगीत विश्वविद्यालय है)
इन्दौर	बी० ए०, एम० ए०, बी० एस० सी०, बी० काम, एम० काम, बी० एड०, एम० एड०, बी० ए० एम० एस०, एल० एल० बी०
उदयपुर	बी० ए०, एम० ए०, बी० काम, एम० काम, एल० एल० बी०, एम० एड०

विश्वविद्यालय	पाठ्यक्रम
उस्मानिया	बी० ए०
एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० (गृह विज्ञान) बी० एड० , एम० एड०
कर्नाटक	कला विज्ञान और वाणिज्य विषयों के तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष और पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में ।
कानपुर	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , एम० एस० सी० , बी० काम , एम० काम , एल० एल० बी० , बी० एस० सी० (कृषि) , एम० एस० सी० (कृषि) , एम० एड० , बी० एड०
काशी विद्यापीठ	सभी पाठ्यक्रम
गुजरात	अधिनियम के अन्तर्गत सभी पाठ्यक्रम
गुजरात विद्यापीठ	सभी पाठ्यक्रम
गुरुकुल कांगड़ी	सभी पाठ्यक्रम
गोरखपुर	इंजीनियरी संकाय को छोड़कर सभी पाठ्यक्रम
जबलपुर	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम , एम० काम , बी० एड०
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय	कृषि पाठ्यक्रमों के प्रथम वर्ष में
जीवाजी	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , एम० एस० सी० , बी० काम , एम० काम , बी० एड० , एम० एड० , एल० एल० बी० , बी० ए० एम० एस०
जोधपुर	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम , एम० काम , बी० एड० , एल० एल० बी०
दक्षिण गुजरात	सभी पाठ्यक्रम

विश्वविद्यालय	पाठ्यक्रम
दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय	सभी पाठ्यक्रम
दिल्ली	बी० ए० , बी० काम
नागपुर	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम, एम० काम, बी० एड०
पंजाब	बी० ए०
पटना	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम, एम० काम, बी० एड० , एम० एड०
बड़ौदा	बी० म्यूज़ , एम० म्यूज़
बनारस	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० (गणित और वनस्पति विज्ञान) , बी० काम, बी० एड० , बी० म्यूज़ , एम० म्यूज़ ।
बिहार	कला, वाणिज्य, विज्ञान, संकायों में प्रथम डिग्री स्तर तक सभी परीक्षाएं
भागलपुर	बी० ए० , बी० एस० सी०, बी० काम ।
मगध	बी० ए० , बी० एल० सी० , बी० काम० ।
मेरठ	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम, एम० काम, एल० एल० बी० , बी० एड० , एम० एड० ।
रविशंकर	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , एम० एस० सी० , बी० काम, एम० काम, बी० एड० , एम० एड० , बी० ए० एम० एस० , एल० एल० बी० ।
रांची	बी० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम० ।
राजस्थान	बी० ए० , एम० ए० , बी० एस० सी० , बी० काम, बी० एड० , एम० एड०, एल० एल० बी० ।

लखनऊ	बी० ए०, एम० ए०, बी० एस० सी०, बी० काम, एम० काम, बी० एड०, एम० एड०, एम० एस० डब्ल्यू०, एल० एल० बी० ।
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय	सभी पाठ्यक्रम
विक्रम	बी० ए०, एम० ए०, बी० एस० सी०, एम० एस० सी०, बी० काम, एम० काम, बी० एड०, एम० एड०, एल० एल० बी० ।
सरदार पटेल विश्वविद्यालय	बी० ए०, बी० एस० सी०, बी० काम, बी० एड०
सागर	बी० ए०, एम० ए०, बी० एस० सी०, एम० एस० सी०, बी० काम, एम० काम, बी० एड०, एम० एड० ।
सौराष्ट्र	सभी पाठ्यक्रम

(गृह मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से साभार)

दिल्ली प्रशासन:

दिल्ली प्रशासन के हिन्दी विभाग के मुख्य रूप से तीन कार्य हैं। पहला कार्य है प्रशासन के विभिन्न कार्यालयों से प्राप्त सामग्री का हिन्दी रूपान्तर, दूसरा कार्य है प्रशासन के कामकाज में हिन्दी के प्रयोग और उसकी प्रगति तथा कार्यान्वियन से सम्बन्धित कार्यवाही और तीसरा कार्य है प्रशिक्षण सम्बन्धी। प्रशिक्षण के अन्तर्गत प्रशासन अपने केन्द्रों में हिन्दी टाइप और आशुलिपि का प्रशिक्षण देता है।

हिन्दी टाइप व आशुलिपि की नई कक्षाएं गठित की गईं जिनमें इस समय लगभग 150 कर्मचारी हिन्दी टाइप तथा लगभग 100 कर्मचारी हिन्दी आशुलिपि का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। अब तक लगभग 2200 कर्मचारियों ने हिन्दी टाइप का तथा लगभग 400 कर्मचारियों ने हिन्दी आशु-लिपि का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है। इन केन्द्रों में दिए जाने वाले प्रशिक्षण से उनकी संख्या में अब और भी बढ़ोतरी हो जाएगी।

प्रशासन ने राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र सरकारों से हिन्दी में पत्र-व्यवहार करने का करार किया है। कर्मचारियों को हिन्दी टिप्पण व आलेखन का विस्तृत तथा गहन प्रशिक्षण देने के लिए प्रशासन में चल रही भाषा कर्मशाला योजना के अन्तर्गत पाठ्यक्रम को नया रूप दिया जा रहा है तथा विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों को अलग-अलग वर्ग बना कर, अलग-अलग प्रशिक्षण दिए जाने की कार्यवाही की जा रही है।

प्रशासन के कर्मचारियों व अधिकारियों की सहायता के लिए तकनीकी शब्दावली से सम्बन्धित साहित्य का वितरण विभिन्न विभागों में किया गया है।

संसद में हिन्दी

-मदन मोहन गुप्त

संसद में प्रयुक्त होने वाली भाषा के विषय में संविधान के अनुच्छेद 120 तथा अनुच्छेद 348 में उपबन्ध किए गए हैं। अनुच्छेद 120(1) के अनुसार संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा परन्तु यथास्थिति राज्य सभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा। परन्तु अनुच्छेद 348(1) (ख) में यह व्यवस्था थी कि संसद में पेश किए जाने वाले विधेयकों तथा उनके संशोधनों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होंगे।

उपर्युक्त उपबन्धों से प्रकट है कि संसद-कार्य के लिए 15 वर्षों तक केवल अंग्रेजी का प्रयोग करने की शर्त कभी नहीं थी, परन्तु जब तक संसद अन्यथा उपबंधन करे तब तक विधेयकों तथा अधिनियमों आदि के पाठ केवल अंग्रेजी में ही होने आवश्यक थे। अब राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 5(2) के अनुसार संसद में प्रस्थापित किए जाने वाले विधेयकों तथा संशोधनों के प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था के विषय में विधि-मंत्रालय आवश्यक कार्यवाही कर रहा है। अनौपचारिक रूप से अनुवाद अब दिए भी जा रहे हैं।

अनुच्छेद 120 के अनुसरण में संसद के दोनों सदनों में हिन्दी के प्रयोग को आगे बढ़ाने में समुचित सहायता मिली है। संसद के दोनों सचिवालयों द्वारा निम्नलिखित कागजात हिन्दी में जारी किए जाते हैं :-

(1) कार्य सूची,
(2) बुलेटिन भाग 1 (जिसमें प्रतिदिन की कार्यवाही का सारांश होता है),
(3) बुलेटिन भाग 2 (जिसमें सदस्यों के लिए सामान्य जानकारी होती है),
(4) सभाओं के वाद-विवाद के सारांश (दैनिक),
(5) सभाओं के वाद-विवाद के सारांश (दैनिक),
(6) प्रस्तावित संकल्पों की सूची तथा उन पर प्रस्तावित संशोधनों की सूची,
(7) राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव तथा उस पर प्रस्तावित संशोधनों की सूची,
(8) अन्य प्रस्तावों आदि पर संशोधन सूची।

दोनों सभाओं में प्रत्येक सदस्य को हिन्दी अथवा अंग्रेजी किसी भी भाषा में बोलने का अधिकार है। दोनों ही भाषाओं की कार्यवाही का अभिलेख करने के लिए आशुलिपिकों की व्यवस्था है। प्राय: हिन्दी में पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाता है, परन्तु इस प्रकार की कोई बाध्यता नहीं है। हिन्दी तथा अंग्रेजी वक्ताओं का क्रमश: अंग्रेजी तथा हिन्दी में साथ-साथ अनुवाद करने के लिए दुभाषियों की व्यवस्था है। अत: कोई भी सदस्य कान पर यंत्र लगा कर दोनों में से किसी भाषा में कार्यवाही सुन सकता है। यदि कोई सदस्य हिन्दी तथा अंग्रेजी से इतर किसी भाषा में बोलता है तो उसका अभिलेख आशुलिपिक नहीं करते, और उसे अपने भाषण का हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद देना होता है जिसे 'वाद-विवाद' में शामिल कर दिया जाता है।

लोक-सभा वाद-विवाद जिसमें दिन भर की कार्यवाही शब्दश: उद्धृत की जाती है, दो संस्करणों में प्रकाशित किया जाता है —'मौलिक तथा अनूदित'। मौलिक 'वाद-विवाद' में सदस्यों के भाषण उसी भाषा में शब्दश: प्रकाशित किए जाते हैं जिसमें वे दिए गए हों और 'अनूदित' संस्करण में अंग्रेजी भाषणों का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर और हिन्दी भाषणों का संक्षिप्त अंग्रेजी रूपान्तर दिया जाता है। प्रश्नोत्तर का प्राय: शब्दश: अनुवाद इस संस्करण में होता है। राज्य-सभा के अनूदित संस्करण में सभी भाषणों का हिन्दी मूल रूप या संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर होता है।

संसद की दोनों सभाओं के प्रक्रिया नियम और इस प्रकार का अन्य साहित्य हिन्दी में भी उपलब्ध है। राजभाषा अधिनियम के अनुसार यह अनि-

वार्य है कि संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी प्रतिवेदन तथा अन्य कागजात दोनों भाषाओं में हों। यद्यपि सभी मंत्रालय अभी तक इसकी पूर्ण व्यवस्था नहीं कर पाए हैं परन्तु अधिकाधिक कागजात अब हिन्दी में भी प्रस्तुत किए जाने लगे हैं। संसद में पूछे जाने वाले सभी प्रश्नों के उत्तर मंत्रालयों द्वारा दोनों भाषाओं में संसद के सचिवालयों को भेजे जाते हैं और उन्हें उसी रूप में शब्दशः 'वाद-विवाद' में प्रकाशित किया जाता है।

विधेयकों के लिए बनी प्रवर समितियों तथा संयुक्त समितियों के प्रतिवेदनों के हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध किए जाते हैं किन्तु संसद की समितियों के प्रतिवेदन हिन्दी में जारी नहीं किए जाते। परन्तु सदस्यों की ओर से निरन्तर इस बात की मांग की जाती रही है कि वे हिन्दी में उपलब्ध किए जाएं। अतः अब लोक सभा की कुछ महत्वपूर्ण समितियों के प्रतिवेदनों का हिन्दी अनुवाद करवाने की व्यवस्था की जा रही है।

(केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद द्वारा मई, 1970 में प्रकाशित स्मारिका से साभार)

हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थों का निर्माण :

–राजेन्द्र द्विवेदी

किसी भी भाषा के सर्वांगीण विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उच्चतम साहित्य उसमें उपलब्ध हो और यह तभी सम्भव और व्यावहारिक है जब वह भाषा उच्चतर शिक्षा का माध्यम हो जाए। राजभाषा भी तभी अच्छी तरह विकसित हो सकती है जब वह विश्वविद्यालय स्तर के माध्यम की भाषा बन जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक संकल्प भारत सरकार ने हाल ही में स्वीकार किया है। इसमें हिन्दी समेत सभी भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय स्तर पर माध्यम बनाने के लिए पुरजोर कार्रवाई करने की बात कही गई है। तदनुसार सरकार ने विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकें लिखने के लिए एक बड़ी योजना बनाई है, जिसके अधीन एक-एक करोड़ रूपए तक की राशि प्रत्येक राज्य को दी जाएगी। यह योजना 18 करोड़ रूपए की योजना के रूप में लोकप्रिय हो गई है। फिर भी चौथी पंचवर्षीय योजना में वस्तुतः कुल 13 करोड़ रूपए की व्यवस्था की गई है। यह योजना 1968-69 में शुरू हुई थी। इस साल इस का आधार 75: 25 प्रति० था और राज्य को 25 प्रतिशत अपने पास से देने होते थे। किन्तु 1969-70 में इसे शत प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान के रूप में चलाया जा रहा है। संघीय राज्य क्षेत्र इस योजना में शामिल नहीं हैं।

हिन्दी भाषी राज्य पांच हैं : उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा। इनको कुल मिलाकर पांच करोड़ रूपए मिलने हैं।

तदनुसार यह आवश्यक हो गया है कि इन पांचों राज्यों में पुस्तक लेखन के कार्य को सम्मिलित रूप से चलाया जाए, जिससे दुहरे कार्य से बचा जा सके और एक राज्य में तैयार की गई पुस्तकें उन पांचों राज्यों में व्यवहृत हो सकें। तदनुसार फरवरी, 68 में वाराणसी में हिन्दी भाषी राज्यों के कुलपतियों का एक सम्मेलन बुलाया गया और उस सम्मेलन की एक स्थायी समिति बनाई गई। बाद में 1969 के आरम्भ में इस सम्मेलन को पुनर्गठित और ज्यादा व्यापक किया गया। इस हिन्दी भाषी राज्य प्रतिनिधि सम्मेलन का पहला अधिवेशन 24 अप्रैल, 1969 को नई दिल्ली में हुआ। दैनंदिन समन्वय कार्य के लिए एक समन्वय समिति और एक कोर समिति की भी स्थापना की गई।

सम्मेलन में यह सहमति व्यक्त की गई कि आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और कृषि विषयों की पुस्तकें, संदर्भ पुस्तकें और कोर पुस्तकें हिन्दी में एक केन्द्रीय अभिकरण के जरिए लिखाई जानी चाहिए और कापीराइट प्राप्त करने का कार्य भी केन्द्रीय रूप से ही किया जाना चाहिए। समीक्षा-पत्रिकाएं भी हिन्दी में एक केन्द्रीय अभिकरण द्वारा ही निकाली जानी चाहिए। सभी कुलपति सहमत थे कि हिन्दी में उपलब्ध मानक पुस्तकें और विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत लिखी जा रही पुस्तकें अविलम्ब सभी विश्वविद्यालयों में वितरित कराई जानी चाहिए। सम्मेलन ने लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिए कई प्रकार के सुझाव दिये, जिनमें दस हजार रुपयों तक का पुरस्कार देने का भी एक सुझाव था। नियुक्ति और पदोन्नति के लिए विश्वविद्यालयों के स्तर की पुस्तकों का लिखना या अनुवाद करना एक योग्यता मानी जानी चाहिए। अच्छे मौलिक चिन्तन वाले अनुवादों पर शोध उपाधि के लिए भी विचार करना चाहिए। बाद में समन्वय समिति ने पारिश्रमिक की दरों को भी बढ़ा दिया और अब मौलिक लेखन और अनुवाद की दरें इस प्रकार हैं:-

मौलिक लेखन - 10 से 12 रुपए प्रति पृष्ठ या 20 प्रतिशत रायल्टी
या 5 से 6 रुपए प्रति पृष्ठ और 10 प्रतिशत रायल्टी।

अनुवाद - 8 से 10 रुपए प्रति पृष्ठ।

पहले तो योजना यह थी कि कार्यक्रम के अधीन विभिन्न राज्य अकादमियों द्वारा लेखकों को सौंपी गई पुस्तिकों को ही शामिल किया जाएगा। किन्तु अब किसी भी लेखक से प्राप्त तैयार पांडुलिपियों पर भी विचार किए जाने की व्यवस्था कर दी गई है। इसके साथ ही प्रामाणिक और

मूर्धन्य लेखकों से अनुरोध किया जाएगा कि वे राष्ट्र सेवा की भावना से अपने विषय की एक-एक मौलिक पाठ्य पुस्तक हिन्दी में लिखें ।

योजना की कार्यान्विति के लिए विषयवार नामिकाएँ गठित की गईं जिसमें पांच राज्यों के वरिष्ठ प्रोफेसरों को रखा गया। पहले इन विषयों में नामिकाएं गठित की गई थीं - अर्थशास्त्र, आयुर्विज्ञान (तीन नामिकाएँ), कृषि, गणित, दर्शन, गृह विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भाषा विज्ञान, भूगोल, भू-विज्ञान, भौतिकी, मनोविज्ञान, रसायन, राजनीति विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, वाणिज्य शिक्षा, समाज विज्ञान और समालोचना। इन नामिकाओं ने लगभग 400 शीर्षक मौलिक लेखन के लिए सुझाए और 2000 पुस्तकें अनुवाद के लिए शंसित कीं । इन्होंने 800 विद्यमान हिन्दी पुस्तकों को मानक बताते हुए अनुमोदित किया। बाद में नीचे लिखे विषयों के लिए भी नामिकाएं गठित की गईं: सैन्य विज्ञान, पशु-चिकित्सा, गृह विज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान, समाज कार्य, पत्रकारिता और मुद्रण, लोक प्रशासन और प्राचीन इतिहास। इन्होंने करीब 400 अन्य पुस्तकों को अनुवाद के लिए चुना। इसी बीच इंजीनियरी में 8 और कृषि में 13 नामिकाएं गठित की गई हैं ।

पांचों हिन्दी भाषी राज्यों में इस योजना को चलाने के लिए स्वायतशासी बोर्ड स्थापित किए जा चुके हैं जिनको हिन्दी ग्रंथ अकादमी कहा जाता है। बिहार को छोड़ कर प्रायः सभी राज्यों में शिक्षा मंत्री इन अकादमियों के अध्यक्ष हैं। बिहार की अकादमी के अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु हैं और उत्तर प्रदेश की अकादमी के उपाध्यक्ष श्री सी० बालकृष्णराव हैं ।

कार्यक्रम के अधीन अब तक लगभग 400 ग्रन्थ मौलिक लेखन के लिए और 800 ग्रन्थ अनुवाद के लिए विभिन्न राज्यों को सौंपे जा चुके हैं और काम काफी आगे बढ़ चुका है।

अध्यापकों को हिन्दी माध्यम से अध्यापन का प्रशिक्षण देने के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। इन पाठ्यक्रमों में अध्यापकों को माडल व्याख्यान हिन्दी में दिलाकर और विषय विशेष की अध्यापन समस्याओं पर चर्चा करके प्रशिक्षण दिया जाता है।

स्थूल रूप से यह तय किया गया है कि जुलाई, 73 तक सभी विषयों में माध्यम हिन्दी हो जाना चाहिए। इसी आधार पर कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ाया जा रहा है।

इलाहाबाद हाई कोर्ट में हिन्दी में याचिका

इलाहाबाद हाई कोर्ट के न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री शिवनाथ काटजू ने हाल ही में हिन्दी में लिखी एक याचिका (रिट) को विचारार्थ स्वीकार कर हाई कोर्टों की भाषा सम्बन्धी परम्परा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। यद्‌यपि इसी हाई कोर्ट ने कई वर्ष पूर्व प्रसिद्‌ध अभिभाषक श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी को एक फौजदारी मुकदमें में हिन्दी में बहस करने की अनुमति देकर हाई कोर्ट के काम में हिन्दी के उपयोग को प्रतीक्रात्मक मान्यता दे दी थी, तथापि सारी लिखा पढ़ी का काम अंग्रेजी में ही किया जाता था। इस याचिका को विचारार्थ स्वीकार कर हाई कोर्ट में राज्य की राजभाषा हिन्दी के उपयोग को स्वीकार कर लिया गया है। इसके लिए हम इलाहाबाद हाई कोर्ट को हार्दिक बधाई और धन्यवाद देते हैं। जब देश के नेता प्रजातंत्र की बात करते और अपना सारा राजकीय और शासकीय कार्य अंग्रेजी में करते हैं तब उनकी प्रजातंत्रा की बड़ाई और दुहाई खोखली मालूम होती है। उस प्रजातन्त्र में जनता कैसे भाग ले सकती है जिसका प्रशासन यन्त्र और न्यायपालिका अपना काम एक ऐसी भाषा में करती है जिसे वह नहीं जानती ? जनता की भाषा के उपयोग से जनता में न्यायपालिका और प्रशासन के प्रति अपनत्व की भावना उत्पन्न होगी और वह उनके कामों में समझदारी के साथ अभिरुचि ले सकेगी।

गत मास केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमंडल ने भी इस विषय पर विचार किया, और उसने यह निश्चय किया कि राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया जाए कि वे यदि चाहें तो अपने हाई कोर्टों में अपनी राजभाषा में काम करने की

आज्ञा दे दें। राज्य सरकारें अब यह तय कर सकती हैं कि किस तिथि से उनके हाई कोर्ट अपनी क्षेत्रीय भाषा में अपने निर्णय देना आरंभ कर दें, किन्तु उन्हें उनका हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करना होगा।

अब हाई कोर्टों में देशी भाषाओं के प्रवेश में कोई बाधा नहीं है। इस का उत्तरदायित्व अब राज्य सरकारों पर है। कुछ राज्य सरकारें (जैसे तमिल नाडु) अपनी भाषा के उपयोग के प्रति बड़ी सतर्क और कृत संकल्प हैं। किन्तु दुर्भाग्य से इस देश की अधिकांश सरकारों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। ये सरकारें तभी क्रियाशील होंगी जब उन पर जनता का दबाव पड़ेगा। अन्त में सारा उत्तरदायित्व जनता और उनके मुखर नेताओं का है।

हाई-कोर्टों में हिन्दी के प्रचलन में अनेक बाधाएं हैं। किसी भी परिवर्तन के करने से कुछ लोगों को असुविधा होती है। जब तक परिवर्तन के लिए कार्यकर्ताओं में समुचित उत्साह न हो, ये बाधाएँ प्रगति नहीं होने देतीं। पीढ़ियों से चली आने वाली भाषा सम्बन्धी परम्पराएं और एक विशेष भाषा में वर्षों काम करते रहने के कारण पुराने अभिभाषकों और कर्मचारियों को वास्तविक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयां तभी तुच्छ हो सकती हैं जब लोगों में परिवर्तन के लिए अमित उत्साह और संकल्प की दृढ़ता हो। उसके अभाव में परिवर्तन की गति धीमी होनी अनिवार्य है। किन्तु यदि जनता जागरूक और सरकार सतर्क न रहेगी तो हमारी स्वाभाविक जड़ता के कारण उस दिशा में कोई भी परिवर्तन न हो सकेगा। इसलिए जहां हमें एक ओर अधीर होने से बचना चाहिए, वहां यह भी आवश्यक है कि हम सतर्क रहें और इस बात को देखते रहें कि परिवर्तन की गति धीमी भले ही हो किन्तु वह हो रही है और प्रति वर्ष हम अपने लक्ष्य के अधिक निकट पहुंच रहे हैं।

[सरस्वती से साभार]

विविध समाचार

अखिल भारतीय डोगरी साहित्य सम्मेलन :

29 नवंम्बर से 1 दिसम्बर, 1970 तक, नई दिल्ली के विट्ठलभाई पटेल भवन में अखिल भारतीय डोगरी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय पर्यटन मंत्री डा० कर्णसिंह ने की और उद्घाटन तत्कालीन शिक्षा मंत्री डा० वी० के० आर० वी० राव ने। अपने उद्घाटन भाषण में डा० राव ने कहा : भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र की यह सांस्कृतिक आवश्यकता है कि एक ओर जहाँ देश को एकता के सूत्र में आबद्ध करने वाली राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास हो, वहाँ प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा को भी फलने-फूलने का पूरा सुअवसर मिले। भाषा के क्षेत्र में परिवार नियोजन हानिकारक होगा। डोगरी पुस्तकों की प्रदर्शनी ने उस भाषा की क्षमता को प्रमाणित कर दिया है। मेरी शुभ कामना है कि डोगरी अधिकाधिक समृद्ध होकर भारतीय भाषा परिवार में सम्मान प्राप्त करे।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए डा० कर्णसिंह ने बताया : डोगरी में डोगरा-पहाड़ी लोगों की उमंगें, आशाएं, सुख-दुख आदि की सहज अभिव्यक्ति लोक-गीतों और लोक कथाओं के रूप में पुराने समय से होती रही है। पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में इसमें आधुनिक साहित्यिक विधाओं का भी पर्याप्त

विकास हुआ है और अब साहित्य अकादेमी ने इसे स्वतंत्र आधुनिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान कर दी है। निश्चय ही इससे जहां हमारा गौरव बढ़ा है, वहां उत्तरदायित्व भी बढ़ा है। हमें सतर्क रहना है कि डोगरी भाषावाद को नहीं राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाएं। राष्ट्रभाषा हिन्दी या अन्य किसी क्षेत्रीय भाषा में किसी भी प्रकार के संघर्ष को हम कदापि सहन नहीं करेंगे।

समारोह में राजधानी के अनेक नेता, साहित्यकार तथा डोगरी भाषा के अनेक लेखक सम्मिलित हुए। उद्घाटन समारोह के बाद डोगरी कवि सम्मेलन हुआ। 30 नवंबर को डोगरी भाषा और साहित्य के विविध पक्षों पर विचार करने के लिए डा० प्रभाकर माचवे और डा० वेद कुमारी घई की अध्यक्षता में दो महत्वपूर्ण गोष्ठियां हुईं। उसी रात दीनू भाई पंत द्वारा लिखित डोगरी नाटक 'सरपंच' मंच पर प्रस्तुत किया गया।●

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन :

28 फरवरी से मार्च, 1970 तक अहमदाबाद के मंगल भवन सभा गृह में अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का पांचवा अधिवेशन हुआ जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि हिन्दी भाषी राज्यों के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु, आदि हिन्दीतर भाषी राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हुए। उद्घाटन की रस्म राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक उपकुलपति श्री जनार्दन राय नागर ने अदा की। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा : भाषा की समस्या संस्कृति के सर्वांगीण अस्तित्व की समस्या है, यह राष्ट्रीयता का सम्पूर्ण शिलान्यास है। अतः हमें यह निश्चय करना है कि अंग्रेजी या कोई भी विदेशी भाषा तथा लिपि राष्ट्रीय सम्पर्क, अभिव्यक्ति तथा व्यवहार के लिए कदापि स्वीकार न हो। अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का यही उद्देश्य है।

अधिवेशन की अध्यक्षता मराठी के लेखक तथा पत्रकार आचार्य श्रीपाद केलकर ने की। श्री केलकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा : अंग्रेजी हटाओ को हमने अब तक भाषा तक सीमित आंदोलन रखा है। देश की भाषा नीति में बुनियादी तबदीली के उद्देश्य से हम इस आंदोलन को चला रहे हैं। मेरा विचार है कि इन कार्यक्रमों के साथ अंग्रेज़ियत को हटाने के कार्य-क्रम भी जोड़े जाने चाहिए क्योंकि अंग्रेजी और अंग्रेज़ियत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पश्चिम बंगाल के प्रतिनिधि श्री अमलेश ने बंगला में भाषण देते हुए कहा - "कुछ समय पहले तक बंगाल में मध्यवर्गीय बाबू और अंग्रेजी अखबार,

अपने सीमित स्वार्थ के कारण, अंग्रेजी हटाओ आंदोलन को हिन्दी लादो आंदोलन कहकर उसका मखौल उड़ाते थे। किंतु अब झूठ का कुहासा छटने लगा है। बंगाल के तथाकथित बड़े लोग तो नहीं किंतु साधारण जन सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी के प्रभुत्व को समाप्त करने की जरूरत महसूस करने लगे हैं।'

सम्मेलन के महामंत्री श्री कृष्णनाथ ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा : सांस्कृतिक स्वाधीनता का यह अभियान अब अहिंदी भाषी राज्यों में भी फैलने लगा है। तमिलनाडु में रामनाथ पुरम के श्री रंगास्वामी अंग्रेजी हटाने और भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठापित करने के लिए हस्ताक्षर अभियान चला रहे हैं। तमिल साप्ताहिक 'मानिदकुलम' नियमित रूप से अंग्रेज़ी हटाओ की मांग का प्रचार कर रहा है। केरल में गत वर्ष अंग्रेज़ी में विधेयक प्रस्तुत किए जाने के विरुद्ध तथा मलयालम में सारा काम-काज चलाने के पक्ष में प्रदर्शन हुए थे। कन्नड़ लेखक डा० अनंतमूर्ति अंग्रेजी के दबदबे के विरुद्ध जनमत तैयार करने में लगे हैं। कन्नड़ मासिक 'मानव' और तेलुगु साप्ताहिक 'पोरारम' अंग्रेजी को हटाने में सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। उत्कल विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में अंग्रेज़ी में दीक्षान्त भाषण दिए जाने का विरोध हुआ था और उपकुलपति ने उड़िया में दीक्षांत भाषण दिए जाने की मांग स्वीकार कर ली है।

यद्यपि अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की स्थापना स्व० डा० राममनोहर लोहिया की प्रेरणा से हुई थी किंतु अब यह व्यापक जन आंदोलन बन गया है।●

'गोदान' व 'पाथेर पांचाली' को असाधारण सम्मान :

हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' और बंगला कथाकार ताराशंकर वंद्योपाध्याय के उपन्यास 'पाथेर पांचाली' के अंग्रेज़ी अनुवादों को असाधारण सम्मान दिया गया है।

यूनेस्को अनुवाद कार्यक्रम के अंतर्गत जिन 130 पुस्तकों के अंग्रेज़ी अनुवाद हुए हैं, उनमें 'गोदान' पहली पुस्तक है जिसे लंदन का नेत्रहीन पुस्तकालय ब्रेल लिपि में प्रकाशित करेगा। इसी प्रकार 'पाथेर पांचाली' भी इस कार्यक्रम में पहली पुस्तक है जिसे ब्रिटेन की पोलियो सोसायटी अपने सदस्यों के लिए बढ़िया जिल्द के संस्करण में प्रकाशित करेगी।●

पाठ्य-पुस्तक लेखकों को डाक्टरेट की उपाधि की सिफारिश :

राष्ट्रीय स्कूल पाठ्य पुस्तक बोर्ड ने उच्च कोटि की पाठ्य पुस्तक लिखने वालों को डाक्टरेट की उपाधि देने की सिफारिश की है। बोर्ड का मत है कि अच्छी पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिए मेधावी व्यक्तियों को प्रेरित करने के उद्देश्य से उन्हें अच्छा पारिश्रमिक देना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि योग्य व्यक्तियों को केवल रुपये पैसे का प्रलोभन आकृष्ट नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्तियों को डाक्टरेट की उपाधि देकर समाज में प्रतिष्ठित करने की परंपरा शुरू की जानी चाहिए।

गुजराती साहित्य परिषद् (रजत जयंती) अधिवेशन :

गुजरात साहित्य परिषद का पच्चीसवां (रजत जयंती) अधिवेशन 26 दिसंबर से 28 दिसंबर, 1970 तक, गुजराती के प्रथम कवि श्री नरसिंह मेहता की जन्म-स्थली जूनागढ़ में संपन्न हुआ। गुजरात के राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण ने ज्योतिदीप प्रज्वलित करके अधिवेशन का प्रारंभ किया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने ऐसे साहित्य के निर्माण पर बल दिया जो जीवन को सुंदर और राष्ट्र को उन्नत बनाए। उन्होंने कहा : हमारे विशाल देश में साहित्य द्वारा एकता की भावना संचारित करने की बड़ी आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो जाएगा।

कवि श्री सुंदरम् ने अपने भाषण में परिषद की साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय देते हुए कामना की कि नये सर्जन, नई क्रांति, नई सिद्धि की हमारी आराधना अधिकाधिक बलवती, अधिकाधिक तेजस्वी बने।

27 दिसंबर को 'साहित्य विवेचन' विषय पर और 28 दिसंबर को गांधी दर्शन पर गोष्ठियां हुईं जिनमें गुजराती के गणमान्य साहित्यकारों ने भाग लिया। 28 दिसंबर की रात को कवि-सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। ●

हरियाणा में हिंदी दिवस समारोह :

राजकीय भाषा विभाग हरियाणा के सहयोग से हरियाणा की साहित्यिक संस्थाओं ने 17 सितंबर 1970 को हिंदी दिवस मनाया। समारोह की अध्यक्षता राज्य के भाषा मंत्री चौ० राजेन्द्र सिंह ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा हरियाणा हिन्दी को सरकारी काम-काज के लिए अपनाने में प्रथम राज्य

है । अब हम इस स्थिति में हैं कि अन्य हिंदी राज्यों को भी इस काम में सहायता पहुंचा सकते हैं । यदि किसी राज्य को प्रशासन में हिंदी लागू करने के लिए हिंदी टाइपिस्टों, आशुलिपिकों तथा अन्य तकनीकी कर्मचारियों की आवश्यकता हो, तो हम उन्हें ये सुविधाएं जुटा सकते हैं । जहां तक हरियाणा का संबंध है, हिंदी को सरकारी काम-काज में पूर्णरूप से लागू किया जा चुका है । राज्य के शिक्षा मंत्री चौ० माड़ूसिंह ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि हमें अंग्रेजी के प्रति मिथ्या मोह को त्याग देना चाहिए । उन्होंने इजरायल का उदाहरण देते हुए कहा : जैसे विश्व के विभिन्न भागों से आने वाले यहूदियों ने यहूदी भाषा को, मातृभाषा न होते हुए भी, सीखा और अपनाया उसी प्रकार हमें राष्ट्रभाषा हिंदी को अपनाना चाहिए ।

मुख्य अतिथि पं० मौलिचंद्र शर्मा ने अपने विद्वत्ता पूर्ण भाषण में विश्वास व्यक्त किया कि संस्कृत निष्ठ हिंदी तथा देवनागरी लिपि के व्यापक उपयोग से उत्तर और दक्षिण को एक सूत्र में बांधा जा सकता है । ●

1969-70 में छपी हिंदी पुस्तकों की प्रदर्शनी :

हिंदी बुक सैंटर नामक संस्था ने नवंबर मास में नई दिल्ली में एक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें 1969-70 में प्रकाशित लगभग 2000 पुस्तकों को प्रदर्शित किया गया । प्रदर्शनी का उद्घाटन दिल्ली के उपराज्यपाल डा० आदित्यनाथ झा ने किया और समारोह की अध्यक्षता डा० रामधारी सिंह दिनकर ने की । डा० झा ने अपने भाषण में पुस्तकों के महत्व को बताते हुए प्रकाशकों को सलाह दी कि वे विश्व प्रसिद्ध्ध पुस्तकों के संक्षिप्त अनुवाद हिंदी में छापें । उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि हिंदी को अपना शब्द भंडार बढ़ाने के लिए संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषाओं से भी खुल कर शब्द लेने चाहिएं ।

श्री दिनकर ने अपने भाषण में इस बात पर खेद व्यक्त किया कि यहां बढ़ई, कुम्हार, हलवाई का तैयार किया माल तो आसानी से बिक जाता है किंतु पुस्तकें नहीं बिकतीं । स्वराज्य के पूर्व की स्थिति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा : 'पहले पढ़ने वाले कम थे लेकिन उनका मन केन्द्रित था । छोटी सी जगह से भी यदि कोई पुस्तक निकलती थी तो उसकी सारे देश में चर्चा होती थी । आज तो बड़े-बड़े साप्ताहिक भी पुस्तक समीक्षा छापना व्यर्थ समझते हैं'। ●

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह :

27 नवंबर को नई दिल्ली स्थित विज्ञान भवन में आयोजित एक भव्य समारोह में उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि श्री रघुपति सहाय फिराक को उनकी रचना 'गुलेनग्मा' पर सन् 1969 के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया। समारोह में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के राज्य-पाल और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रवर समिति के अध्यक्ष डा० गोपाल रेड्डी, हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि डा० रामधारी सिंह दिनकर आदि अनेक महानुभाव उपस्थित थे। समारोह में उपस्थित विद्वानों का स्वागत भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन ने किया। उन्होंने कहा कि फिराक साहब ने उर्दू गज़ल को देश की गंध से सुवासित किया और उर्दू रुबाई को भारतीय रूप-रस की माधुरी से तथा दर्शन की भव्यता से ओत-प्रोत किया। प्रवर समिति के अध्यक्ष डा० गोपाल रेड्डी ने अपने भाषण में कहा 'फिराक साहब ने जिस समय शायरी के मैदान में कदम रखा, उस समय अधिकांश उर्दू शायरी का एक मात्र स्रोत फारसी और अरबी शायरी ही था। उसी से वह अपनी उपमाएं आदि लेती थी और उसी पर अपने कथानकों के लिए आश्रित थी। फिराक साहब ने इस स्थिति से विद्रोह करके घिसे-पिटे रास्ते को छोड़ कर जो रास्ता अपनाया, उस पर कोई भी राष्ट्रप्रेमी गर्व कर सकता है।'

पुरस्कार ग्रहण करने के बाद ज्ञानपीठ के प्रति आभार प्रकट करते हुए फिराक साहब ने कहा : 'जो शायर जीवन में दुख उठाकर हमें काव्य देता है वह पाठक को सबसे अधिक सुख की सामग्री देता है। अपने में कमी महसूस होती है, उसी कमी को पूरा करने का नाम है काव्य-रचना। यह व्यक्तिगत दुःख सुख की सूची तैयार करना नहीं है, वरन् मानवीय दुःख सुख की व्याख्या है।'

'क्या वजह है, हम शायरों अदीबों की इज्जत करते हैं ? कोई मुसीबत किसी गज़ल के लिखने से दूर नहीं होती। जो कारबारी जिन्दगी की जरूरत पूरी करता है वह बहुत बड़ी कमी को पूरा करता है। यह ठीक है कि हम रोटी के बिना नहीं रह सकते लेकिन हम अपनी जिन्दगी का एक शऊर भी हासिल करना चाहते हैं। कवि हमें यह शऊर देता है। हम से हमारा परिचय कराता है। साहित्य से हम अपने लिये अजनबी नहीं रह जाते। कविता जादुई आयाम है। इन्सान को यह भूख रहती है कि परिचित 'चमत्-कारी' और रहस्यमय भी हो। शायर यह करता है और वजद की ताजगी को बरकरार रखता है। वजूद में हर समय बासी होने का डर रहता है।

शायरी उसे बासी नहीं होने देती। जिसे हम मिट्टी की दुनिया कहते हैं उससे पाक वजूद कोई है ही नहीं। हर चीज जो कुछ है, वह है और पाक भी है। यथार्थ से अलग दैवी कुछ नहीं है। भौतिक में ऐश्वर्य का अनुभव, यही कविता है। शायर शास्त्रों की दुहाई नहीं देता। वह इस अहसास को मानवता से जोड़ता है, जो सबसे पवित्र चीज है।'

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी फिराक साहब के भाषण से इतनी प्रभावित हुईं कि उन्होंने अपना लिखित भाषण पढ़ने से पहले भूमिका के रूप में जो मार्मिक शब्द कहे वे सबके दिलों में समा गये। उन्होंने कहा : 'कवि की दृष्टि सब के शैशव में, सब के पास रहती है, पर शिक्षा और वातावरण उस दृष्टि को विकसित नहीं होने देते। जो हमारी आंखों में सौंदर्य है वह बाहर की आंखों से नहीं दीखता। सौंदर्य कहीं बाहर नहीं, हमारी आंखों में ही होता है। शायर हमारी आंखें खोलते हैं।'●

दक्षिण के हिन्दी लेखकों का सम्मान :

दक्षिण भारत के दो विशिष्ट साहित्यकारों और हिन्दी प्रेमियों का अभिनन्दन करने के लिये भारतीय साहित्यिक प्रतिष्ठान की ओर से दिल्ली स्थित निर्माण भवन में दिसम्बर मास में एक समारोह का आयोजन किया गया। सम्मानित साहित्यकार थीं केन्द्रीय उप मन्त्री डा० सरोजिनी महिषी और आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा मन्त्री श्री नरसिंह राव। इस अवसर पर भाषण करते हुए उपराष्ट्रपति डा० गोपाल स्वरूप पाठक ने उत्तर भारत के नागरिकों से अपील की कि वे दक्षिण की भाषाओं को सीखें। उन्होंने आशा प्रकट की कि जब दक्षिण की भाषाओं का उत्तम साहित्य उत्तर भारत की भाषाओं में अनूदित होगा तो भारतीय भाषाओं के साहित्य का समुचित विकास होगा।

डा० सरोजिनो महिषी ने डा० डी० बी० गुडप्पा के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह 'मंकतिम्मना कक्का' का हिन्दी में अनुवाद किया है और श्री नरसिंह राव ने तेलुगु के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विश्वनाथ सत्यनारायण की कृति 'वैयि पडगलु' का 'सहस्त्रफण' नाम से हिन्दी में भाषान्तर किया है।●

संसदीय हिन्दी परिषद् का हिन्दी दिवस समारोह :

संसद सदस्यों की संस्था संसदीय हिन्दी परिषद् ने 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया। संसद के केन्द्रीय भवन में आयोजित समारोह का उद्-

घाटन योजना आयोग के उपाध्यक्ष डा० डी० आर० गाडगिल ने किया और अध्यक्षता डा० सरोजिनी महिषी ने। समारोह के आरम्भ में उपस्थित जनों का स्वागत करते हुए डा० सरोजिनी महिषी ने संसदीय हिन्दी परिषद् के कार्य-कलापों तथा उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा : भारत के विभिन्न भागों से जो संसद-सदस्य यहां आते हैं उनमें से कितने ही हिन्दी नहीं जानते हैं और संसद में दिये गये भाषणों आदि को समझने में उन्हें कठिनाई होती है। उन्हें हिन्दी सीखने की सुविधा परिषद् की ओर से उपलब्ध कराई गई है। परिषद् ने न केवल हिन्दी पढ़ने की व्यवस्था की है, बल्कि अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ाने की भी व्यवस्था की है। पचास, साठ साल की उम्र के संसद सदस्य भी यहां जा कर हिन्दी पढ़ते हैं। हिन्दी का प्रचार अहिन्दी प्रान्तों में ही नहीं, हिन्दी प्रान्तों में भी आवश्यक है क्योंकि वहां साक्षरता बहुत कम है।

अपने उद्घाटन भाषण में डॉ० डी० आर० गाडगिल ने कहा : हमारे देश के सभी प्रांतों की अपनी अपनी भाषाएं हैं। हर भाषा को अपने अपने प्रदेश की प्रगति करनी है। हमारा प्रयास है कि सभी भाषाएं अपने विकास क्रम को जारी रखते हुए समृद्ध हों। भारत के संविधान के आठवें अनुच्छेद में 15 प्रमुख भाषाओं को रखा गया है। हिंदी को बहुमत के आधार पर इन भाषाओं में सबसे बड़ी बहिन की मान्यता है। हिंदी का विशाल क्षेत्र कहीं पर भी अन्य भाषाओं के विकास में रुकावट पैदा नहीं करता। महात्मा गांधी, नेहरू जी, शास्त्री जी आदि हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने हिंदी की सूक्ष्मता को देखकर, हिन्दी को अपने महान देश की महान भाषा मानकर यह निर्णय किया था कि राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोए रखने के लिए हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसे सारे देश के नागरिक आसानी से और बिना किसी कठोर परिश्रम के बोल सकें, पढ़ सकें और लिखित रूप में उसका प्रयोग कर सकें। मेरी शुभकामना है कि हिंदी निरंतर अपने विकास-क्रम को जारी रख कर अपनी छोटी बहनों को उन्नति करती हुई, देश में एकता बनाए रखने के महान कार्य को सम्पन्न करती रहेगी।

समारोह में संचार राज्य मंत्री प्रो० शेरसिंह, श्रम राज्य मंत्री श्री भागवत झा आजाद, दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री वसंतराव ओक तथा दिल्ली प्रांतीय राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की मंत्री श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन के भाषण भी हुए।●

अखिल भारतीय भाषा समारोह:

अप्रैल मास में नई दिल्ली स्थित मावलंकर हाल में अखिल भारतीय भाषा समारोह हुआ। समारोह का उद्घाटन तत्कालीन शिक्षा मंत्री डा० वी० के० आर० वी० राव ने किया। अपने भाषण में उन्होंने सुझाव दिया कि एक अखिल भारतीय भाषा भवन का निर्माण किया जाना चाहिए जो अखिल भारतीय भाषा साहित्य के निर्माण में सहायक सिद्ध हो। आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री पी० वी० नरसिंहराव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० वी० के० आर० वी० राव के सुझाव का समर्थन किया और इसके कार्यान्वयन के लिए आंध्र प्रदेश सरकार की ओर से सभी प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन दिया। ●

उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की छूट :

केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने राज्य सरकारों को इस बात की छूट दे दी है कि वे जब चाहें उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग शुरू कर सकती हैं। मंत्रिमंडल ने 22 जनवरी, 1970 को हुई अपनी बैठक में राजभाषा अधिनियम के कार्यान्वयन की समीक्षा करते हुए यह अनुभव किया कि राज्य सरकारों को यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए कि उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र में दिन-प्रति-दिन के कार्यों के लिए क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग कब शुरू करें।

अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत राज्य सरकारों को उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग शुरू करने के लिए राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करनी होती है। अब तक इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ही हिंदी का प्रयोग शुरू किया है। ●

बहुप्रतीक्षित 'मानक आशुलिपि' प्रकाशित :

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने आशुलिपि की एक मानक प्रणाली के विकास का काम पूरा कर लिया है। इस प्रणाली से संबंधित 'मानक आशुलिपि' नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। पुस्तक का प्रकाशन सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल, गृह मंत्रालय ने किया है।

जैसा कि पाठकों को विदित है, भारत सरकार ने हिंदी आशुलिपि की सरल एवं मानक प्रणाली का विकास करने के लिए 1965 में एक विशेष

समिति नियुक्त की थी। उक्त प्रणाली इसी समिति के परिश्रम का फल है। आशा है यह पुस्तक हिंदी आशुलिपि सीखने वाले छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का सस्ता प्रकाशन :

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर की अंग्रेजी पुस्तकें, सहायता सुलभ करके प्रकाशित करने की योजना प्रारंभ करने का निश्चय किया है। यह योजना नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा संचालित होगी।

योजना का उद्देश्य अच्छे स्तर की पाठ्य-सामग्री कम दाम में उपलब्ध कराना है। यह सामग्री पाठ्यपुस्तकों, संदर्भ-पुस्तकों अथवा अन्य पाठ्य-सामग्री के रूप में हो सकती है। सबसे पहले ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाएगा जिन्हें पाठ्यपुस्तक-पुस्तकालयों तथा कालेजों और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में रखने का विचार है जिससे ऐसे छात्र लाभान्वित हो सकें जो साधनहीन हैं तथा जिन्हें इस प्रकार की सामग्री की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

साधारणतः सहायता भारतीय लेखकों की भारत अथवा विदेशों में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित रचनाओं के लिए दी जाएगी परंतु विशेष मामलों में विदेशी लेखकों की ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन में भी सहायता देने पर विचार किया जा सकता है जिनके ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस के सस्ते संस्करण उपलब्ध कराने के कार्यक्रमों के अंतर्गत उपलब्ध होने की संभावना नहीं है। नेशनल बुक ट्रस्ट यदि उचित समझे तो ऐसे विदेशी लेखकों के मामलों पर भी विचार किया जा सकता है जो भारत में बस गए हैं।

विषयों के चुनाव में जहां तक संभव होगा, प्राकृतिक विज्ञान जिनमें गणित भी सम्मिलित है, तथा व्यावसायिक विषय जैसे इंजीनियरिंग, औषधि तथा कृषि को वरीयता दी जायगी। लेखक, स्वयंसेवी एजेंसियां, प्रकाशक या अन्य लोग भी विषयों के बारे में सुझाव दे सकते हैं।

स्वीकृत पांडुलिपियों का प्रकाशन नेशनल बुक ट्रस्ट स्वयं अथवा अन्य प्रकाशकों से, जैसा वह चाहे, करा सकता है।

इस योजना के अंतर्गत जो पुस्तक प्रकाशित होगी उस पर किसी उचित स्थान पर यह छपा होगा कि पुस्तक छात्रों के लाभार्थ नेशनल बुक ट्रस्ट के माध्यम से भारत सरकार द्वारा सहायता प्राप्त है ।

योजना का अन्य विवरण सचिव, नेशनल बुक ट्रस्ट, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-16 से प्राप्त किया जा सकता है ।●

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रादेशिक पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन :

नेशनल बुक ट्रस्ट ने राजस्थान में 11 जनवरी, 1970 से 29 जनवरी, 1970 तक जयपुर, अजमेर, उदयपुर और जोधपुर में चार प्रादेशिक पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन किया । प्रदर्शनियों का उद्घाटन 11 जनवरी को जयपुर में राजस्थान के राज्यपाल सरदार हुक्म सिंह ने किया । इन प्रदर्शनियों में जनवरी, 1967 के बाद प्रकाशित हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत की लगभग छह हजार चुनी हुई पुस्तकें प्रदर्शित की गईं ।

इस अवसर पर नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष डा० बी० बी० केसकर ने ट्रस्ट की योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए पत्रकारों को बताया : नेहरू बाल पुस्तकालय योजना के अंतर्गत बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं जिनका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करना है । इस पुस्तक-माला के अन्तर्गत सभी भारतीय भाषाओं में सौ पुस्तकें प्रकाशित की जाएंगी । दूसरी योजना का नाम है आदान प्रदान । इस पुस्तक माला के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय भाषा की दस सर्वोत्कृष्ट पुस्तकें अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित की जाएंगी ।●

हिंदी माध्यम से कानून की शिक्षा - एक विचार गोष्ठी :

मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय अकादमी के तत्वावधान में हिंदी माध्यम से कानून की शिक्षा देने के विषय पर तीन दिवस की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री गोवर्धन लाल ओझा ने यह विश्वास व्यक्त किया कि भाषा आयोग बनाने से विकसित नहीं होती और न ही कारखाने में ढलती है । निरंतर प्रयोग से ही भाषा का विकास होता है । अत: अदालतों का काम हिंदी में शीघ्र शुरू कर देना चाहिए ।

समारोह का उद्घाटन करते हुए राज्य के राजस्व एवं विधि मंत्री श्री कृष्णपालसिंह ने बताया कि मध्यप्रदेश राज्य सचिवालय में 95 से 98 प्रति-

शत काम अब हिंदी भाषा में ही होता है । यदि भूले-भटके अंग्रेजी में नोटिंग हो जाती है तो मंत्री तुरंत आपत्ति उठाते हैं ।●

नेहरू बाल पुस्तकालय का प्रथम सेट प्रकाशित :

बच्चों में राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत करने के उद्देश्य से नेशनल बुक ट्रस्ट ने बच्चों के स्कूलेतर पठन के लिए कुछ अच्छी बाल-पुस्तकें लिखवाने तथा उन्हें भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित करने की योजना बनाई थी । इस योजना का नाम नेहरू बाल-पुस्तकालय योजना है । इसके पहले सेट में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं : (1) कश्मीर, (2) हमारी नदियों की कहानी, (3) बापू (भाग एक और दो), (4) हिमालय की चोटियों पर, (5) पक्षी जगत, (6) स्वर्ग की सैर, (7) सरस कहानियाँ । प्रत्येक पुस्तक की कीमत 1.50 रुपये रखी गई है ।●

पंजाबी में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकें :

पंजाबी राज्य विश्वविद्यालय पाठ्य-पुस्तक बोर्ड ने कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की पंजाबी-माध्यम से शिक्षण योग्यता बढ़ाने के लिए 10 लाख रुपये की व्यवस्था की है । इस प्रयोजन के लिए विशेष ग्रीष्म संस्थानों का आयोजन किया जाएगा । यह खर्च केंन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत एक करोड़ के अनुदान में से किया जाएगा ।

पाठ्य - पुस्तक बोर्ड ने राज्य के सभी विश्वविद्यालयों से कहा है कि वे जहां तक संभव हो समान पाठ्य विवरण निर्धारित करें । बोर्ड ने अनूदित पाठ्य-पुस्तकों की अपेक्षा पंजाबी में मौलिक पुस्तकों के लेखन पर अधिक जोर दिया है । बोर्ड की चार सदस्यीय कार्यकारिणी समिति बनाई गई है । जिसके अध्यक्ष राज्य के शिक्षा मंत्री हैं ।●

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 59 लेखक पुरस्कृत :

उत्तर प्रदेश सरकार ने हिन्दी, संस्कृत तथा उर्दू के 59 लेखकों को उनकी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए नकद पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया । उर्दू लेखक श्री ऐजाज हुसैन तथा संस्कृत के विद्वान डा० मंगलदेव शास्त्री को 5000 रुपये के विशिष्ट पुरस्कार दिए गए । मोतीलाल नेहरू पुरस्कार (विधि, राजनीति, अर्थ शास्त्र), बीरबल साहनी पुरस्कार (विज्ञान), निराला पुरस्कार (महाकाव्य,

प्रबंध काव्य तथा खण्ड काव्य)और नवीन पुरस्कार (मुक्त गीत) के लिए कोई ग्रंथ उपयुक्त नहीं पाया गया।

अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष समारोह की तैयारी :

नैशनल बुक ट्रस्ट ने 1972 में अंतरर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष मनाने के लिए दिल्ली में एक विश्व पुस्तक मेले के आयोजन का निश्चय किया है। भारत में सन् 1970 तथा उसके बाद प्रकाशित पुस्तकों तथा विदेशी भाषाओं के कुछ चुने हुए प्रकाशनों को प्रदर्शनी में रखा जाएगा। बच्चों की पुस्तकों की विशेष प्रदर्शनी के आयोजन का निश्चय भी किया गया है। इस अवसर पर सारे देश में पुस्तक सप्ताह मनाने का भी सुझाव है। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों से कहा जा रहा है कि वे पुस्तकालयों को सहायक अनुदान उपलब्ध कराए ताकि वे इस सप्ताह अधिक से अधिक पुस्तकें खरीद सकें।

बाल पुस्तकों की प्रदर्शनी:

बाल-साहित्य के लेखकों तथा कलाकारों की संस्था बाल-साहित्य विकास परिषद द्वारा प्रायोजित बाल-पुस्तकों की स्थायी प्रदर्शनी का उद्घाटन 10 अप्रैल, 1971 शनिवार को बड़ी धूमधाम से हुआ। लोधी रोड में स्थापित बाल-पुस्तक केन्द्र में आयोजित समारोह में राजधानी के अनेक साहित्यकार, शिक्षक तथा प्रकाशक सम्मिलित हुए। उद्घाटन की रस्म किसी नेता ने नहीं बल्कि एक बच्चे ने अदा की। हिन्दी तथा अंग्रेजी की रंग बिरंगी सुंदर पुस्तकों को कलाकारों द्वारा बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रदशिति किया गया था। पुस्तकों को विभिन्न वयोवर्गों के बालकों की आवश्यकताओं को देखते हुए विषयवार रखा गया था और बाल-साहित्य के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए विश्व के प्रमुख समीक्षकों तथा विशेषज्ञों के विचारों को चार्टों में लिपिबद्ध करके दिखाया गया था। अभिभावकों को बच्चों की पुस्तकों के प्रति प्रबुद्ध बनाने तथा बाल-साहित्य के स्तर को ऊंचा उठाने का यह अभियान एक निश्चित संकल्प और योजना से सम्भवतः पहली बार शुरू किया गया है।

विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पुस्तकों के निर्माण की समीक्षा :

हिन्दी भाषी राज्यों की समन्वय समिति ने अपनी चौथी बैठक में विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पुस्तकों के निर्माण और प्रकाशन के कार्य की समीक्षा करते हुए सिफारिश की है कि हिन्दी राज्यों की ग्रन्थ अकादमियां

विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई तैयार पांडुलिपियों को प्रकाशन के लिये स्वीकार कर लें। समिति ने यह विचार व्यक्त किया कि इससे विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पुस्तकों के निर्माण का काम व्यापक स्तर पर होने लगेगा। समिति ने अकादमियों के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिये तथा इस कार्यक्रम के लिये एक सशक्त आधार बनाने के उद्देश्य से कई सिफारिशें की हैं।

साहित्य अकादमी द्वारा 16 साहित्यकार पुरस्कृत :

भारतीय भाषाओं के 16 विशिष्ट साहित्यकारों को, 21 फरवरी 1971 को राजधानी में आयोजित एक समारोह में, 1970 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किये गये। साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने साहित्यकारों को पुरस्कार स्वरूप मंजूषा तथा 5000 के चैक प्रदान किये। इस वर्ष पहली बार डोगरी भाषा के लेखक स्व० नरेन्द्र खजूरिया को उनको पुस्तक 'नीला अम्बर काले बादल' पर पुरस्कार दिया गया है। पुरस्कृत लेखकों के नाम इस प्रकार हैं- सर्वश्री लक्ष्मी कान्त (असमिया), अबू अयूब (बंगला), स्व० नरेन्द्र खजूरिया (डोगरी), नगीनदास पारिख (गुजराती), रामविलास शर्मा (हिन्दी), मोहिउद्दीन हजलानी (कश्मीरी), काशीकान्त मिश्र (मैथिली), टी० वासुदेवन नायर (मलयालम), एन० आर० पाठक (मराठी), विनोद चन्द्र नायक (उड़िया), सुब्रहामण्यम् शास्त्री (संस्कृत), नारायण श्याम (सिन्धी), स्व० अग्रीसामी (तमिल), स्व० बाल गंगाधर तिलक (तेलुगु), हयातुल्ला अन्सारी (उर्दू)।

अकादेमी की एक बैठक में यह निर्णय किया गया है कि राजस्थानी और मणिपुरी को साहित्यिक महत्व की स्वतन्त्र आधुनिक भाषाओं के रूप में मान्यता दे दी जाए। बैठक में संस्कृत के विद्वान श्री गोपीनाथ कविराज, गुजराती साहित्यकार काका साहेब कालेलकर, पंजाबी लेखक गुरुबख्श सिंह और उड़िया के उपन्यासकार श्री कालिन्दी चरण पाणिग्रही को अकादेमी का सदस्य (फेलो) बनाने का निर्णय भी किया गया।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा नव-लेखक शिविरों का आयोजन :

वित्त-वर्ष 1970-71 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के विस्तार-कार्यक्रम के अधीन 3 नव हिन्दी लेखक कार्य शिविर चलाये गये।

बंगलौर शिविर :

पहला शिविर 10 जनवरी, 1971 से 16 जनवरी, 1971 तक बंगलौर में मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति, जयनगर के प्रांगण में किया गया। इस शिविर के संचालक मैसूर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एन० नागप्पा थे और शिविरार्थियों के मार्ग-दर्शन के लिये दिल्ली से साहित्य अकादमी के श्री भारतभूषण अग्रवाल, अक्षर प्रकाशन के श्री राजेन्द्र यादव, श्रीमती मन्नू भण्डारी तथा मद्रास से श्री रमेश चौधरी 'आरिगपूडि' एवं श्री बालशौरि रेड्डी पधारे थे।

शिविर में 25 शिविरार्थियों ने भाग लिया जिनमें से 7 आन्ध्र-प्रदेश से, 3 केरल से, एक गोवा से, 8 तमिलनाडू से तथा 6 मैसूर से आये थे।

शिविरार्थियों को मार्गदर्शक लेखकों ने कहानी, नाटक एवं कविता के विषय में सम्पूर्ण मार्ग-दर्शन दिया और इस कार्य-शिविर के दौरान सभी शिविरार्थियों ने कहानियां एवं कविताएं प्रस्तुत कीं।

शिविर का उद्घाटन बंगलौर के सबसे वरिष्ठ शिक्षा शास्त्री श्री सम्पद्गिरी राव ने किया और दीक्षांत भाषण मैसूर के वित्त मंत्री श्री रामकृष्ण हेगड़े ने किया। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक श्री गोपाल शर्मा भी अन्तिम दिन के समारोह में सम्मिलित हुए और उन्होंने भी शिविरार्थियों को आशीर्वाद दिया।

गुवाहाटी शिविर :

दूसरा शिविर गुवाहाटी (असम) में 27 जनवरी, 1971 से 2 फरवरी, 1971 तक हुआ। इस शिविर का संचालन स्थानीय हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण कालेज के प्राध्यापक श्री परेशाचन्द्र देव शर्मा ने किया। शिविर में आए नए लेखकों के मार्ग-दर्शन के लिए दिल्ली से श्री विष्णु प्रभाकर, डा० लक्ष्मीनारायण लाल एवं श्री जगदीश चतुर्वेदी, कटक से गवर्नमेंट गर्ल्स कालेज के प्राध्यापक प्रोफेसर तारिणीचरण दास तथा शिलांग के शिक्षा निदेशालय (असम) के श्री लोकनाथ भराली पधारे। कुल 18 नए लेखकों ने इस शिविर में भाग लिया जिनमें से 6 असम से, 2 आंध्रप्रदेश से, 2 उड़ीसा से, 1 गुजरात से, 1 पश्चिम बंगाल से, एक पंजाब से एवं 5 महाराष्ट्र से थे।

शिविर का उद्घाटन टैगोर प्रोफेसर श्री एस० एन० शर्मा ने किया। कार्य-शिविर के दौरान भी बंगलौर कार्य-शिविर की तरह ही नए लेखकों ने कई कहानियां, कई कविताएं एवं कई एकांकी लिखे जिनका विद्वान् लेखकों की सहायता से परिमार्जन किया गया।

हिन्दी टंकण और आशुलिपि केन्द्र, मद्रास का दीक्षान्त समारोह :

हिन्दी टंकण और आशुलिपि केन्द्र, मद्रास का, अगस्त, 69 और जनवरी, 1970 सत्रों का दीक्षान्त समारोह, 27 जनवरी को, शास्त्री भवन, मद्रास-6 में हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री के० सन्तानम् उपस्थित थे। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के क्षेत्रीय अधिकारी (दक्षिण) श्री पी० आर० भास्करन नायर भी समारोह में विशेष रूप से आमन्त्रित थे।

गृह मन्त्रालय की हिन्दी शिक्षण योजना के क्षेत्रीय अधिकारी (दक्षिणी क्षेत्र) ने प्रशिक्षण केन्द्र को प्रगति का परिचय देते हुए बताया कि अब तक हिंदी आशुलिपि में 86 और टंकण में 1053 व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है। मुख्य अतिथि श्री के० सन्तानम् ने अपने भाषण में आशा प्रकट की कि प्रशिक्षित आशुलिपिक आगे चलकर बहुत अच्छे अनुवादक बनेंगे और वे हिन्दी से मातृभाषा में तथा मातृभाषा से हिन्दी में साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद करके दोनों भाषाओं को समृद्ध बनाने में योगदान देंगे।

पूर्व क्षेत्रीय भाषा केन्द्र की स्थापना

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री प्रो० वी० के० आर० वी० राव ने 7 मार्च, 1970 को भुवनेश्वर में पूर्व क्षेत्रीय भाषा केन्द्र का उद्घाटन किया। देश भर में इस प्रकार के चार केन्द्र स्थापित करने की योजना है। इन भाषा केन्द्रों का उद्देश्य त्रिभाषा सूत्र को लागू करने में सहायता करना है। पूर्व-क्षेत्रीय केन्द्र में शिक्षकों को असमिया, बंगला और उड़िया भाषाओं की शिक्षा दी जाएगी। तीन अन्य केन्द्र पूना, मैसूर और पटियाला में स्थापित किये जाएंगे।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री ने सभी राज्य सरकारों से अपील की है कि वे केन्द्रीय सरकार की योजनाओं से लाभ उठाएं।

मध्यप्रदेश में 1972 तक कालेज स्तर की सभी पुस्तकें हिन्दी में :

मध्यप्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री जी० एन० अवस्थी ने भोपाल में पत्रकारों को बताया कि 1972 तक कालेज की तमाम पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में मिलने लगेंगी। हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए केन्द्रीय सरकार ने राज्य को एक करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता दी है। ●

दिल्ली प्रशासन की 'भाषा कर्मशाला' के कार्य की प्रगति

दिल्ली के कार्यकारी पार्षद डा० रामलाल वर्मा ने 'भाषा कर्मशाला' के कार्य की प्रगति की जानकारी देते हुए पत्रकारों को बताया -'भाषा कर्मशाला ने प्रशासन के काम-काज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अब तक चार कक्षाओं का आयोजन किया जा चुका है और उनमें लगभग एक सौ कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है।'

'भाषा कर्मशाला' के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया : भाषा कर्मशाला काम-काज में हिन्दी के प्रयोग संबंधी कठिनाइयों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। प्रशिक्षण पाने वाले कर्मचारी अपनी व्यावहारिक कठिनाइयों को आमंत्रित विशेषज्ञों एवं विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और विद्वान लोग उनका निराकरण करते हैं। अब तक इस योजना के अंतर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय के अनुवाद निदेशालय, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा स्वराष्ट्र के कुछ विद्वानों को आमंत्रित किया गया है। ●

उत्तरप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी की प्रथम बैठक

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा गठित हिंदी ग्रंथ अकादमी की पहली बैठक 7 जनवरी 1970 को राज्य के शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में हुई। शिक्षा मंत्री ने बताया कि भारत सरकार ने अकादमी के लिए लगभग दो सौ पुस्तकें निर्धारित की हैं और उसे ऐसे विषयों का भी सुझाव दिया है जिन पर मूल हिंदी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। ●

मारीशस हिंदी प्रचारिणी सभा का 34 वां दीक्षांत समारोह

मारीशस हिंदी प्रचारिणी सभा का 34 वां दीक्षांत समारोह जनवरी मास में सम्पन्न हुआ। इसमें सैकड़ों हिंदी छात्रों को उपाधियां तथा प्रमाणपत्र

वितरित किए गए। समारोह में मारीशस के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् एवं महत्वपूर्ण व्यक्ति सम्मिलित हुए।

मारीशस हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1935 में हुई थी और तब से वह मारीशस में हिंदी के प्रचार में लगी हुई है। ●

संयुक्त अरब गणराज्य में हिंदी संस्कृत के अध्ययन के लिए गांधीपीठ:

संयुक्त अरब गणराज्य के दूतावास में प्रेस अताशे श्री मोहम्मद अल-शफाकी ने राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति द्वारा आयोजित एक समारोह में बताया कि संयुक्त अरब गणराज्य में हिंदी तथा संस्कृत के अध्यापन के लिए गांधीपीठ की स्थापना की गई थी। ●

विश्वविद्यालय-स्तर की पुस्तकों के निर्माण के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमियों को निर्देश :

पांच हिंदी भाषी राज्यों की समन्वय समिति की चौथी बैठक 17 फरवरी, 1970 को नई दिल्ली में हुई। बैठक की अध्यक्षता शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय के राज्य मंत्री श्री भक्तदर्शन ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा : सभी हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना हो जाने से विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के निर्माण के लिए सभी तैयारियां हो चुकी हैं। आशा है अब इस काम में निरंतर प्रगति होगी।

उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश, इन पांच हिन्दी राज्यों में हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के निर्माण के उद्देश्य से की गई है। समन्वय समिति ने इन ग्रंथ अकादमियों से कहा है कि वे विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा अन्य विद्वानों द्वारा तैयार की गईं पांडुलिपियों को प्रकाशन के लिए स्वीकार कर लें। यदि वे चाहें तो इस काम में निजी प्रकाशकों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

गांधी हिंदी दर्शन का विमोचन :

दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'गांधी हिंदी दर्शन' नामक ग्रंथ का विमोचन 22 फरवरी को राष्ट्रपति भवन में आयोजित एक समारोह में हुआ। राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने ग्रंथ का विमोचन करते हुए कहा : भारतीय भाषाओं का विकास एक महत्वपूर्ण घटना

है। कुछ सावधानी और निष्ठा से कार्य- करने पर इन भाषाओं को आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी अध्ययन का सशक्त माध्यम बनाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि हिंदी प्रचार के कार्य में आपसी सद्भाव और धैर्य की आवश्यकता है।

समारोह की अध्यक्षता संसद सदस्य बाबू गंगाशरण सिंह ने की। समारोह में सेठ गोविंददास, डा० विजयेन्द्र स्नातक, श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी तथा दक्षिण के वयोवृद्ध हिंदी सेवी पं० हरिहर शर्मा भी उपस्थित हुए।

'गांधी हिंदी दर्शन' ग्रंथ का सम्पादन दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के महासचिव श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने किया है। ●

सरस्वती पूजा समारोह

भारतीय साहित्य परिषद (विश्वविद्यालय क्षेत्र) की ओर से 10 फरवरी को नई दिल्ली में सरस्वती पूजा समारोह मनाया गया। सहायक शिक्षा सलाहकार डा० रामकरण शर्मा ने समारोह की अध्यक्षता की। इस अवसर पर भाषण करते हुए दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध हिंदी विद्वान् डा० भास्करन नायर ने बताया कि तमिल में पांच हजार ऐसे शब्द हैं जिनका हिंदी में भी समान रूप से प्रयोग होता है। प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती कमला रत्नम् ने कहा : यदि अंग्रेज़ी भाषा का वर्तमान दबदबा बना रहा तो भारत विदेशों में अपनी रही सही प्रतिष्ठा भी खो देगा।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का अभिनंदन:

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं साहित्यकार साहित्य वाचस्पति पं० बनारसी दास चतुर्वेदी का 3 फरवरी को नई दिल्ली में साहित्यकारों तथा साहित्यिक संस्थाओं की ओर से अभिनंदन किया गया। समारोह की अध्यक्षता उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक ने की। श्री चतुर्वेदी की हिंदी सेवाओं की सराहना करते हुए उपराष्ट्रपति ने कहा : श्री चतुर्वेदी जी अपने विचारों के प्रति ईमानदार रहे हैं। उन्होंने अपने ऊपर कोई बंधन स्वीकार नहीं किया। वे व्यक्ति स्वातंत्र्य के सबसे बड़े समर्थक रहे हैं।

भारतीय प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता संघ की 21 फरवरी को नई दिल्ली में एक बैठक हुई जिसमें सस्ते दामों पर पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराने की समस्या पर विचार किया गया। संघ के सचिव श्री जे० डी० चौधरी ने पत्रकारों को बताया कि विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों को कम कीमत

पर उपलब्ध कराने की योजना के लिए शिक्षा मंत्रालय से 50 प्रतिशत की आर्थिक सहायता मिलने की आशा है । संघ ने सिफारिश की है कि पुस्तक प्रकाशन उद्योग के लिए एक पुस्तक वित्त निगम की स्थापना की जाए, पुस्तक-आयात-लाइसेंस के अंतर्गत कागज़ और मुद्रण संबंधी मशीनों के आयात की छूट दी जाए, पुस्तकों पर डाक की दरें कम की जाएं और पुस्तकों की खरीद के लिए टेंडर प्रणाली को समाप्त किया जाए । ●

दिल्ली राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का प्रमाणपत्र वितरण समारोह:

दिल्ली प्रादेशिक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का प्रमाणपत्र वितरण समारोह 22 फरवरी को हरिजन सेवक संघ किंग्ज़वे कैम्प में मनाया गया । समारोह की अध्यक्षता गुजरात के हिन्दी सेवी श्री जेठा लाल जोशी ने की और प्रमाणपत्र वितरण दक्षिण भारत के 80 वर्षीय हिंदी सेवी श्री हरिहर शर्मा ने किया । एक सौ से अधिक छात्र-छात्राओं ने हिंदी कोविद, परिचय, प्रवेश आदि परीक्षाओं के प्रमाणपत्र प्राप्त किए ।

●

GMGIPND-PLW-444/14/M OF EDU./71-72-3,000.